बहुवचन

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका

प्रधान संपादक

गिरीश्वर मिश्र

संपादक

अशोक मिश्र

ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा का प्रकाशन

बहुवचन
अंक : 60 (जनवरी-मार्च 2019) ISSN- 2348-4586
प्रकाशक : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

संपादकीय संपर्क :
संपादक बहुवचन
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)
मो. संपादक- 7888048765, 09422386554, ईमेल- bahuvachan.wardha@gmail.com
E-mail : amishrafaiz@gmail.com

प्रकाशन प्रभारी : राजेश कुमार यादव
ईमेल- rajeshkumaryadav97@gmail.com फोन- 07152-232943, मो. 09975467897

© **संबंधित लेखकों एवं रचनाकारों द्वारा सुरक्षित**
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं विश्वविद्यालय की स्वीकृति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा या संपादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

पत्रिका न मिलने की शिकायत इस पते पर करें :
प्रचार प्रसार : सुरेश कुमार यादव
फोन : 07152-232943, मो. 09730193094, ईमेल- s.ujala80@gmail.com

बिक्री और प्रसार कार्यालय :
प्रकाशन विभाग, **महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय**
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र) भारत
फोन : 07152-232943, फैक्स : 07152-230903

वार्षिक सदस्यता के लिए बैंक ड्राफ्ट **महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय** के नाम से, जो वर्धा में देय हो, ऊपर लिखित बिक्री कार्यालय के पते पर भेजें। मनीऑर्डर स्वीकार्य नहीं।

यह अंक : रु. 200/-
सामान्य अंक : 75/- वार्षिक शुल्क रु. 300/-, द्विवार्षिक शुल्क रु. 600/- व्यक्तिगत
संस्थाओं के लिए वार्षिक शुल्क रु. 400/-, द्विवार्षिक रु. 800/- (डाक खर्च सहित)
विदेश में : हवाई डाक : एक प्रति 15 अमेरिकी डॉलर/7 ब्रिटिश पाउंड
समुद्री डाक : एक प्रति 8 डॉलर/5 ब्रिटिश पाउंड
आवरण : वेदप्रकाश भारद्वाज

BAHUVACHAN
A QUARTERLY INTERNATIONAL JOURNAL IN HINDI
PUBLISHED BY: MAHATMA GANDHI ANTARRASHTRIYA HINDI VISHWAVIDYALAYA
GANDHI HILLS, POST-HINDI VISHWAVIDYALAYA, WARDHA-442001 (MAHARASHTRA) INDIA.

मुद्रण : क्विक ऑफसेट ई-17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 (फोन : 011-22824606, मो. 9811388579)

स्मरणांजलि...

1 मई 1927-19 फरवरी 2019

आचार्य नामवर सिंह हिंदी के महान स्तंभ थे। एक समर्पित अध्यवसाय संपन्न आलोचक के रूप में उनकी कीर्ति सभी हिंदी अध्येताओं के लिए स्पृहनीय बन गई थी। परंपरागत शास्त्र और समकालीन चिंतन की सरणियों दोनों में उनकी समान गति थी। उनकी अनुपस्थिति से हिंदी अध्ययन और समीक्षा में अपूर्णनीय रिक्ति पैदा हुई है। इस विश्वविद्यालय के साथ उनका विशेष जुड़ाव था और इसकी संरचना में उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है। एक लंबी अवधि तक वे कुलाधिपति के रूप में मार्गदर्शन देते रहे। कुछ समय पूर्व 'नब्बे के नामवर' शीर्षक पुस्तक प्रो. के. के सिंह के सहयोग से संपादित कर प्रकाशित हुई थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल पर गोष्ठी में वे उपस्थित होकर महत्वपूर्ण स्थापना प्रस्तुत किए थे। हम सब पर उनका स्नेह था। हम कृतज्ञतापूर्वक उनका स्मरण करते हैं। हमारी विनम्र श्रद्धांजलि ।

प्रो.गिरीश्वर मिश्र

अनुक्रम

आरंभिक

शोकाकुल करता समय 8

स्मृति-शेष

और नाज मैं किस पर करूं... विष्णु खरे/लीलाधर मंडलोई 11

कृष्णा सोबती : एक मुलाकात/गरिमा श्रीवास्तव 14

विष्णु खरे को याद करते हुए/ओम भारती 19

पीठ पर महसूस होता वह हाथ/महेश दर्पण 23

अर्चना वर्मा स्मृति-लेख/प्रियदर्शन 32

संस्मरण

मटियानी स्मृति/दामोदर दत्त दीक्षित 36

कुंभ में कविता/ राधेश्याम तिवारी 43

यात्रा-वृत्तांत

लंदन में केदारनाथ परिक्रमा (संदर्भः छठा विश्व हिंदी सम्मेलन, 1999)/ रणजीत साहा 57

इंद्रधनुषी हॉर्नबिल.../यशस्विनी पांडेय 66

कहानी

गुमशुदा की तलाश/प्रेम भारद्वाज 71

बॉर्डर/शशिभूषण द्विवेदी 78

चील के पंजे में/श्रद्धा थवाईत 81

कविताएं

रामकुमार कृषक 86

जाबिर हुसैन 89

असंग घोष 94

अनंत मिश्र 98

सुधीर सक्सेना 102

कुमार अनुपम 105

शंकरानंद 108
प्रांजल धर 111
कला
कला की गतिशीलता/प्रयाग शुक्ल 115
संवाद
'दलित-मुक्ति का सवाल आज भी संक्रमण के दौर से गुजर रहा है' 122
(देवेंद्र चौबे से इकरार अहमद-मीनाक्षी की बातचीत)
आलोचना
अँधेरे में छुपी रोशनी की तलाश (संदर्भ : और पसीना बहता रहा)/शंभु गुप्त 127
आत्मप्रकटीकरण की नई दिशाएं संभावनाएं/ कुबेर कुमावत 131
भारतीय मिथक और हिंदी गजल/ज्ञानप्रकाश विवेक 141
'ऐ लड़की' में कृष्णा सोबती की जीवन-दृष्टि/गरिमा श्रीवास्तव 153
असमिया कथा-साहित्य का तीन दशकः कतिपय वैशिष्ट्य/सूर्यकांत त्रिपाठी 164
भूदान की ज्ञान-मीमांसा/मिथिलेश कुमार 168

प्रसंग-वश

★ *बहुवचन 50 (जुलाई-सितंबर 2016) 'हिंदी के नामवर' अंक में डॉ. नंदकिशोर नवल के प्रकाशित संस्मरण पर एक प्रतिक्रियात्मक पत्र प्रख्यात आलोचक खगेंद्र ठाकुर ने उक्त अंक के अतिथि संपादक प्रो. कृष्ण कुमार सिंह को भेजा है, जिसे यथावत प्रकाशित किया जा रहा है।*

प्रिय कृष्ण कुमार

'बहुवचन' का डॉ. नामवर सिह से संबंधित संस्मरणों का विशेषांक मिला। यह एक जरूरी काम था, जो तुमने कर दिया। मैंने तो संक्षेप में लिख दिया, फिर भी यथोचित है। डॉ. नंदकिशोर नवल ने लंबा लिखा है और प्रसंग था नामवरजी से अपनी प्रशंसा भी कराई है, यह स्वाभाविक है। लेकिन उन्होंने एक ऐसे प्रसंग का जिक्र किया, जो मेरे अनुभव के दायरे में आता है, उन्होंने उस प्रसंग का जिक्र बिलकुल कल्पना से आधार पर किया है। उन्होंने लिखा है कि केदारनाथ सिंह ने उनसे कहा कि आप लोग नामवरजी के स्वास्थ्य का ख्याल नहीं करते, उन्हें थका देते हैं, वे बीमार पड़ गए। नामवरजी ट्रेन से आए, वे उनसे स्टेशन पर मिले और फिर खगेंद्रजी उन्हें लेकर चले गए।

केदारनाथ सिंह से मेरा भी लगाव था। एक बार तो मेरे राजीव नगर आवास में ठहरे भी थे, एम.एल.ए. क्लब में कई बार हाल में वे जब पटना आए थे, तो भेंट हुई थी। मेरे सम्मान समारोह में वे अध्यक्ष थे।

पहली बात तो यह मैं स्पष्ट कर रहा हूं कि नामवरजी दिल्ली से पटना ट्रेन से एक ही बार आए, 1979-80 में जब हम लोग प्रेमचंद जयंती मना रहे थे। उसके बाद वे हमेशा हवाई-जहाज से आए। यह प्रसंग 1984 का है। नामवरजी हवाई-जहाज मैं गाड़ी लेकर हवाई अड्डे पर मौजूद था, उन्हें बिठाया और अपने विधायक क्लब वाले आवास में उनका अपना सामान लिया और आगे बढ़ गया। नामवरजी को अगले दिन मारवाड़ी कॉलेज भागलपुर में साहित्य की अध्यापन पद्धति पर उद्घाटन भाषण करना था। इसलिए जिस दिन वे पटना आए, उस दिन हमलोग मुंगेर में ठहर गए। वहां परिसदन के शानदार कमरे में उन्हें ठहराया गया। आयोजकों ने कहा बहुत बड़ा पलंग है, दोनों आदमी सो जा सकते हैं। लेकिन मैंने कहा नहीं, नामवरजी अकेले सोएंगे। मैं दूसरे कमरे में चला गया।

उस दिन मुंगेर के श्रीकृष्ण सेवासदन में आचार्य शुक्ल पर उनका व्याख्यान हुआ। उन्होंने पहले मुझे बोलने को कहा, तो मैंने वैसा ही किया।

मुंगेर में अनिल कुमार नाम का एक लड़का मिला, जो ज.ने.वि. से पढ़कर निकला था। उसके पिता मुंगेर में एस-डी.ओ. थे। उसने अगले दिन सुबह नाश्ता करने का निमंत्रण दिया। हमलोग नाश्ता करके नौ बजे निकले। दस बजे या साढ़े दस बजे सुल्तानगंज स्थित मुरारका कॉलेज पहुंचे वहां नामवरजी ने परंपरा पर व्याख्यान दिया। वहां कुछ रसगुल्ले उन्होंने खाए। करीब एक बजे दिन में भागलपुर विश्वविद्यालय के अतिथि भवन में पहुंचे। वे एक बार बाथरूम गए और कहा पेट कुछ

गड़बड़ लगता है तुरंत विश्वविद्यालय से डॉक्टर को बुलाया गया। उन्होंने सलाह दी कि अभी अन्न मत खाइए, फल खाइए-सेव, नारंगी आदि। ऐसा ही किया गया। उन्होंने दवा भी दी। नामवरजी दुबारा बाथरूम नहीं गए। मैंने अतिथि-भवन में भोजन कर लिया। तीन बजे मैं उसके कमरे में गया। वे कपड़े बदलकर तैयार थे। पांच बजे संध्या उनका व्याख्यान होना था। मैंने कहा-चलिए, 'अब मैं आपका इलाज करता हूं। गाड़ी पर बैठिए।' वे बैठ गए। पूछा नहीं-कहां जाना है। भागलपुर में सूजागंज पीपल चौक नामी है। वहां पर बहुत अच्छी लस्सी मिलती है। मैं उन्हें वहीं ले गया। लस्सी पीकर उनकी आँखों में चमक आई, बोले-एक और चलेगी? मैंने कहा-क्यों नहीं, एक-दो जो चाहें। वहीं एक-एक लस्सी और चली। वहीं पर बनारसी पान की दुकान है। मगही पत्ती की गिलौरी जर्दा के साथ लेकर वे प्रसन्न हुए। सहज भाव में बोले- चलिए अब व्याख्यान होगा। चार-सवा चार बजे तक अतिथि-भवन लौट गए। पांच बजे आकर डॉ. बेचन उन्हें सभागार ले गए। अध्यापन पद्धति पर उन्होंने जमकर भाषण किया, जहां तक मुझे याद है- विश्वविद्यालय के कुलपति, स्नातकोत्तर। हिंदी विभाग के अध्यक्ष, अन्य पदाधिकारी आदि थे। सभागार खचाखच भरा हुआ था। केवल नामवरजी का व्याख्यान हुआ। उसके बाद सात बजे भगवान् पुस्तकालय में शुक्लजी पर उनका व्याख्यान हुआ।

अगले दिन उन्हें पटना लाकर फिर हवाई-जहाज से रवाना कर दिया। मैं शाम तक भागलपुर लौटा। एक उल्लेखनीय बात यह है, जो नवलजी भूल रहे हैं- उन्हें भी कविता की अध्यापन पद्धति पर पर्चा पढ़ना था, उन्होंने वह काम किया। मुझे इतिहास की अध्यापन पद्धति पर पर्चा पढ़ना था, जो मैंने किया।

इस पर नवलजी ने मजाक में कहा तो आपने डॉ. मैनेजर पांडेय के विषय में भी दखल दे दिया। मारवाड़ी कॉलेज में हुआ पूरा कार्यक्रम पुस्तक रूप में छपा भा।

'बहुवचन' के पाठक इस स्पष्टीकरण से लाभ उठाऐंगे या उन्हें यह रोचक लगेगा। 'तुम्हें' भी अच्छा लगेगा। इत्यलम्।

तुम्हारा स्नेही

खगेंद्र ठाकुर

2.11.18

शोकाकुल करता समय

बहुवचन का यह अंक प्रकाशन के लिए भेजे जाने की प्रक्रिया में था कि अचानक 25 जनवरी 2019 को खबर मिली कि हिंदी की बुजुर्ग कथाकार कृष्णा सोबती नहीं रहीं। कृष्णा सोबती एक ऐसी कथाकार थीं जिनके लेखन का दायरा बहुत विस्तृत और स्त्री प्रश्नों को प्रमुखता से उठाने वाला रहा है। उनके निधन से हिंदी की दुनिया में जो रिक्ति हुई है उसकी भरपाई हो पाना संभव नहीं है।

कृष्णा सोबती का जन्म 18 फरवरी 1925 को हुआ था। उपन्यास और कहानी विधा में उन्होंने खूब लेखन किया। उनकी प्रमुख कृतियों में 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रों मरजानी', 'यारों के यार तिन पहाड़', सूरजमुखी अँधेरे के', 'सोबती एक सोहबत,''जिंदगीनामा', 'समय सरगम', 'जैनी मेहरबान सिंह' जैसे उपन्यास शामिल है। उनका एक कहानी संग्रह 'बादलों के घेरे' खासा चर्चित रहा है। इसी प्रकार 1983 के आसपास रवींद्र कालिया के संपादन में प्रकाशित 'वर्तमान साहित्य' के कहानी महाविशेषांक में प्रकाशित 'ऐ लड़की' शीर्षक कहानी को बहुत अधिक सराहा गया और खासी चर्चा हुई। उनके लेखन में भारतीय भाषाओं और बोलियों को खासा स्थान मिला जिसने उनके लेखन को रवानी और ऊंचाई भी दी। उनके लेखन में निर्भीकता, खुलापन और भाषा की प्रयोगशीलता भी है। उनकी रचनाएं मध्यम-वर्गीय स्त्री का मुखर पक्ष सामने रखती हैं। वे राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों पर मुखर होकर अपनी बात रखती रही हैं। उनको भारतीय ज्ञानपीठ सहित कई पुरस्कार भी मिले। इस मौके पर उनसे सुपरिचित रचनाकार गरिमा श्रीवास्तव की मृत्यु से पहले हुई मुलाकात संस्मरण के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। इसी के साथ उनकी कहानी 'ऐ लड़की' पर उनकी एक टिप्पणी भी छाप रहे हैं। उनकी स्मृति को नमन।

यह सब चल ही रहा था कि अचानक खबर मिली कि प्रो. नामवर सिंह का लंबी अस्वस्थता के बाद 19 फरवरी की रात निधन हो गया है। वे हिंदी के बहुप्रतिष्ठित आलोचक होने के साथ ही महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के लगातार छह वर्षों तक कुलाधिपति रहे। प्रो. सिंह का निधन एक ऐसे समय में हुआ है कि जब साहित्य की दुनिया से एक-एक कर वरिष्ठ सदस्यों का अवसान हो रहा है। ऐसे में उनका अवसान हिंदी-भाषी समाज को और अधिक विपन्न कर देता है। क्योंकि साहित्य की दुनिया में प्रो. नामवर सिंह एक ऐसे संरक्षक रहे हैं जिनका आशीर्वाद और मार्गदर्शन लिए हमेशा बहुत आवश्यक रहा है। जाहिर है कि उनके न रहने से हम मार्गदर्शन के लिए किस व्यक्तित्व की ओर देखेंगे यह बहुत बड़ा और व्यथित करने वाला सवाल है। प्रो.नामवर सिंह को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उन्होंने अपने व्याख्यानों और प्रगतिशील लेखक संघ के माध्यम से हिंदी-भाषी समाज को लगातार शिक्षित और वैचारिक रूप से प्रबुद्ध बनाने का काम किया है। उन्होंने दूसरी परंपरा की खोज करते हुए वाद-विवाद और संवाद का रास्ता चुना और

आजीवन उस पर चलते रहे। साहित्यिक विषय हो या समसामयिक विमर्श पर उनके द्वारा दिए जाने वाले प्रगतिशील व्याख्यान लगातार हिंदी पट्टी में साहित्य संस्कृति चेतना की अविरल धारा बहाते रहे। नामवर सिंह का व्यक्तित्व हिंदी पट्टी में एक बहुत प्रतिष्ठित और ऐसे आलोचक का रहा है जिन्होंने अपना पूरा जीवन मार्क्सवाद के लिए युवावस्था से ही समर्पित कर दिया था। प्रो. सिंह आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शिष्य रहे। उन्होंने द्विवेदीजी की ही साहित्यिक परंपरा को आगे बढ़ाया। यह भी कहा जाता है कि उनके व्यक्तित्व पर हजारी प्रसाद द्विवेदी का गहरा असर रहा। उन्होंने 'जनयुग' साप्ताहिक और 'आलोचना' पत्रिका का संपादन किया। जीवन के शुरुआती वर्षों में वाराणसी, सागर, जोधपुर में अध्यापन किया। इसके बाद वे 1974 में जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हुए और वहां उन्होंने भारतीय भाषा केंद्र की स्थापना की। यहीं से नामवर सिंह के व्यक्तित्व को धीरे-धीरे साहित्य जगत में सम्मानजनक स्थान मिलने लगा।

नामवर सिंह हिंदी साहित्य में आलोचना को नई ऊंचाई देने के लिए याद किए जाएंगे। उनकी आलोचनात्मक और व्याख्यान, लेखों की कुल मिलाकर दो दर्जन से अधिक कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। 1985 के बाद तो लगभग उन्होंने लिखना छोड़ ही दिया। इसी के बाद वे वाचिक परंपरा के आलोचक कहलाने लगे। उनके द्वारा *फासीवाद, विज्ञान, भूमंडलीकरण सांप्रदायिकता, बहुलतावाद, बीसवीं सदी का मूल्यांकन, उत्तर आधुनिकता, मार्क्सवाद, प्रगतिशील आंदोलन, दुनिया की बहुध्रुवीयता* पर दिए गए व्याख्यान हिंदी की अमूल्य धरोहर बन गए। उनके भाषा की चाशनी में लिपटे ओजस्वी व्याख्यान हिंदी पट्टी में हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने और नए विमर्श स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगे। उनकी एक और विशेषता यह भी रही कि वे खूब पढ़ते रहे और मरते दम तक नए से नए लेखकों की कृतियों और उनके लेखन से अपडेट बने रहे। उन्होंने साहित्य में कई पीढ़ियों की रचनाशीलता को रेखांकित किया। कुछ वर्ष पहले तक दूरदर्शन के नेशनल चैनल पर प्रसारित वे अपने कार्यक्रम 'शबद-निरंतर' में प्रकाशित नई पुस्तकों की विशेष चर्चा किया करते थे। इस कार्यक्रम में उनके साथ चर्चित कवि मदन कश्यप कृति को लेकर सवाल पूछते थे। इस कार्यक्रम को अपार लोकप्रियता मिली। जिसका परिणाम यह हुआ कि किसी कहानी-संग्रह या उपन्यास जैसी कृति पर उनके कहे शब्द एक तरह उस लेखक के स्थापित हो जाने की गारंटी हो गए। यही वजह रही कि साहित्य की हर पीढ़ी और साहित्य से इतर भी उनके प्रशंसकों की खासी संख्या रही। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की पत्रिका 'बहुवचन' का 50वां अंक 'हिंदी के नामवर' शीर्षक से प्रकाशित हुआ जिसे, अपार प्रशंसा मिली। यह प्रकाशन उनके 90वें जन्मदिन पर हुआ।

हिंदी आलोचना पर समय-समय पर उन्होंने जो टिप्पणियां कीं उनमें से कुछ महत्वपूर्ण टिप्पणियां प्रस्तुत हैं-

★ आलोचना के इतिहास के बारे में जितनी पुस्तकें लिखीं गई हैं, वे अपूर्ण-अधूरी ही नहीं हैं, बल्कि उनकी जो मूल दृष्टि है वह अभावों का दुर्दांत उदाहरण है।

★ आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी के पहले आलोचक थे। उनके पहले समीक्षक हुआ करते थे, जो पुस्तकों की समीक्षा या टिप्पणियां लिखते थे।

★ आलोचक सही अर्थों में वह है जिसके पास लोचन है। वह लोचन किसी दृष्टि से और साहित्य

से ही प्राप्त होता है, रचना से प्राप्त होता है-किसी दर्शन से प्राप्त हो, संभव नहीं है।

★ आलोचना एक रचनात्मक कर्म है, यह दोयम दर्जे का काम नहीं है। यदि आप में सर्जनात्मकता नहीं है तो आप आलोचना नहीं कर सकते।

★ आलोचना का कार्य अतीत की रक्षा के साथ-साथ यह भी है कि वह समकालीनता में हो, अर्थात् वह समकालीन रचनाओं को जांच-परखे, मूल्य-निर्णय दे।

यहां नामवर सिंह की एक कविता जो मुझे बहुत अच्छी लगती है वह प्रस्तुत की जा रही है-

नभ के नीले सूनेपन में

नभ के नीले सूनेपन में
हैं टूट रहे बरसे बादर
जाने क्यों टूट रहा है तन!
बन में चिड़ियों के चलने से
हैं टूट रहे पत्ते चरमर
जाने क्यों टूट रहा है मन!
घर के बर्तन की खन-खन में
हैं टूट रहे दुपहर के स्वर
जाने कैसा लगता जीवन!

उनका न रहना साहित्यिक समाज और उनके प्रशंसकों को खासा व्यथित कर रहा है। उनकी स्मृति को नमन।

अचानक 17 फरवरी की सुबह कथाकार प्रियदर्शन की फेसबुक पोस्ट से पता चला कि एक समय की महत्वपूर्ण कहानीकार और कवयित्री अचर्ना वर्मा नहीं रहीं। अर्चना वर्मा मिरांडा हाउस में हिंदी की शिक्षक थीं। वे लंबे समय तक 'हंस' और बाद में 'कथादेश' के संपादन से संबद्ध रहीं। वे कुछ समय आलोचना और स्त्री-विमर्श के प्रश्नों को भी प्रमुखता से उठाती रही हैं। अर्चनाजी राजेंद्र यादव द्वारा शुरू की गई स्त्री-विमर्श की धारा को लगातार अपने लेखन से सिंचित कर रहीं थीं। एक लेखक, कवयित्री आलोचक के रूप में उनका मूल्यांकन होना शेष है। उनको मेरी ओर से श्रद्धांजलि।

पत्रिका में पूर्व की भांति कविताएं, कहानियां, संस्मरण, यात्रा-वृतांत, साक्षात्कार, कला, आलोचना विषय से संबंधित लेख आदि दिए जा रहे हैं। इस बीच दिवंगत प्रख्यात कथाकार हिमांशु जोशी और प्रतिष्ठित कवि विष्णु खरे पर भी स्मरण-लेख दिए जा रहे हैं। पाठकों से निवेदन है कि वे अंक में प्रकाशित सामग्री पर अपनी टिप्पणी या पत्रादि ई-मेल पर भेजकर प्रतिक्रियाओं से अवगत करा सकते हैं।

और नाज मैं किस पर करूं... विष्णु खरे

लीलाधर मंडलोई

खुद तुम्हारी अपनी पहली फोटो की तरह

मैं तब 11वीं कक्षा में था। और मिशन स्कूल बड़कुई का विद्यार्थी तब तक अपने गांव से बाहर दो जगहें ही देखी थीं- जमाई और परासिया। हमारे बचपन के ये दिल्ली-बंबई थे। छिंदवाड़ा जो हमारा जिला कहलाता है वह नागपुर की सरहद से जाकर मिलता है। वहां 1969 में जाना हुआ। वहां एक पाटनी टॉकीज है जिसे बाहर से आश्चर्य की तरह देखा। अंदर जाने के पैसे न थे। हां! बाहर लगा पोस्टर देखा और दिलीप कुमार की याद है। पाटनी टॉकीज के आस-पास ही मैंने तीन लोगों को देखा-संपतराव, धरणीधर, हनुमंत मनगटे और विष्णु खरे। मैं तब नाम से किसी को न जानता था। यह सब उस पहले दिन की छिंदवाड़ा स्मृति के मेल के बाद संभव हुआ। ये ही बाद में जीवन भर अपनी-अपनी तरह से साथ बने रहे। विष्णु खरे की वह 'फोटो स्मृति' अलग थी जैसे कि उसमें एक बेहिचकपन, आत्मविश्वास अधूरा बिंब।

बहुत रह लिया इस जगह लगता है

11वीं की पढ़ाई के बाद मैं भोपाल चला गया कॉलेज की पढ़ाई के वास्ते। विष्णु खरे छिंदवाड़ा लौटते रहे मानो कुछ खोजने को। उनकी कविता में छिंदवाड़ा बहुत है। वे शायद 1960 के आस-पास से छिंदवाड़ा के लिए प्रवासी ही गए थे लेकिन जीवन के अंतिम साल के कुछ महीनों पहले तक छिंदवाड़ा के बिना मानों लेखन की कोई कड़ी टूटी-बिखरी थी जिसे वे जोड़ना चाहते थे। वे चुपचाप आते और किराए के एक मकान में कुछ बड़ा लिखने का सपना संजोते। वे अपनी स्मृतियों में बच गए परिंदों-कबूतरों, गौरयों, हिरहिरियों, कठफोड़वों, बुलबुलों, मोरों, बगुलों, तोतों, उल्लुओं आदि को संपूर्ण पाना चाहते थे, जो उनके उत्तरकाल में कम हो रहे थे। उनकी एक कविता की पंक्ति है- 'बंदरों और मुझमें एक अजीब सा संबंध है।' ऐसा ही संबंध उनका छिंदवाड़ा से था-प्रदीर्घ जो छूटने के बाद आने और जाने के मोह और द्वंद्व के बीच कहीं दूसरे विष्णु खरे थे जिन्हें लोग नहीं जानते। वह एक ऐसा 'मेटाफर' हैं जिसमें जाना और जाना अधिक से अधिक है लेकिन उनके आने और आने में ही उनका जाना छिपा रहा।

वह खुद को बुझा नहीं सकता

विष्णु खरे में कुछ कर गुजरने का विलक्षण जज्बा था। चाहे कम उम्र में इलिएट का अनुवाद हो, चाहे फिल्म की सूक्ष्मताओं में उतरने का पागलपन, चाहे कविता के फॉर्म को बदलने की जिद,

और आलोचना में साफ कहने या कूड़ा कहने की कूबत। वे फिसलने की हद पर खड़ा होकर अपने गिरने की परवाह, न करते, अपनों पर भी आक्रमण करते थे मोहब्बत और कटुता के फर्क को मिटाने में वह लापरवाह थे। एक उम्र में उन्हें जो अच्छा लगा जरूरी नहीं कि वह अच्छा ही रहे। वह कभी भी उसे ध्वस्त करके भी समान्य रह लेने का गुण धारता थे। यह दूसरों के लिए तो था ही खुद अपने लिए भी वे आराम से उनको जा पाना कई बार बेहद कठिन होता। कांग्रेस की पक्षधरता तो उनकी साफ थी, वह एकाएक मार्क्सवादी होकर दलीलें कर लेते थे। कभी केजरीवाल के पक्ष में भी खड़े होने में कोई बाधा न होती। उनके अपने तर्क थे और वे अपने को कभी विद्वता तो कभी विवाद से केंद्र में बनाए रहते। अपने से वरिष्ठ लेखकों की आलोचना को वह हमेशा जीवित रखते। उनकी इन चीजों की चर्चा से वे तो दृश्य में रहते लेकिन हर विवाद के साथ वे अपने सच्चे प्रशंसक पाठकों और लेखकों को खोते जाते। बहरहाल तमाम चीजों को वे जानते थे इसलिए 'बहुत हुआ' कविता में वे कहते हैं- 'एक सीमा होती है, खुद को उपयोगी और कारगर समझने की। अपने को लेकर मेरा भ्रम और मोह पहले भी कम थे। और अब तो वह भी कभी के टूट चुके।'

लगता है कई बार कि अपना जीवन और खुद उन्होंने अपने किए जा सकने वाले काम को उतना समय नहीं दिया। बंधी मुट्ठी वे खोल न सके। और किसी में इतनी हिम्मत न थी कि उन्हें सच समझा सके।

तुम क्यों इस कदर खुश और विचलित हो

युवा कवियों से उनकी गहरी रागदारी थी। कवि में कुछ जुदा देखा तो खुश नहीं तो दुर्वासा। उनके इस स्वभाव की भी तारीफ कम नहीं हुई।

अपने को लेकर तीन प्रसंग याद हो आए। जब मैं दिल्ली आया तो जनवादी लेखक संघ में मेरा एकल पाठ हुआ। विष्णु खरे भी थे और मैं भी, लेकिन डरा हुआ। कविता पाठ के बाद वरिष्ठ और युवा लेखकों ने अपनी बात कही। विष्णुजी के बोलने पर एक धुकधुकी थी। उन्होंने कहा हम दोनों छिंदवाड़े के हैं। मैं नागर लोक यानी छिंदवाड़े का और यह छिंदवाड़े के खदानों, जंगलों और आदिवासियों का अधिक। यही हम दोनों की कविताओं की जमीन का बुनियादी फर्क है। उन्होंने कुछ कविताओं को लेकर पीठ थपथपाने वाली बातें कीं और उनका जिक्र मैं न करूंगा।

दूसरा प्रसंग विष्णु खरे जैसे वरिष्ठ कवि के संदर्भ में, मेरे लिए अकल्पनीय है। मेरी एक छोटी सी कविता है- 'खुदाई में। न माया मिली। न राम। मिला एक स्त्री का कंकाल। जिसका किसी रपट में। कोई जिक्र नहीं, यह कविता जिस दिन उन्होंने पढ़ी घर का पता लिया और नेताजी नगर शाम साढ़े छह बजे पहुंच गए। यह मेरे लिए आश्चर्य-आनंद की शाम थी। आते ही कहा-लीलाधर देख मैं आज दारू साथ लाया हूं। क्या करता तूने काम ही ऐसा किया। आज मैं बेहद प्रसन्न हूं। दो गिलास ला। मैंने गिलास हाजिर किए और इंदौर का नमकीन। अपने हाथों से दो पैग बनाए। अपने लिए नीट और मेरे गिलास में पानी उन्होंने डाला। 'चीयर्स' के बाद जब पेग खत्म हुआ तो बोले तेरी कविता में- 'खुदाई के बाद जो स्त्री के कंकाल का जिक्र है, वह मुझसे कैसे छूट गया? सीता को लेकर यह 'बिंब' क्या है, क्या बताऊं, मेरे पास होता तो एक लंबी कविता लिखता।' यह भी कहा कि यह 'बिंब' इतनी छोटी कविता में भी आकर क्या हो गया तू नहीं समझेगा। सचमुच मैं नहीं समझ सका और तब तक बहुत देर हो गई थी।

विष्णु खरे उस बीहड़ शख्स या ब्रह्मराक्षस का नाम है जो कड़ी परीक्षा लेता है। 2003 का प्रसंग है। दोपहर बाद फोन करके कहा- 'लीलाधर मेरे' 'दरमियान' जो छपने को तैयार है उसका ब्लर्ब तुम्हें लिखना है और समय पांडुलिपि मिलने के बाद कुल 30 घंटे। 31वें पर मैं किसी और से कहूंगा। अगले दिन पांडुलिपि और सांसत में जान लिए निकला। एक दिन की छुट्टी ली। दिन भर लिखता-काटता रहा। डर के मारे बुरा हाल। किसी तरह नालायकी के साथ जो संभव था लिखा और छब्बीसवें घंटे पर सौंपकर बिना एक पल रूके लौट आया। उनका न कोई फोन, न उनसे बातचीत। नींद हराम। फिर मैं वह दुःस्वप्न की तरह भूल गया। एक दिन वह किताब डाक से पहुंची और ब्लर्ब मेरा ही था। क्या हुआ उस दिन मेरे भीतर कह नहीं सकता। विष्णु खरे क्या हैं समझ में आया और क्या हो सकते हैं वह तो कल्पना से परे। ऐसे कई संस्मरण, कई यादें हैं लेकिन सभी कड़ी परीक्षा देने के... सो फिर कभी।

कभी एक फंतासी में एक अनंत अंतरिक्ष यात्रा पर निकल जाता हूं देखने

विष्णु खरे में आप एक नृतत्वशास्त्री, समाज विज्ञानी, इतिहासज्ञ और राजनीतिज्ञ को देख सकते हैं। कविताओं में बार-बार महाभारत का उल्लेख उनकी चेतना में केंद्रीय बना रहा। पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन एक समानांतर सिरा था। सो उनके भी पास-पड़ोस से लेकर अंतरिक्ष और इतिहास से लेकर मिथक की यात्रा में एक फंतासी लोक भीतर बन गया था। उनकी एक कविता में यह सब मिल जाता है मानों उनकी बेचैनी सब कुछ पा लेना चाहती थी। उन्होंने लिखा है- 'कोई नहीं जानना चाहता शायद कि क्या इनमें कोई वास्तविकता कथा लिखी हुई है।' विष्णु खरे जो नहीं लिखा गया ऐसे विषयों को साधने का संकल्प उठाकर लिखते हैं। उनकी कविता में बदनाम औरतें, हिजड़े, कोमल गांडू जैसे किरदार भी आराम से जी सकते हैं। जन सामान्य तो अनेक मौजूद हैं अपनी निजता के साथ। और नदियां, जंगल, पशु-पक्षी धर्म के ग्रंथों से उभरे मिथक और अंतरिक्ष सभी जगह उनकी चेतना देखी जा सकती है। इस बात के प्रभाव में ये पंक्तियां-

कभी एक फंतासी में एक अंत
अंतरिक्ष में यात्रा पर निकल जाता हूं देखने
कि कहीं पृथ्वियों, आकाश गंगाओं, नीहारिकाओं पर
या कि पूरे, ब्रह्मंड पर भी कौन सी भाषा, कौन सी
लिपि किस लेखनी से
कहीं कोई असंभव रूप से नहीं लिख रहा धीरे-धीरे
परिव्यक्त

विष्णु खरे फंतासी में बड़े सरोकारों की ओर जाते हैं। सफलता-असफलता से अधिक था उनके लिए लेखन में जोखिम उठाना। वो खूब उठाया। ●

कृष्णा सोबती : एक मुलाकात

गरिमा श्रीवास्तव

लगभग 94 वर्ष का एक लंबा सफर तय कर हिंदी साहित्य को अद्‌भुत ढंग से समृद्ध कर के कृष्णाजी इस वर्ष के शुरू में ही जा चुकी हैं। बच गई हैं उनके पीछे से ढेरों किताबें और उन किताबों में बिखरे विपुल पात्र जो बहते हुए जीवन की गति में हँसाते-रुलाते रहेंगे और याद दिलाएंगे कि हाड़-मांस, अस्थि-मज्जा की बनी एक औरत ने अपने एकांत में, जीवन का गीत गाते हुए न जाने कितनी कहानियां रचीं, उपन्यास लिखे और जीवन का भरपूर प्याला पीकर अपनी चरम यात्रा को रुखसत हुई। इन्हीं कृष्णाजी से दो वर्ष पहले की एक मुलाकात का जिक्र अपने पाठकों से कर रही हूं।

'ऐ लड़की' में कृष्णाजी की पात्र अम्मू कहती है- 'अपने आप में आप होना परम है।' खुद पाए हुए अनुभव श्रेष्ठ हैं जिसका विकल्प और को अनुभव हो ही नहीं सकता।' कृष्णाजी लिखती हैं- 'मैं किसी को नहीं पुकारती। जो मुझे आवाज देगा, मैं उसे जवाब दूंगी' मेरी पुकार का ऐसा ही जवाब दिया था एक सुदीर्घ रचनात्मक जीवन जीने वाली और आज भी खूब सकारात्मक ऊर्जा से भरी हुई कृष्णाजी शरीर से भले वृद्ध हों लेकिन विचार के स्तर पर युवा हैं, खूब जमकर लगातार लिख रही हैं, भावुकता, उदारता और बौद्धिकता का अद्‌भुत संगम-बात बात में जोर का कहकहा, जुबान से धाराप्रवाह फिसलती फारसी, पंजाबी और अंग्रेजी, जिंदगी और जिंदादिली, अद्‌भुत जिजीविषा... हँसकर कह पड़ी मुझसे 'मैंने तो इसे (सहायिका) को फोन नंबर लिखकर दे रखे हैं, कि किसी सुबह आवाज देने पर मैं उस पुकार से परे जा निकलूं तब हां और सुनिए गरिमा! जी चाहता है वहां ऊपर अल्ला मियां से कहकर वनरूम फ्लैट आरक्षित करवा लूं...' मैं हतप्रभ हूं और वे हैं कि हँस रही हैं। नौ दशकों का सफर विश्रांत हो रहा है, इसे समझकर भी मन चाहता है कि यदि कोई ऊपर हो और मेरी बात सुने तो उससे अर्ज करूं कि इस सोहबत को भरपूर स्वास्थ्य दे कि और कुछ वर्ष वे लिख सकें, ऐसा कुछ जिससे हम ऐसे पाठकों में शुमार हों जिन्होंने जिंदगी को अपनी शर्तों पर जीने की तमीज सीखी है, उन्हें पढ़कर वे इन दिनों गुजरात पर लिख रही हैं बिना रुके, अपनी तकलीफों के पुलिंदों को छिपाए हँसकर मिलजुल रही हैं। कहती हैं- दिल्ली में लोग आपस में मिलने-जुलने का रिवाज कम ही रखते हैं- कैसे कहूं उन्हें कि अपरिचय और कृत्रिमता ही आज किसी भी शहर की रवायत बन चुके हैं। गांवों में भी धीरे-धीरे ये बीमारी पंहुच गई है। कर्ण-गुहा में मोबाइल का प्लग फंसाए हम दूसरी दुनिया के निवासी हैं, जहां दूसरे के दुःख सुख, हँसी, कराह की ध्वनियां वर्जित

हैं, अजनबियत भी आत्मरक्षा का एक हथियार है लेकिन फिर हम विरासत पाएंगे किससे, जीवन को समझने की अनुभव संपन्न दृष्टि दे सकने वाले लोग अपनी-अपनी यात्राओं पर चले जाएंगे, और हम सभाएं कर उन्हें स्मरण कर कर्तव्य कर लिया करेंगे। आज दिन के चार-पांच घंटे एक अरसे के बाद उनके साथ गुजारे... या यों कहूं जीए। सन् 1994 में एम. फिल. की उपाधि के लिए उनकी किताब 'ऐ लड़की' के चुनाव का सुझाव प्रो. नित्यानंद तिवारी ने दिया था। संकोच और कम उम्र के तकाजे ने कृष्णाजी से एक निश्चित दूरी बनाए रखी। इस बार दिल्ली आने पर जब उनका फोन आया कि ज्वाइन कर लिया हो तो मिलने आ जाओ। हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय ने उन्हें जब डी. लिट्. की मानद उपाधि (Honoris Causa) दी तो विश्वविद्यालय स्वयं सम्मानित हुआ, और शायद हिंदी पट्टी के विश्वविद्यालयों में भी हिंदी की इतनी बड़ी रचनाकार को Honoris Causa दिलवा देना इतना सहज भी नहीं होता। हमारे विभाग में तत्कालीन विभागाध्यक्ष प्रो. रवि रंजन और सहयोगियों ने इस प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया और अंततः स्तरों से गुजरने और शैक्षिक परिषद की हंगामेदार बहस के बाद स्वीकृति मिल ही गई, विभाग में सब एकमत थे कि दूसरे के सम्मान से हम खुद सम्मानित होते हैं। 2012 के दीक्षांत समारोह में कृष्णाजी का स्वयं आकर सम्मान लेना स्वास्थ्य संबंधी दिक्कतों के कारण हो नहीं पाया, उनकी जगह अशोक वाजपेयी (जिन्हें है .के .वि वि. ने सम्मानित किया था) ने सम्मान उन तक पहुंचाया, लेकिन हम हमेशा फोन पर लंबी चर्चाएं करते रहे। जेएनयू के भारतीय भाषा केंद्र के सहयोगियों से मैंने कृष्णा सोबती से अपनी भावी मुलाकात का जिक्र किया था दिन में, और रात को अरावली के कमरे में, जहां हर घंटे यूं गिना करती कि लो अब बोईंग विमान उड़ान के पहले रनवे पर बीस मिनट घिसटा, अब दो-चालीस हुए और विशाल भारी पंखों, जगमगाती बत्तियों वाले विमान को जेएनयू पर मंडराने के अलावा कुछ सूझ ही नहीं रहा, लाइन क्लियर नहीं है, जाग पड़ी रहती है-अनिद्रा और निद्रा के बीच सपने में यों भासा ज्यों वे व्हील चेयर पर बैठी हों, बड़े फ्रेम का चश्मा पहने, काले दुपट्टे से सिर और गले को लपेटे, बीच में गौरवर्ण तेजस्वी मुख दीप्त हो और मैं उन्हें दिखा रही होऊं जेएनयू के पेड़-पौधे, मानुस, नया इंडिया काफी हॉउस, गंगा ढाबा, पार्थसारथी रॉक, खूब पढ़ाकू छात्रों से भरी लाइब्रेरी, हवा, चप्पल पहने तेजोद्दीप्त आवेगमय विद्यार्थियों का झुंड, अपने में ही गुम सर झुकाए जाते सह-अध्यापक, नीलगायों के झुंड, मोरों के रंगीन पंख और देर रात नाच गान करते कई छात्र वे देखती हों हर चीज को कौतुक से, मेरे उत्साह से उत्साहित सी,ज्यों पहली बार स्वच्छ आकाश में पेड़ों के बीच से झांकते तारों की बोली बानी सुनती हों...

कृष्णाजी उन लोगों में शुमार हैं जो मनुष्य को जाति, वर्ग और जेंडर के कठघरे में बांटने से पहले उसके आत्यंतिक सत्य को महत्व देती हैं-शबारी उपरे मानुष सत्य जेएनयू में ज्वाइन करने के बाद मैंने उनसे कहा कि सर्दियों की छुट्टियों के बाद आपको मिलती हूं, लेकिन उनका आग्रह था अभी मिलो न इस अभी मिल लेने में कुछ था जो कहा नहीं गया पर महसूसा गया-वह था, कल किसने देखा है? मुझसे हाथ मिलाकर बोलती हैं आप तो तीसरी पीढ़ी की हैं। पैदाईशी महानगरीय होना और छोटी जगह से आकर यहां बस जाने के फर्क को देर तक समझाती हैं। मैंने हौले से उनके झुर्रियों भरे गोरे हाथ को छू लिया है, दो उंगलियों में हीरे की अंगूठियां हैं, कलाई में सोने का एक सादा सा कड़ा, त्वचा झूल गई है, नीली...हरी नसें हड्डियों को मजबूती से थामे हुए हैं। उंगलियां कलात्मक हैं मेरी उंगलियां देख रही हैं वे भी गौर से चश्में के भीतर एक जोड़ी चुस्त और चौकन्नी आँखें हैं, सुनने

बोलने में कहीं को दिक्कत नहीं, बस कहती हैं कि अब थक जाया करती हूं, देर रात तक जाग कर काम करना उन्हें पहले से ही सुहाता है, इसलिए सुबह देर से सोकर उठती हैं। आपको ग्यारह बजे आना था इसलिए आज जल्दी उठ गई'- और बच्चों की तरह खिलखिला उठती हैं। सर को उन्होंने काले ऊनी टोपे से ढंक रखा है, मैंने थोड़ा इठलाकर कहा है कि उनके सन से केश देखना चाहती हूं, वे बिलकुल आत्मीय पुरनिया की तरह टोपी उतार देती हैं, रवींद्रनाथ ठाकुर की श्वेत केश राशि याद आ रही है। अब वे कुछ ज्यादा ही कमजोर हो गई हैं... सालों पहले की कृष्णा सोबती जिनकी विस्तृत आडंबरपूर्ण 'हाई-टी' का लुत्फ बहुत से साहित्यकार, अतिथि, परिचित उठाया करते थे, उसकी रौनक मंद भले हो गई हो, बुझी नहीं है। सहायिका ने इशारा समझकर चाय का एक लंबा सरंजाम रख दिया है। मैंने नोटिस किया है कि वे बहुत कम खा रही हैं... न के बराबर, लेकिन निरंतर इस बात का ख्याल रख रही हैं कि मेहमाननवाजी में कुछ कमी न रह जाए। ये वो पीढ़ी है जिसकी जड़ें भारतीय सभ्यता और संस्कार में गहरे तक जमी हैं और पाश्चात्य संस्कृति से पुष्पित-पल्लवित हुई हैं।

कृष्णाजी अपने बचपन के दिनों को याद कर रही हैं। शरीर यहीं सोफे पर मेरे साथ बैठा रह गया है और आँखों की पुतलियां थोड़ी सिकुड़ गई हैं और दृष्टि स्थिर, जा पहुंची है अतीत के सुदूर कोने अंतरों को देखने 'हमारे पिता रात को रोशनी बुझ जाने पर घर के बीचों-बीच बैठकर लालटेन की मंद रोशनी में कोई साहित्यिक टुकड़ा पढ़ा करते, हम सब अपने अपने बिस्तरों पर लेटे, घर में गूंजती उस गुरु गंभीर मंद आवाज को सुना करते, भाषा की ध्वनियां और उसका शब्द भंडार अजीब रहस्यमय ढंग से हमारे कानों के जरिए सीधे दिल में उतर जाया करता भाषा के संस्कार हमने अपने माता-पिता से पाए, और अनुशासन भी।'

मैंने उन्हें कुरेदने की कोशिश की है आपकी पहली रचना? वे बोल उठी 'चन्ना' शीर्षक मैंने पहला उपन्यास लिखा था, जिसे छपाया नहीं क्योंकि इलाहाबाद के किन्हीं लल्लूलालजी ने कंपोजिंग में ही पंजाबी के लोकशब्दों को अपनी तरफ से सुधारकर शुद्ध हिंदी के शब्द भंडार में शामिल करने योग्य बना लिया था, मसलन शाहनी को उन्होंने सुधारकर शाह-पत्नी कर दिया, अपने बचपन की बोली-बानी, रवानीदार पंजाबी मुहावरों को खड़ी बोली का चुस्त पहनावा पहनाना मुझे असहय हो गया, और उसे प्रकाशित करवाने का विचार त्याग दिया। मैंने उनसे कहा है कि मुझे 'जिंदगीनामा' के अगले खंड की प्रतीक्षा है, वे मुस्कुराती हैं और मेरी आँखों के सामने बड़े शाहजी के सिरहाने शब्द उचारतीं राब्यां की चुनरी की कोर झिलमिला गई है। क्या आप ही हैं राब्यां? आप कब कहां मिलीं राब्यां से जिसकी आवाज का दर्द, दीनो-जहान में मुहब्बत का दर्द हर उस पाठक के दिल में टीस-सा जिंदा है जो पैडे मारती राब्यां को शाहजी के पीछे पीछे दरिया में उतरता देख चुका है, जाति-बिरादरी, उम्र शरीर के परे शाहजी की राब्यां के लिए दीवानगी देख चुका है, ताक पर रखे दीए की लौ-सी झिलमिला रही हैं। कृष्णाजी की आँखें... न न राब्यां की आँखें। जिस दिन वह लाली शाह की पुकार को अनसुना करके दरिया में उतर गई थी बेआवाज हौले चुपचाप सारी हवेली की दौलत को पीछे छोड़कर चली गई थी उसी दरया में जहां शाहजी गए थे तब से ढूंढ रही हूं मैं उस राब्यां को मिली नहीं कभी मिलेगी भी नहीं 'सिक्का बदल गया' की शाहनी ट्रक पर चढ़ा दी गई है, खेत, दौलत, संबंध,नाते, शाहजी की स्मृतियां सब कुछ पीछे छूट रहा हैं, ट्रक की गति उस शाहनी को दूर ले जा रही है मुझसे क्या

आप ही हैं शाहनी राब्यां कृष्णाजी की आँखें झिलमिला रही हैं या मेरी आँखों का पानी ही धुंधला कर रहा है मेरी नजर को जी कह रहा है कहूं- 'मत जाओ राब्यां, कहीं मत जाओ, यहीं सबद उचारो, तुम्हारे शाहजी नहीं लेकिन अब वक्त बदला है तुम्हारी जरूरत है बहुतों को मत जाओ शाहनी अपने खेत-खलिहानों को छोड़कर ये नन्हें- मुन्ने सरसों के पौधे सर्द हवा में बाहें फैलाकर तुम्हें बुलाते हैं रुक तो जाओ यूं भी जाता है को रुको न अम्मू! तुमने कहा था लड़की! परलोक होता है दूसरों का लोक परायों का वहां का रास्ता क्यों देखना मुझ जैसी कई लड़कियां होंगी जिन्हें जरूरत होगी तुम्हारे अनुभवों से बहुत कुछ सीखने की, अभी अपनी तैयारी स्थगित रखो शाहनी।

जिन्होंने कभी किसी को आवाज नहीं दी, बस पुकार का उत्तर भर दिया, वे जीवन भर स्वाभिमान से कभी समझौते न करने वाली रचनाकार के रूप में जानी जाती रही। जिस शहर की आबोहवा में हर दूसरा रचनाकार पुरस्कृत हो, या होने के लिए लालायित हो, उसी शहर में आपने बड़े-बड़े पुरस्कारों को दरवाजे से लौटा दिया 'इसका अफसोस नहीं है मुझे' स्वाभिमान और अपनी शर्तों पर जीने के लिए कहीं हाथ नहीं फैलाया, 26 साल की कानूनी लड़ाई लड़ी और उसी में घर बिक गया-ये बताते हुए चेहरे की मुस्कान धूमिल! नहीं-नहीं कहां। दुःख या अफसोस के बादल का कोई नन्हा टुकड़ा भी नहीं, निरभ्र अपरिमित विस्तार छोटे शामिल की यादें, विभाजन की यादें जो मन में आए कर डालना चाहिए, न कोई दोस्त न कोई दुश्मन मैं अपना दिल खुद ही लगाती हूं। लोग कहते हैं आप अपने निज के बारे में कुछ नहीं बताती। कभी किसी ने मुझसे पूछा कि सुना था कभी आपका एक प्रेम प्रसंग था तो मैंने जवाब दिया। सुनिए मेरी इतनी बुरी हालत कभी नहीं थी, जहां सिर्फ एक ही प्रेम-प्रसंग होता' इसके साथ ही हमारी समवेत हँसी उम्र की दीवारों को ढहाते हुए कलकल नदी सी बह उठती है जिसकी छलछलाहट बहुत दिनों तक स्मृति का मंद स्मित बिखेरती रहेगी।

इन दिनों 'दिलोदानिश' का पाठ हो रहा है जामिया मिल्लिया में, शाम को कृष्णाजी को वहीं जाना है। मेरे पास समय नहीं कि अपनी प्रिय रचनाकार के इस उपन्यास पाठ में शामिल हो सकूं। लौटने का वक्त हो चला है- 'सिक्का बदल गया' की शाहनी ने अपने गहने जेवर कुछ नहीं साथ रखे थे, चल दी थी शरणार्थी कैंप में दूसरों के साथ कभी न लौटने के लिए, संग कुछ ले गई ही नहीं कौन ले जा पाता है इस दुनिया से चीज बस्त, अपनी सांस जब तक साथ दे तब तक ही है मैं, मेरा, अपना, हमारा ज्यों ही औचक बुलावा आया उसी समय राब्यां चुपचाप दरया की लहरों में गुम बादलों के घेरों ने घेर लिया है चुपचाप अपने रास्ते चल देना है। किसी से गिला शिकवा क्यों जीवन जितना मिला, जैसा मिला, भरपूर जिया, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया हां जब तक रहे सुकून से रहे, अच्छा खाया, अच्छा पहना गरारे से लेकर शरारे तक, अपनी धज सबसे अलग रखी, किसीको रुचे तो ठीक,न रुचे तो राम-राम मुझे विदाई जैसा कुछ दे रही हैं वो एक सुंदर काला कुरता, जिस पर चांदनी के मोर बने हुए हैं, मानों कहती हों पहनना तो याद करना मुझे। झिलमिली आँखों में बालबंगरा के दालान में सिर पर हाथ रखे छोटे गोल मुख वाली नानी की तस्वीर है, जो दिल्ली लौटने के दिन कहती थी 'फेर लौट के अइह, गर्मी के छुट्टी में'- विदा लेते कलेजा मुंह को आता था, सोचा था नौकरी करूंगी तो नानी की देखभाल करूंगी। नानी उससे पहले चली गई, और फिर ननिहाल के नाम पर सब कुछ बचा रहा नानी के सिवाय। कृष्णाजी मुझे विदा दे रही हैं। उन्हीं की लिखी पंक्तियां याद आ रही हैं, जिन्हें दोहराने की इजाजत बड़े संकोच से मैंने मांग ली है 'लड़की, प्याला बना ही इसलिए कि उठाओ

और पी जाओ। जब तक पी सकते हो पीते रहो' जीवन हिरण है हिरण कस्तूरी मृग इस क्षणभंगुर जगत में अपनी महक फैला यह जा और वह जा। 'सुनते ही वे आनंद से ताली बजाकर हँसने लगी हैं तुमको याद है इतना सब? मेरा जवाब है मुझे तो आपका पूरा उपन्यास याद है। कृष्णाजी ने बाएं पासंग पर रखी एक छोटी किताब से एक टुकड़ा निकाला है और कहती हैं। इसे बोलकर पढ़िए मुझे मालूम है कि ये टुकड़ा कौन सा है, वे मेरा उच्चारण सुनना चाहती हैं। नफीस उर्दू की नज्म मन को ताजा कर गई है...

ठंड बढ़ने से पहले जेएनयू पहुंचना है... दीवार पर शिवनाथजी की मंद मुस्कान टंगी है, कोई माला नहीं जो साथी यहीं हैं पुराने कांच के गिलासों में, बुद्ध की धूल भरी प्रतिमा में, विवर्ण हो चुके गाढ़े रंग के सोफे कवरों में, सीले-सीले से रेशमी पर्दों में, रंग और पुताई की फरियाद करती दीवारों और छतों में, कभी रोशन करते कांच के झाड़-फानूसों में, उस की तस्वीर पर माला क्यों। उसकी उपस्थिति तो उत्कीर्ण है पांचवीं मंजिल के फ्लैट के दरवाजे पर स्टील की प्लेट पर-

जेहलम और चनाब
बहते रहेंगे इसी धरती पर
लहराते रहेंगे
खुली-डुली हवाओं के झोंके
इसी धरती पर
इसी तरह
हर रुत-मौसम में
इसी तरह
बिलकुल इसी तरह
सिर्फ
हम यहां नहीं होंगे
नहीं होंगे
फिर कभी नहीं होंगे
नहीं। (जिंदगीनामा)

●

विष्णु खरे को याद करते हुए

ओम भारती

‘नहीं मै देखना चाहता हूं चिड़िया को उस क्षण में
जब वह आखिरी उड़ान के पहले अपने आप निश्चित करती है
कि यह उसकी आखिरी उड़ान है
और बिलकुल पहले ही की तरह
उठ जाती है घड़ियों और नक्शों के बाहर
उस जगह के लिए जहां एक असंभव वृक्ष पर बैठकर चुप होते हुए
उसे एक अदृश्य चिड़िया बन जाना है
देखना ही चाहता हूं
क्योंकि न मैं चिड़ियों का संकल्प पा सकता हूं और उड़ानें
मैं सिर्फ अपनी मृत्यु में उनकी कोशिश करना चाहता हूं।’

9 फरवरी, 1940 को जन्मे विष्णु खरे... ने की रात अपनी उड़ानों की कोशिश को पूर्णता दी और हमारे वक्त और भूगोल से उठकर इतिहास में दाखिल हो गए। उनकी कविताओं में मृत्यु शुरू से उनके साथ थी और अंततः उन्हें अपने साथ ले ही गई। प्रख्यात कलाकार- शिल्पी जे. स्वामीनाथन के बहाने उन्होंने मानो खुद को चेताया था- ‘(प्लायोसीन युग में) एक भय-मिश्रित मृत्यु (पत्थर लिए) तुम्हारा इंतजार कर रही है शहर में’ और वे मुंबई से दिल्ली चले आए थे उसकी प्रतीक्षा को पूर्णता देने।

वह एक सिद्ध और प्रसिद्ध कवि थे और एक ऐसी नसैनी पर ऊंचाई की तरफ चढ़ते रहे जो अपने चढ़ने वाले के साथ खुद को भी विलुप्त कर लेती है। समकालीन कविता में बाजार बना लेने वाले में कवियों ने अपनी ऊंचाई के कुछ इंच पैदाइश के वक्त ऊपर ही छोड़ आए लोग इफरात में हैं। विष्णु खरे का कुछ उनके लिए एक खौफनाक वास्तव ही हो सकता है। विष्णु खरे अपने विश्व में व्यस्त, निर्लिप्त अकेलेपन में और बेपरवाही में न्यस्त एक नामुमकिन सी-संभावना गद्य से बुनी आधुनिकतम कविता में विन्यस्त करते कवि हैं। ‘असंभव- यह शब्द उनकी कविताओं में खूब आया है और अपनी खूबी के साथ आया है। असंभव खतरनाक हरकतों, वनस्पतियों, वृक्षों और परिवर्तनों आदि को टोहती-जोहती ये कविताएं बार-बार एक अंसभव व करूण आवाज हो जाती हैं। उनमें ठौर-ठौर पर एक ऐसी घटना की स्मृति है जो अभी घटी नही है, और उसका अंदेशा भी दूसरे अनेक

को छू तक नही पाया है। इस अवश्यंभावी असंभवों के लिए उनका दिमाग रह-रहकर एक अधखुला दरवाजा टटोलता लगता है। खालीपन को जैसे स्मृतियों के चाबी-गुच्छे से खोलकर वे असल सच को हासिल करना चाहते रहे। उन्हें अहसास था कि 'जब हम सच को पुकारते हैं, तो वह हमसे परे हटता जाता है।' जब-तब वे बातें कर लेते थे अपने आप से अपने पुरखों से और खुद ही पाते थे जवाब। स्वयं से स्वयं के सवालों के उत्तर पाने का उनका संसार अनंत है सो, छिंदवाड़ा की गीली मिट्टी से सने प्रतीतते इस कवि के लिए सारा देश छिंदवाड़ा हो जाता है, या कहूं कि सारा देश और समूचा ब्रह्मंड हो जाता है। कविता संभव करते हुए विष्णु खरे मुक्तिबोध द्वारा रेखांकित की गई कहन-शैली में, मध्यप्रदेश की कहन-शैली में है। 'मिट्टी' कविता को स्मृति में लाइए- 'बहुत लौटाते रहे हो तुम छिंदवाड़ा को/ अपनी स्मृतियों में विष्णु खरे/ काफी भुनाया है तुमने/ मध्यप्रदेश के रंगों, गंधों और आवाजों को।' खुद को भी व्यंग्य के निशाने पर ले आने का यह उनका निजी ढ़ंग है।

तो मानसिक दृश्यालेख के कई-कई फोटोजनिक हिस्से हैं जो किसी 'विपरीत दिशा में स्थित चीजों पर/बहुत पैने ढ़ंग से अपलक धैर्य से गौर करते हुए कवि के कोठार में ही हो सकते हैं। एक स्थिर होती हुए किंतु खुली आँख से, खुद अपनी आँख से निहारने की अदा और आदत वाले विष्णु खरे इस तरह भी दूसरों से भिन्न हैं। वे मानों 'अँधेरे में एक पीला हिलता-डुलता प्रकाश- वृत्त डालते थे।' और उसी में वास्तव को असल सत्य को चीन्हना की चेष्टा-वृत्ति उनकी चेरी बनी रहती थी। फिर बयां करने का अंदाज तो वही था। 'गोल को गोल कहो और चौकोर को चौकोर'। आप भी मेरे साथ जर्मन कवि गॉटफ्रीड बेन की कविता- सतरों का अंतिम सिरा- 'इस तरह रात दिन काम लगे तुम गढ़ते हो/ रविवार को भी रचते हो अपना व्यक्तित्व/हथौड़ी से पीटकर चांदी मढ़ते हो/ फिर उसे तज देते हो-यह है : अस्तित्व।' क्या आप मेरी राय से इत्तफाक रखेंगे कि उन्होंने यू गढ़ा अपना व्यक्तित्व और साहित्य-सृष्टि में साबित कर दिया अपना अस्तित्व। (यह जर्मन कविता विष्णु खरे द्वारा ही हिंदी में अनूदित है और उनकी 1984 में प्रकाशित अनुवाद कृति 'हम चीखते क्यों नहीं' में मैंने पढ़ी थी। बीसवीं सदी की पश्चिम जर्मन कविता को सकेलता यह संकलन हमें नीतेश व रिल्के से लेकर ब्रेख्त और गुंटुर ग्रास और फिर रॉल्फ ग्लोएक्लेर तक चुनिदां कवियों से हमें मिलवाता है। इस अनुवाद कर्म पर मैं आगे वापस आऊंगा।

मैं अपने कॉलेज के दिनों से भाई गिरधर राठी और (स्वर्गीय) विनय दुबे जैसे अग्रज कवि मित्रों के मार्फत विष्णु खरे की कविताई के मुखातिब हुआ था। यह साठ का दशक था। सन् 1970 की पहचान सीरीज में प्रकाशित कविताओं की पुस्तिका से विष्णु खरे नजदीकी से पहचाने जा रहे थे पर उनसे मिलने का मौका मेरे नौकरी में आने के बाद सत्तर के वर्षों में आया। सन् 1978 में उनका कविता संकलन 'खुद अपनी आँख से' प्रकाशित हुआ और वे समकालीन कविता के स्थापित कवियों में शुमार हुए। अपने आस-पास और दौर को ही नहीं इतिहास के सच पकड़ने की उनकी कामयाबी के सब कायल हुए तो आगामी चीजों के इशारे पकड़ने के उनके तरीके से भी आश्वस्त हुए। द्वंद्वात्मक समझ के साथ यथार्थ के सचों के साक्षात् होना हो तो विष्णु खरे की ये पंक्तियां बड़े काम की हैं- 'दृष्टि वहां रखो जहां कुछ सोचते वक्त रखते हो/वे फौरन किसी अजाने नेपथ्य से प्रकट हो जाएंगे।'

अपने वक्त की बहुप्रतिष्ठ पत्रिका 'दिनमान' (26 नवंबर-2 दिसंबर 1987) के अंक में रघुवीर सहाय ने विष्णु खरे की कविता किताब 'खुद अपनी आँख से' की जो समीक्षा पाठकों को सौंपी थी,

उससे हम जैसे युवतर कवि ही नहीं विष्णु खरे भी सीखने की चाहत रखते थे। आखिरकार रघुवीर सहाय 'सन्नाटा छा जाय जब मैं कविता सुनाकर उठूं' की मुश्किल सी उम्मीद रखने वाले कवि थे, और हम सब के वरिष्ठ भी। उस समीक्षा से विष्णु खरे ने प्रेरणा और बल प्राप्त किया, यह वह कहते भी थे और 'पिछला बाकी' की 'कैफियत' में उसे लिखकर दोहराया भी था। इसी क्रम में यह याद करना भी अप्रसंगिक न होगा कि अपने इस कविता संकलन का समर्पण विष्णु खरे ने बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में उभरकर आए कविता लिखने वालों के नाम किया था और इस पुख्ता यकीन के साथ किया था कि यही युवा 21वीं सदी की हिंदी कविता को ज्यादा समृद्ध करेंगे।

'सबकी आवाज के पर्दे में' (सन् 1991) में उनका नया संग्रह आया तो उन्हें बड़े कवियों के दर्जे में रखने में मुझे बहुत आसानी हुई। 'इंडिया टुडे' में मैंने इस संकलन की एक समीक्षा की थी जो उन्हें बहुत अच्छी लगी थी और मैंने उनसे कविता के साथ ही समीक्षा-दृष्टि के लिए भी सराहना पाई थी। मुझे याद है, इस समीक्षा के प्रकाशित होने पर पहला (टेलीफोन पर) अप्रीसिएशन कवि मित्र मंगलेश डबराल का मिला था, जिसके बाद मैंने अपनी ही छपी टीप को एक बार फिर से पढ़ा था। 'अर्थ' कविता कदाचित वह 'क्लू' या सुराग देती है, जिससे मैं समझ सकूं कि विष्णु खरे अच्छी कविता से क्या आशय उगाहते थे। यह समझना-समझाना इतना सीधा और सहज नहीं है कि कोई 'लालटेन' (मसलन, मौजूदा अँधेरे में, गद्य में कविता की कठिन कवायद करना हो तो वाजिब रोशनी के लिए) अच्छी तरह क्यों जलाई जाए। विष्णु खरे के लिए तो सत्रह साल की उम्र में उपजा एक खब्त मानो अंतिम दम तक अजीज रहा। उनकी 'लालटेन जलाना' की यह पंक्तियां मेरे लिए, मेरी बात के लिए उपयुक्त-उपयोगी होंगी- 'लिहाजा अच्छे जलाने वाले/लालटेन को अपनी पहुंच के पास लेकिन वहां रखते हैं/जहां वह किसी से गिर या बुझ न जाए/और बाती को वहीं तक नीची करते हैं/जब तक उसकी लौ सुबह उगते सूरज की तरह/लाल और सुखद न दिखने लगे।' वह किस लाल खुशगवार सवेरे के लिए आसमंद होकर रच रहे थे, जिसकी चाहत रखते थे, इसका खुलासा करने की दरकार नहीं है। उन्होंने अपनी वैचारिकता को, पॉलटिक्स को कैसे भी ढापने की असावधानी ही बरती, बखूबी बरती।

दोहराव का दोष लेते हुए भी मैं कहता हूं कि उनका कवि छोटी-छोटी जिंदगियों में जायज और भरपूर करीबी, खुर्दबीनी और दूरगामी दिलचस्पी रखता है, अपनी जान चस्पा करता है, उन पिद्दी से पिटे प्राणधारियों से जिनका होना आज ही हमारे आत्मलीन अधिकांश में कोई आवाजें, कैसे भी मायने पैदा नहीं करता। (दूरबीन शीर्षक से उनकी कविता खासी चर्चित रही है) वे आद्योपांत ऐसी ही नाचीज इकाइयों से, उनके एक अस्पृश्य विराट से संपृक्त रहे, ससक्त रहे, इसीलिए उन्हें रास आया बहुत ज्यादा कहना, बेमतलब की झाईं सा लगता कहना, जो हमें यानी बहुतों को बहुत खामोश कर दे, सन्न कर दे। (फिर रघुवीर सहाय याद आते हैं)। हिंदी में कतिपय आवश्यक क्रियापदों के दुःखद अभाव को रेखांकित करते हुए विष्णु खरे संभवतः विवश होकर कुछ लंबे रूपकों का सहारा लेते हैं। ऐसा करते हुए वे हमारे कई पुराने मिथकों की तहों, तहखानों में से अद्‌भुत नए अर्थ खींच लाते हैं। मिसाल के लिए याद कीजिए, वे महाभारतोत्तर कृष्ण का, 'वर्षों से विस्मृत बांसुरी और राधा का अचानक स्मरण करते हुए कृष्ण को आधुनिकता के आईने में निहायत खूबसूरती से उतार सके हैं।'

उनकी भाषा का क्षेत्रफल विकट व्याप्ति लिए हुए है, जिसमें 'मुनिसपैल्टी' के रूप में अपढ़ों की अंग्रेजी सांस लेती है तो 'मेंशंड डिस्पैचेज' जैसी ठेठ अंग्रेजी भी समाहित हो जाती है। वे शब्दों की एक प्रवाहमान अनंत लीला मात्र रचने से ऊपर उठकर छोटी जिंदगानियों का 'थिसारस' छानते हैं। परोसमार, गाहक और दस-पंधरा घरों जैसे प्रयोग उनकी कविताओं में अर्थगर्भिता रचते हैं तो संकोचशील और पिश्टोक्ति जैसे विशेषण या संज्ञापद खटकते नहीं बल्कि चटक चांदनी सा छिटकते हैं।

रघुवीर सहाय की स्मृति को उन्होंने 'हम इस धरती के नमक हैं' अनुवाद कृति समर्पित की थी, जो 1991 में आई थी। यह संकलन हिंदी ही नहीं दक्षिण एशिया की किसी भी भाषा में स्विट्जरलैंड की प्रतिनिधि कविताओं की पुर्नप्रस्तुति थी, वहां की चारों भाषाओं- जर्मन, फ्रांसीसी, इतालवी और रेटो रोमांश- में लिखी जा रही आधुनिक कविता को हम तक पहुंचाने वाली अद्वितीय कोशिश थी। 'स्विस' नामक कोई भाषा नहीं, पर अनूदित सब कवि 'स्विस' कवि हैं। विष्णु खरे इसकी भूमिका की समाप्ति इस लंबे वाक्य से करते हैं- 'स्विस कवि ठीक यही कर रहे हैं- वे अपने देश की पिक्चर पोस्टकार्ड छवियों को, खुशहाली और समृद्धि के दावों को, तटस्थता के टोटकों को और महाजनी सभ्यता को हटाकर एक तरफ रख रहे हैं और वहां आदमी के लिए जगह बना रहे हैं। कदाचित विष्णु खरे भी कुछ ऐसा ही हमारे यहां करते रहे। उनके कई कामों में जो एक काम मुझे प्रभावित करता था सर्वाधिक, वह था अपने देश, समाज और समय की पिष्टपेषित धारणाओं और पूर्वाग्रहों को लांघते हुए स्वयं को व अन्य को उनके मानवीय यथार्थ को जतलाते हुए बतलाना।

अंत में मुझे उनकी कविता 'स्कोर बुक' का यह हिस्सा उद्धृत करना आवश्यक लग रहा है कि 'दर्ज रह जाती हैं यह अपनी निरीह कामयाबियां किसी स्कोर बुक में।' उन्होंने अपने बनाए रनों का हिसाब नहीं रखा, तालियों और फिक्रों से बेखबर देखते जरूर रहे कि गेंद को सीमा पार कराने के बावजूद उनमें वह रवानी और सफाई आ पाई या नहीं, जो वे हमेशा से चाहते रहे। अपनी कल्पना और सपनों में वह अपने प्रहार, शॉट, स्ट्रोक मुकम्मिल करते रहना कभी नहीं छोड़ सके। उन्हें मेरी विनम्र और आत्मीय श्रद्धांजलि। ●

पीठ पर महसूस होता वह हाथ

महेश दर्पण

यह सन् 1974 का वर्ष था। पहाड़ से मैं भी हिमांशु जोशीजी की तरह दिल्ली आया था। राजधानी आते ही, पहली डांट इस बात पर अपने मामाजी से पड़ी थी कि 'बस अड्डे से स्कूटर पर आने की क्या जरूरत थी भला। जितने पैसे अलमोड़ा से दिल्ली के लिए बस किराए के दिए, उतने ही तू स्कूटर वाले को सरोजनी नगर तक आने के दे आया।'

बड़े शहर आने का पहला सबक डांट से शुरू हुआ। ग्रेज्युएशन के साथ-साथ छोटी-मोटी नौकरी, ट्यूशन और फ्रीलांसिंग करने के अनुभव ने यह अहसास सहज ही करा दिया कि पहाड़ से आए संवेदनशील मन को कैसे-कैसे संकटों-समस्याओं से दो-चार होना पड़ता है। दिल्ली आकर हिमांशुजी को भी पर्वतीय परिवेश से एकदम अलग, सूखी दुनिया का समाना करना पड़ा।

अपनी फ्रीलांसिंग के दिनों में जब हिंदुस्तान टाइम्स बिल्डिंग जाना हुआ तभी हिमांशुजी से 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के कार्यालय में भेंट हुई। वहां उनके साथ संपादक बतौर काम कर रहे, अपनी बहन भारती जोशी के ममिया ससुर मनोहर श्याम जोशी से मेरा मिलना बाद में हुआ। पहले मिले बालस्वरूप राही, शुभा वर्मा, सुशील कालरा, रवींद्रजी और कलाकार सुकुमार चटर्जी। मिले सभी, किंतु जिस सहज आत्मीयता के घेरे में मैं हिमांशु जोशी के आया उसने मुझे उनके लिए एक संबोधन दे दिया- दादा। यह दाज्यू का शहरीकृत रूप था।

तो साहब, जब भी मेरा हिंदुस्तान टाइम्स बिल्डिंग में प्रवेश होता, मैं अपनी बहन रश्मि पंत, उनकी सखी मृणालिनी और डॉ. जगदीश चंद्रिकेश के अलावा जिस शख्स से मिलता कभी न भूलता, वह दादा यानी हिमांशु जोशी ही थे। उनसे मिलने का एक कारण यह भी था कि अलमोड़ा में रहते हुए भी मैं शैलेश मटियानी के साथ ही हिमांशु जोशी की कहानियां भी पढ़ चुका था। एक बड़ा आकर्षण का कारण यह था कि उनकी रचनाएं 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' ही नहीं, 'सारिका' सरीखी प्रमुख कला-पत्रिका में भी पढ़ने को मिल जाती थी। 'सारिका' के प्रति एक अबूझा आकर्षण मेरे मन में इसलिए भी बन गया था कि ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ने के दौरान ही मैंने अपनी एक कहानी सारिका-संपादक कथाकार कमलेश्वर को भेज दी। भेज देना इतनी बड़ी बात न थी, जितनी बड़ी बात यह हो गई जब कमलेश्वरजी ने कहानी स्वीकृत कर ली। अब आलम यह था कि मैं हर पखवाड़े 'सारिका' की खोज में लाल बाजार की उस दुकान पर जा पहुंचता जहां उसकी पांच प्रतियां आया

करती थीं। दुकानदार ने उसकी प्रति देने से तो इनकार कर दिया क्योंकि वह नियमित ग्राहकों को ही पत्रिका दिया करता था। हां, वहीं बैठकर पलट लेने की छूट जरूर उसने मुझे दे दी। मैं पत्रिका पलटता तो अनेक नामचीन कथाकारों की कहानियां उसमें नजर आतीं। इनमें अधिकांश नाम वे छोटे जो समांतर कथा आंदोलन से जुड़े। हिमांशु जोशी की कहानी भी 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के बाद मैंने 'सारिका' में ही पढ़ी।

एक दिन मैं 'कादंबिनी' के लगभग सामने की ओर पड़ने वाली लाइब्रेरी में बैठा कुछ पढ़ रहा था कि एक हाथ अपने कंधे पर महसूस हुआ। मुड़कर देखा, तो यह सहज मुस्कान बिखेरते भूरी आँखों वाले हिमांशु जोशी को 'चलो, तुम्हें जरा कैंटीन के दर्शन करा लाऊं।' कैंटीन जाने का मतलब था-चाय और समोसा। साथ में दादा कह बड़े भाई जैसी बातें। नसीहतें और सलाहें। जैसे वह मुझमें अपना अतीत देख रहे हों। चिंता सबसे बड़ी यह हो कि पहाड़ से आया एक युवक कहीं गलत राह पर न निकल जाए लेकिन उस रोज कैंटीन जाने का मतलब यह न था। चाय आती, इससे पहले ही हिमांशुजी पूछ रहे थे, 'तुमने कभी बताया नहीं कि कहानी भी लिखते हो! परसों तुम्हारी कहानी रमाकांतजी देकर गए। पढ़ ली है। लिखा करो, लगातार लिखो और खूब पढ़ो' यह वह दिन था कि हिमांशु जोशी की नजर में मुझे अपने लिए गहरा आत्मीय भाव नजर आने लगा। हिंदुस्तान टाइम्स बिल्डिंग में लंबे समय तक आते-जाते रहने पर पता चला कि कि वहां के लोगों ने उनकी प्रकृति के अनुरूप उन्हें एक नाम दिया हुआ है- तथागत।

सचमुच, शांत-स्थिर स्वस्थचित्त हिमांशु जोशी तथागत नाम के अनुरूप ही थे क्योंकि यह उनका बाह्य रूप था। भीतर से वह मानव-कल्याण के लिए चिंतित, असहायों के प्रति करुणा भरे और शोषकों-अत्याचारियों के प्रति विक्षोभ में डूबे रहते। प्रायः सफेद कपड़े पहनते। कुर्ता-पाजामा अधिक। कभी सफेद कुर्ता न पहनते तो सिल्क का क्रीम कलर का कुर्ता और सुनहरे फ्रेम का चश्मा उनकी छटा और आकर्षक बना देता। सर्दियों में जरूर गर्म शूट में नजर आते। उनकी बातें सोचने पर मजबूर करतीं। कुछ दिन नजर ही न आते। बाद में पता चलता कि मनोहरश्याम जोशी के कहने पर जनाब एक कमरे में बंद थे। शर्त ही यह थी कि पहले उपन्यास पूरा करो, फिर बाहर निकलो। इसी तरह की बंदिश हिमांशु जोशी पर कई बार लगाई गई। इसके परिणाम भी खूब बढ़िया रहे।

एक दिन ऐसे ही चाय-पानी के दौरान जब उनसे उपन्यास-लेखन की बात शुरू हुई तो मैंने पूछा- 'दादा, यह बताइए, आपने इतना पोएटिक नाम उपन्यास का कैसे दिया?'

'कौन-सा उपन्यास कह रहे हो तुम?'

'छाया मत छूना मन' मैंने कहा, 'यह तो गिरिजा कुमार माथुर की पंक्ति है...।'

'अरे ऽ ऽ अरे ऽ ऽ तुम 'तीसरा किनारा' की बात कर रहे हो। मैंने यही नाम दिया था उस उपन्यास को लेकिन 5 अगस्त, 1973 को 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में संपूर्ण प्रकाशित होने से पहले, उसके संपादन का काम हमारे सहकर्मी और गीतकार बालस्वरूप राही ने किया। उन्होंने ही इस उपन्यास का नाम बदलकर 'छाया मत छूना मन' कर दिया। यह शीर्षक बड़ा पसंद किया गया। साप्ताहिक में छपने के बाद, पुस्तक रूप में यह रचना पहली बार प्रकाशित सन् 1976 में हुई।'

इस बात की चर्चा जब मैंने हिमांशुजी के कुछ समकालीन रचनाकारों से की तब पता चला कि यह उपन्यास तो देश के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासों में एक रहा है। उन्हीं में से कुछ ने बताया

कि उन दिनों साप्ताहिक हिंदुस्तान का मूल्य 75 पैसे हुआ करता था किंतु इस उपन्यास के कारण हाकरों ने इसे चार रुपए के ब्लैक प्राइज पर बेच डाला। उपन्यास छपने के बाद ऐसा चर्चा में आया कि साप्ताहिक के कार्यालय में पत्रों का ढेर लग गया। यह वह समय था जब खूब पत्र-लेखन होता था। पाठक लेखकों के नाम पत्र लिखते, लेखक उनके जवाब देते।

ऐसे ही एक पत्र के बारे में हिमांशुजी ने बताया- 'एक पत्र तो इस उपन्यास के कथानायक का ही आ पहुंचा। इसमें उसने मुझसे यह शिकायत की थी कि उपन्यास की नायिका का चरित्र ठीक वैसा ही चित्रित क्यों नहीं किया गया जैसी वह थी!' इसके बाद हम लोग देर तक उपन्यास या कहानी के चरित्रों के अंकन को लेकर बतियाते रहे। हिमांशु दादा का कहना था कि कथा झूठ को सच की तरह कहने की विधा नहीं भी हो, तो यह स्वीकार तो करना ही होगा कि रचनाकार कभी चरित्र को हू-ब-हू उतार कर नहीं रख देता। उसमें शामिल होती हैं उसकी कल्पनाएं भी, दरअसल तो वे भी कहीं न कहीं यथार्थ के टुकड़ों को जोड़कर ही आकार ले पाती हैं।

यह तो उपन्यास का यथार्थ चित्रण ही था कि अनेक पाठकों ने तब ऐसे पत्र भी लिखे कि हो न हो, यह दास्तान तो उनकी जिंदगी की ही लगती है। पत्रों में अनेक पाठक भावुक होकर रोने लग रहे थे। ऐसे में यह कथा देवेन वसुधा की न रहकर एक वृहत्तर समाज की हो गई थी। जहां तक कथानायक के पत्र का उत्तर का, वह हिमांशुजी ने इस तरह से दिया था 'तुम ही बताओ देवेन, यदि मैं सत्य-सच लिख देता तो वह हर किसी को झूठ नहीं लगती-अवास्तविक!' हिमांशुजी का रचनाकार यह अच्छी तरह से जानता था कि सच को सच की तरह से लिख देना ही उसे विश्वसनीय बना देना नहीं होता। यथार्थ को महसूस कराने के लिए कला का योग आवश्यक है। आज के समय यह बात अविश्वसनीय लग सकती है, लेकिन उस समय 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में उपन्यास प्रकाशित ही इसलिए किए जाते थे कि एक बड़ा पाठक समुदाय आकर्षित हो। जब मुझे यह बताया गया कि 'छाया मत छूना मन' जैसे उपन्यास के प्रकाशन के कारण 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' की बिक्री दस से बीस प्रतिशत बढ़ गई थी, तब मैं भी हैरान रह गया था, लेकिन यह सच था और इसे हिमांशुजी ने नहीं बताया था। बताने वालों ने तो यह भी बताया था कि इसकी सफलता से प्रभावित होकर लेखक की तनख्वाह भी बढ़ा दी गई थी।

रोजमर्रा तो मिलना होता नहीं था क्योंकि मैं पढ़ भी रहा था और छोटे-मोटे काम की तलाश में भी रहता था। रमाकांतजी के साथ मोहन सिंह प्लेस जाने की आदत बन गई थी, जहां विष्णु प्रभाकर वाली टेबल पर हिमांशुजी भी बैठा करते थे। वह खामोश बैठे गंगा प्रसाद विमल, राजकुमार सैनी,आनंद प्रकाश, धर्मेंद्र गुप्त, महीप सिंह, विनय और रमाकांत की बातें सुनते रहते और बहुत मुश्किल से ही कभी कुछ कहते। कहते भी, तो कभी उत्तेजित न होते। जाते वक्त यह जरूर पूछ लेते- 'और कैसा चल रहा है?' उनके स्वर में यह अंतर्निहित सुनाई पड़ता कि कभी कोई परेशानी हो, तो बताना। एक दिन अपने पड़ोस के ओझाजी के यहां मुझे अनायास 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' की प्रति देखने को मिली। यह 4 जनवरी, 1976 का अंक था। इस पत्रिका के लिए यह एक विशेष अवसर था। रजत जयंती अंक जो था। इस अंक में हिमांशु जोशी का उपन्यास 'कगार की आग' प्रकाशित किया गया था। उपन्यास पढ़ा, तो मुझे बड़ा अच्छा लगा। यह उपन्यास अपनी कथा में यह संदेश पुरजोर आवाज

में देता लगा कि नारी का अबला बने रहना ही, उसके शोषण का जारी रहना है। हर इनसान को इतनी ताकत तो जुटानी होगी कि वह शोषण से खुद को बचा सके।

मैंने हिमांशुजी से प्रसन्नता व्यक्त करते हुए उपन्यास की प्रशंसा की तो कहने लगे, 'चलो बंगाली मार्किट चलते हैं।' हम लोग स्कूटर कर बंगाली मार्किट पहुंच गए। नाथू स्वीट्स में। रसमलाई के बाद चाय पी गई। अचानक उन्होंने जेब से एक पत्र निकाला और मेरी तरफ बढ़ा दिया- 'देखो, यह यशपालजी ने भेजा है।'

पत्र में लिखा था- 'पहाड़ी जीवन का बड़ा सशक्त चित्रण हुआ है इस उपन्यास में। इस पर्वतीय अंचल को मैंने कई बार निकट से देखा है। वे अतीत की स्मृतियां इसे पढ़कर साकार हो आईं। हमारे प्रायः सभी पर्वतीय क्षेत्रों का जन-जीवन इसी तरह का है- संघर्षमय।'

समाज द्वारा बहिष्कृत अभिशप्तों की इस गाथा ने जाने कितने पाठकों को प्रभावित किया। बाद में तो इस उपन्यास के जाने कितने संस्करण पुस्तक रूप में हुए और देशी व विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी। एक बार 'कगार की आग' का मंचन हुआ दिल्ली में, तो हिमांशुजी ने प्रेम से बुलवाया। वहां उपन्यास को नाट्यरूप में देखा तो तबीयत खुश हो गई। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का महत्व क्या है, कैसे प्रारंभ हो सकती है यह प्रक्रिया, इस दृष्टि से 'कगार की आग' एक बड़ी रचना है। यह आमजन से कमजोरी छोड़, निर्भीक बनने को कहती है। तभी वह शोषण और अन्याय से मुक्ति पा सकेगा।

बहरहाल, हिमांशुजी, यशपालजी का पत्र पाकर खुश थे और उनका साथ पाकर। एक दिन मैं एक छोटे प्रकाशक का पीर-बावर्ची-भिश्ती सब बन गया। मुझे कुछ पुस्तकों के लिए पांडुलिपियों की आवश्यकता थी। मैंने उनसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए उपन्यास 'तुम्हारे लिए' की अनुमति मांगी। उन्होंने एक बार प्रेम भरी नजर से मुझे देखा और फिर बताया कि वह तो पहले से प्रकाशनार्थ जा चुका है पर फिर वह काफी देर तक मुझे यह समझाते रह कि नए प्रकाशन को खड़ा करने के लिए क्या कुछ किया जाना चाहिए। वह बस यह चाहते थे कि मैं अपने पांवों पर ठीक से खड़ा होने लायक बन जाऊं।

हम लोगों ने कई शहरों की यात्राएं साथ-साथ कीं। एक बार कुमाऊं विश्वविद्यालय के निमंत्रण पर हम लोग अल्मोड़ा गए। वहां सेमिनार में भागीदारी से जो समय बचता, उसमें हम लोग अल्मोड़ा का बाजार घूमने निकल जाते। इस बाजार के साथ उनकी अनेक स्मृतियां जुड़ी थीं। मुझे खुद बरसों बाद उसमें घूमते हुए एक विचित्र किस्म का सम्मोहन हो रहा था। चलते-चलते हम लोग जोगा साह की पुरानी दुकान पर जा पहुंचे। उन्हें याद था कि दुकान दिखने में कितनी ही साधारण क्यों न हो, इसकी मिठाई बड़ी स्वादिष्ट होती है। हम लोगों ने वहां से मिठाई बंधवाते-बंधवाते दो-एक सिंगौड़ी भी खा ही लीं।

अभी हम स्वाद ले ही रहे थे कि एक विचित्र सा व्यक्ति दुकानदार से बोला, 'एक सिंगौड़ी दे दियौ हो!'दुकानदार ने उसकी ओर ध्यान न दिया तो वह फिर वही दुहराने लगा। दुकानदार ने उसे एक चॉकलेट का पीस थमा दिया। चॉकलेट का स्वाद लेता हुआ वह शख्स पैसे देने के नाम पर 'आफिरौल' कहकर चलता बना। पाठक सोच रहे होंगे, यह आफिरौल क्या बला हुई? इसका अर्थ है- अपने आप रहता है! यानी पैसे देना जरूरी जो क्या हुआ।

व्यक्ति चला गया, तब हिमांशुजी के साथ देर तक यही बात होती रही कि इस बाजार में बरसों से यह क्रम चलता आ रहा है कि एक न एक दिमाग हिला हुआ आदमी यहां घूमता हुआ जरूर मिलेगा। बाजार में घूमकर तो हम दो-एक घंटे बाद सेमिनार स्थल पर लौट आए, किंतु 'आफिरौल' जैसे एक मुहावरा ही बन गया। रात के समय एक सज्जन हमें मार्ग व्यय देने आए तो हँसते-हँसते हिमांशुजी उनसे बोले- 'आफिरौल'। यह आफिरौल कई दिन तक मजाक-मजाक में हमारे बीच चलता रहा। काफी दिनों बाद, जब उन्होंने 'शांतिदूत' में मेरी एक रचना प्रकाशित की तो एक दिन आई-आई सी में उसके अंक के साथ मुझे सौ रुपए का एक नया नोट भी दिया। यह उस रचना का पारिश्रमिक था। यह नोट भी उन्होंने यूं ही, जेब से निकालकर नहीं थमा दिया। बाकायदा, जेब में, पहले से एक लिफाफे के भीतर रखा हुआ नोट का वह। यह सलीका था उनका। जो करते, बड़े कायदे से करते। उन्हें आई-आई सी की मेंबरशिप इसलिए नहीं लेनी थी कि वह हिंदी के इलीट में शामिल हो जाएं। वह इसलिए वहां जाना चाहते थे कि यह स्थापित कर सकें कि जमीन से जुड़ा कोई आदमी भी उसी ठसक के साथ उस जगह प्रवेश कर सकता है जैसे अनेक 'स्वनामधन्य' समझे जाने वाले लोग। एक तरह वह उस घेरे को तोड़ना चाहते थे और वहां बैठकर भी 'अपने पहाड़' की बातें किया करते। जब कभी बहुत खुश होते, उन्हें आई-आई सी या बंगाली मार्किट का नाथू स्वीट्स याद आता। अकसर यह मौका तब भी सामने हो आता, जब हम लोग दूरदर्शन केंद्र, मंडी हाउस से रिकार्डिंग कर निकलते। उनकी जिद रहती कि 'पत्रिका' के प्रोड्यूसर अमरनाथ 'अमर' साथ चलें। अमरजी अपनी व्यस्तता के बावजूद हिमांशुजी को इनकार न कर पाते और हम लोग नाथू-पार्टी में चल देते। मुझे उनकी यह बात बड़ी अच्छी लगती कि वह अपने संघर्ष के दिनों को कभी न भूलते। जाने कितनी बार बातों-बातों में उन्होंने बाग कड़े खां में रहने के अपने प्रारंभिक दिनों को याद किया होगा। यह बताते हुए उनकी आँखें नम हो आती थीं कि यहां दरअसल, उनके एक रिश्तेदार का निवास था। वह किराए पर वहां रहते थे। हिमांशुजी को भी वह ठौर इसलिए रास आ गया था क्योंकि रिश्तेदार महोदय काम करते थे रात की पाली में। रात के समय हिमांशुजी को वहां इसलिए पढ़ने-लिखने का शांत माहौल मिल जाता था। एक दिन मकान मालिक नाराज हो गया। उसका कहना था कि रात भर बिजली जली रहती है। बिजली जली रहने की वजह से उसकी भैंसे आराम ही नहीं कर पातीं। आराम नहीं कर पातीं, तो सुबह दूध नहीं देतीं। उनका दूध कम होता जा रहा है।

इसके बाद कैसे ट्यूशन कर-कर के हिमांशु जोशी जीवन-यापन करते रहे, यह एक अलग ही दास्तान है। संघर्ष के ये दिन उनकी रचनाओं में अलग-अलग ढंग से आते रहे। जहां वह पहाड़ के लोगों की पहाड़-सी जिंदगी को यथार्थ उकेरते रहे, वहीं कस्बे, महानगर और विदेश तक के अनुभवों को अपनी रचनाओं में लाते रहे। जब कभी कोई किताब प्रकाशित होकर आती, वह मुझे भेंट अवश्य करते। इसकी शुरुआत उन्होंने श्रीकृष्णजी के पराग प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तकों से ही कर दी थी। बाद में किताबघर प्रकाशन, भारतीय ज्ञानपीठ सहित अनेक संस्थाओं से आई पुस्तकें तो उन्होंने दीं ही, नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग, साहित्य अकादेमी और अनेक विदेशी संस्थाओं से प्रकाशित पुस्तकें भी बराबर मुझे भेंट कीं। पहले भेंट कीं और फिर जब खुद के पास ही न बचीं और जरूरत पड़ गईं तो वापस भी मांग लीं।

हिमांशु जोशी उन रचनाकारों में एक रहे जिन्होंने रचना के दम पर पूरा विश्व घूमा। अनेक अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हुए। सम्मानित हुए तो अपने न बधाई दी। बधाई दी तो मिठाई हाजिर। 'अप्रवासी हिंदी कहानियां' का संपादन हिमांशु जोशी ने किया तो वह भी भेंट की। यह महत्वपूर्ण पुस्तक विदेश में रह रहे हिंदी रचनाकारों की कहानियों को एक साथ रखने की पहली कारगर कोशिश थी। इस पुस्तक पर साहित्य अकादेमी में जब चर्चा आयोजित की गई, तब भी हिमांशुजी ने मुझे विषय प्रवर्तन करते हुए एक लेख लिखने को कहा। इस गोष्ठी में कपिला वात्स्यायनजी और नामवर सिंहजी भी उपस्थित थे। याद रह गई बात यही हैं कि कपिलाजी ने इस बात की शाबासी मुझे दी थी कि 'प्रवासी भारतीय' शब्द का प्रयोग पहली बार बनारसीदास चतुर्वेदी जी ने किया, इसका उल्लेख मैंने अपने आलेख में किया था। दरअसल 'विशाल भारत' के अंकों में मैं चतुर्वेदीजी को पढ़ता रहा था।

बहरहाल, गोष्ठी संपन्न संपन्न हुई और हिमांशुजी ने कहा- 'यह लेख मुझे दे दो'। लेख गया तो फिर लौटा ही नहीं लेकिन अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित अवश्य हुआ। विदेश में बसे, नए से नए और पुराने से पुराने लेखकों के संपर्क में रहना उनका स्वभाव ही था। वह स्वयं तो कई यात्राएं कर दुनिया-जहान के अनुभव लेते ही थे, यह भी चाहते थे युवा लेखक देश के बाहर जाएं और नए अनुभव बटोरें। ऐसे ही एक बार उन्होंने श्रीराम सेंटर के बाहर मुझसे पूछा, 'क्या तुम चीन जाना चाहोगे?'

यह तब की बात है जब मैं नेपाल के अतिरिक्त कहीं देश से बाहर नहीं गया था। नई-नई शादी हो चुकी थी और मैं 'सूर्या' छोड़ 'सारिका' में आ चुका था। हिमांशुजी के प्रश्न के उत्तर में मैं कुछ देर खामोश रहा, तो कहने लगे, 'वैसे तो मौन स्वीकृति लक्ष्मणम् कहा गया है, लेकिन तुम सोच-विचार कर बताना। मैं तो चाहता हूं कि तुम बाहर निकलकर दुनिया देखो।'

'हिमांशुजी का प्रस्ताव यदि तुरंत मान लेता तो...' मैंने खुद से पूछा। जवाब मिला, 'यह साबित तो करो कि तुम सचमुच इस योग्य हो।' दूसरे दिन पत्नी को बताए बगैर मैंने हिमांशुजी से पूछा, 'क्या मैं इसके योग्य हूं? यदि आपको ऐसा लगता है कि मैं वहां जा सकता हूं, तो बताइए क्या करना होगा?' हिमांशुजी ने एक छोटा-सा पत्र भेजने को कहा। पत्र भेजा, तो जवाब में चीनी दूतावास से मिले पत्र में कहा गया कि मैं अपने प्रमाण पत्रों व प्रकाशित साहित्य के साथ दूतावास पहुंचूं। जिस चीनी महिला ने वहां मुझसे संक्षिप्त सवाल-जवाब किए, वह बता रही थी कि चीन जाकर मुझे क्या-कुछ करना होगा! यह भाषा विशेषज्ञ का काम था। मैं खुशी-खुशी घर लौटा। पत्नी को बताया कि संभवतः अब चीन जाना होगा। सुनते ही वह उखड़ गई। उसका चीन जाने का कतई मन नहीं था। मैंने चीनी दूतावास को पत्र लिखकर माफी मांग ली। माफी तो मांग ली, किंतु हिमांशुजी को खबर हुई तो वह नाराज हो गए। उनकी नाराजगी वाजिब थी पर वह भी अधिक दिन तक न रही। फिर वही सहज अंदाज। जैसे कुछ हुआ ही न हो।

दिल्ली आकर रहने का ठौर खोजने वाले अनेक युवाओं की हिमांशुजी में वैसे ही मदद की, जैसे स्वयं उनकी मदद लोगों ने की थी। पर वह इस संरक्षण भाव को हमेशा अहसान की तरह याद नहीं रखते थे। याद एक बार हम लोग नैनीताल से एक साथ लौट रहे थे। साथ मे हिमांशुजी के प्रिय देवेंद्र उपाध्याय भी थे। कार से सफर चल रहा था कि अचानक हिमांशुजी को हलद्वानी निवासी किसी

आत्मीय की याद हो आई। बस, फिर क्या था, कार मोड़ दी गई। तीन-चार घंटे हमने हलद्वानी की हवा खाई। मेहमान-नवाजी तो होनी ही थी। इस बीच हिमांशुजी को सबसे ज्यादा फिक्र थी तो यही कि ड्राइवर ने खाना खाया या नहीं, चाय उसे मिली या नहीं! यह स्वभाव उनका ही नहीं, उनके समूचे परिवार का है। हिंदुस्तान टाइम्स अर्पाटमेंट स्थित उनके घर कभी जाना हो, तो मजाल है कि बगैर भोजन किए लौटना संभव हो। आने वाला करता रहे इनकार, मेज पर थाली लगाकर रख दी जाएगी। थाली तो थाली, श्रीमती जोशी की आत्मीय सादगी ऐसा रंग भरती कि खाने वाला अपने घर की तरह भोजन कर स्वाद लेता। कई बार ऐसा भी संयोग बना कि हम लोगों की रिकार्डिंग रेडियो पर एक साथ हुई। आकाशवाणी से बाहर निकलते तो पूछते, 'तुम्हें कहां छोड़ दूं?'

'मैं बस लेकर निकल जाऊंगा।' मैं कहता।

'तुम्हें जहां से सहूलियत रहे। वहां तक तो छोड़ ही देता हूं।' कहते हुए वह कार में बिठा लेते। कभी आईएसबीटी तो कभी आईटीओ या मंडी हाउस छोड़ देते पर पहले, कहीं न कहीं चाय-पान। दादा की कहानियों का तीन खंड़ों में संपादन तो मैंने बहुत बाद में किया, पहले उन्हें पढ़ा, समझा और जाना। जिन दिनों ये कहानियां एकत्र की जा रही थीं, इनके पुस्तक रूप के लिए दो नाम हम लोगों के जेहन में दौड़ रहे थे- हिमांशु जोशी की समग्र कहानियां और हिमांशु जोशी की संपूर्ण कहानियां समग्र के मुकाबले हिमांशुजी को 'संपूर्ण' शब्द पसंद आया। अंततः नाम दिया गया- 'संपूर्ण कहानियां : हिमांशु जोशी'। इसकी भूमिका लिखते वक्त मुझे उनसे हुई अनेक मुलाकातें याद आ रही थीं। इस दौरान हम लोग अकसर उनकी रचना-यात्रा और रचनाओं पर भी बात करते रहते थे। ऐसे ही एक बार उन्होंने मुझे बताया था कि कैसे जैनेंद्र कुमार जैसे वरिष्ठ लेखक ने उनकी कहानी 'दीप' ही बुझ गया' पढ़कर कहा था- 'इसे नवभारत टाइम्स में दे आओ।'

बड़े स्तर पर प्रकाशित होने वाली उनकी यह पहली रचना 17 जून, 1956 को प्रकाशित हुई थी। इस वर्ष से सन् 2009 तक की उनकी कथा-यात्रा पर जब सोचना शुरू किया तो सबसे रोचक तथ्य यह सामने आया कि खुद हिमांशुजी को यह नहीं मालूम था कि वह कितनी कहानियां लिख चुके हैं! खोज-बीन शुरू की गई और बिखरी हुई कहानियां खोजी जानी शुरू हुईं, तो पता चला कि वह कुल 167 कहानियां लिख चुके थे। कहना जरूरी है कि उनके सुपुत्र असित ने इस काम में मेरी बड़ी मदद की। जब कभी कोई नई कहानी मिलती, पिता-पुत्र के चेहरे खुशी से खिल उठते। पुस्तक छपने से पूर्व हिमांशुजी ने भूमिका पढ़ी तो हैरानी से बोले 'इतनी कहानियां कब लिखी होंगी मैंने।'

उनका यह भोलापन ही उनका मूल स्वभाव था। आलम यह था कि किसी जरूरी काम के लिए उनकी कोई पुस्तक चाहिए होती, तो वह उनके घर पर कभी न मिलती। आगंतुक उनकी किताबें शेल्फ से लेकर चलते बनते। हालत बाद में यह हो गई कि उनके बेटे को घर पर ही पुस्तकों की एक-एक प्रति छिपाकर रखनी पड़ी। अकसर शोधार्थी और विदेश से आए हिंदी विद्वान उनकी रचनाओं की खोज में घर तक आ पहुंचते।

पिछले कुछ वर्षों से वह कमजोर नजर आने लगे थे, किंतु आवाजाही जारी रही। अकसर वह पास ही रहने वाली कथाकार चित्रा मुद्गल के साथ सार्वजनिक समारोहों में जाते। वह भी उन्हें दादा कहती थीं। मुझे याद है, जब वह अस्वस्थ्य हो चले और प्रायः घर पर ही रहने लगे, तब एक दिन

मैंने चित्राजी को बताया कि उनके पैरों में सूजन नजर आ रही है। वह तुरंत मेरे साथ उनके घर चलने को उठ खड़ी हुई जैसे बैठे हुए बातें कर रही थीं, वैसे ही। अचानक हिमांशुजी के घर पहुंचे, तो वह चमकीली नजर से खुशी जाहिर करते रहे। तब तक संवाद की स्थिति कायम थी। असित, हिमांशुजी, उनकी पत्नी व चित्राजी की, सोफे पर बिठाकर एक तस्वीर मैंने खींची थी।

जोशीजी के पांव हमेशा कहीं न कहीं चल पड़ने को आतुर रहते थे लेकिन जब अस्वस्थता के चलते वह मजबूर हो गए तब घर उनकी सीमा बन गया। ऐसे में उनके मित्र, प्रेमी, शोधार्थी, पत्रकार, इंटरव्यू लेने वाले लोग मिलने जाते, तो उन्हें बड़ा अच्छा लगता। बहुत तेज तो वह पहले भी नहीं बोलते थे, किंतु धीरे-धीरे उनका स्वर और मद्धम पड़ता जा रहा था। लगता कि वह कुछ कहना चाहते हैं, किंतु कह नहीं पा रहे। शब्द उनके मुंह में ही रह जा रहे हों।

एक दिन ऐसे में ही जब मैं उन्हें 'संपूर्ण उपन्यास : हिमांशु जोशी' की भूमिका सुनाने गया, तो असित ने उन्हें पास बिठाकर धीरे-धीरे कई टुकड़ों में वह उन्हें सुनाई। लगा, जैसे वह अपनी रचना-यात्रा के अतीत में लौट रहे हों। एक आश्वस्त करती नजर से उन्होंने मुझे देखा, पूछा', यह किताब कब तक छपकर आ जाएगी?'

उनकी उत्सुकता देखते बनती थी। लेकिन शरीर ढल रहा था। वह हर भेंट में अमित (अपने पुत्र) की चर्चा अवश्य करते। उन्हें खुशी थी कि नॉर्वे जाकर उसने अपनी एक नई दुनिया खड़ी कर ली। बेटों की उपलब्धि पर बड़े खुश होते, किंतु उसकी चर्चा विस्तार से न करते। पत्नी और भारत में रह रहे उनके बेटे ने उनकी पर्याप्त सेवा की।

अंतिम बार जब मैं उन्हें देखने गया, यह दीवाली के कुछ दिन बाद की बात है। पलंग पर लेटा शरीर हिमांशु जोशी का ही है, यह मान लेने में मुझे बहुत देर लगी। वह सिकुड़ से गए थे। बेटे ने बताया 'उस कमरे में कुर्सी पकड़ने के चक्कर में गिर पड़े थे। उसके बाद लगातार शिथिल होते चले गए।'

उस वक्त सो रहे थे। एक करवट लिया शरीर। न पहचानने योग्य। क्या ऐसे ही धीरे-धीरे मौत करीब आती है। मैं अपने आपसे पूछ रहा था।

उस रोज में बुझे मन से घर लौटा। मुझे याद आ रहे थे वे दिन जब मैं किताबघर के लिए 'हिमांशु जोशी संचयन' तैयार कर रहा था। मैंने चाहा कि उनसे कुछ परामर्श इस काम के लिए ले लूं। कहने लगे- 'तुम संपादन कर रहे हो, जो करना हो करो।' इसके बाद तो फिर उन्होंने वह छपी किताब ही देखी। ठीक ऐसे ही, नेशनल बुक ट्रस्ट से जब संकलित कहानियां सीरीज में उनकी पुस्तक छपने को थी, वह मुझे एक समारोह में हिंदी भवन में मिले। लौटते वक्त हम लोग बंगाली मार्किट की तरफ निकल गए। वहीं चाय पीते वक्त उन्होंने कहा, 'तुम्हें मेरी कुछ कहानियों का चयन 'संकलित कहानियां' के लिए करना है। कुछ ही दिनों में मैंने कुछ कहानियां उन्हें चुनकर दे दीं। बात आई- गई हो गई। दो-एक महीने बाद नेशनल बुक ट्रस्ट से फोन पर संदेश मिला कि उक्त संकलन की भूमिका भी मुझे लिखनी है। मैंने वहां संपादन विभाग में कार्यरत लालित्य ललित से पूछा कि क्या हिमांशुजी से इस पर सलाह ले ली गई है? उत्तर मिला-आपका नाम उन्होंने ही सुझाया है। सन् 2008 में इसका पहला संस्करण प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में मैंने उनकी 23 कहानियां चुनी थी। सबसे रोचक पहलू यह रहा कि जब भूमिका लिखने के बाद मैंने जोशीजी से एक बार

उसे पढ़ लेने को कहा, तो धीमे से बोले, 'मैं तभी पढूंगा जब किताब आ जाएगी। क्या पता तुमने कहीं आलोचना कर दी हो और मैं अभी से दुखी हो जाऊं...।'

खैर, यह उनका परिहास करने का अपना तरीका था किंतु सच बात यह है कि अंतिम बार मिलने के बाद मैं डरने लगा कि जाने कब क्या, हो जाए! वही हुआ, उस रोज मै विष्णुचंद्र शर्माजी के यहां से सुबह के वक्त लौटकर कमर सीधी करने के लिए लेटा ही था कि अमितजी का कॉल सा आ गया- 'भाई साहब, बाबूजी नहीं रहे...'

वही हुआ जिसका डर था। दो खंडों में उनके संपूर्ण उपन्यास प्रकाशित होने ही वाले थे। अवधजी पूरी रफ्तार से प्रूफ ओ.के. कर रहे थे। कई-कई बार कवर बनकर फाइनल हुआ था और अंततः निर्दोष त्यागी का बनाया कवर फाइनल हुआ था जिस पर हिमांशुजी की नॉर्वे में सिद्धार्थ द्वारा खींची गई वह फोटो भी थी जिसमें हिमांशुजी टाई बांधे बैठे हैं और पार्श्व में हैं किताबों का शेल्फ। हिमांशुजी सहित हम सब का मन यही था कि जल्द से जल्द किताब छपकर आ जाए। कैसे भी, बस एक बार हिमांशुजी उसे देख लें लेकिन शायद नियति को यह मंजूर न था।

अब सोचता हूं, जब वे नहीं हैं, उनकी रचनाएं ही तो उन्हें हमारे बीच बनाए रखेंगी! हां, नहीं होगा तो वह हाथ, जो हरदम पीठ पर महसूस होता था। ●

अर्चना वर्मा यानी विचारों और बहसों का अनंत

प्रियदर्शन

अर्चना वर्मा से मेरे परिचय के कई स्तर रहे हैं। पहला परिचय लेखक और पाठक जैसा है जिसकी शुरुआत तब हुई थी जब मैंने उनके कविता संग्रह 'लौटा है विजेता' पर एक टिप्पणी लिखी थी। उन युवा दिनों म. उस संग्रह ने मुझे काफी प्रभावित किया था। कविताएं मैं पहले भी पढ़ता रहा था लेकिन सचेत ढंग से पहली बार यह देख पा रहा था कि वह नया स्त्री अनुभव क्या है जिसकी इन दिनों साहित्य म. खूब चर्चा होती रही है। इन कविताओं म. यातना थी, लेकिन उससे ज्यादा उसके पार चले जाने का अभिमान था। एक कविता की कुछ पंक्तियां कुछ इस तरह थीं- 'आज उसने फिर/ तुम्हारे गलत को/ गलत नहीं कहा/ बच्चे को बेबात/ पड़ा थप्पड़,/ अपने गाल पर सहा/ औरतों की बेअकली पर/ तुम्हारा लतीफा सुना/ और न सुनने का बहाना किया/ बल्कि खुद ही/ जुटा दिए अपनी बेवकूफी के सबूत/ और तुम्हारे दंभ को सहलाया/ आज उसने फिर/ तुम्हारे बेबस बड़प्पन पर तरस खाया।' इसी तरह एक कविता है, 'सबूत'- 'क्या है/ इस औरत म./ तुम मुस्कुराकर पूछते हो/ 24 घंटों को निचोड़कर/48 म. बदलती भी/ क्यों निचुड़ती नहीं पूरी तरह/ थोड़ी सी बाकी रह जाती है/किसके लिए बचाती है/ एक सांस।'

कहने की जरूरत नहीं कि स्त्रीवाद अर्चनाजी के लेखन और चिंतन का बीज शब्द रहा है। बाद के वर्षों म. 'हंस' और 'कथादेश' के पन्नों पर उनको बार-बार पढ़ते हुए लेकिन यह बात भी समझ म. आई कि यह स्त्रीवाद उनके यहां कोई सपाट मुहावरा नहीं है, कुछ किताबों से अर्जित ज्ञान भर नहीं है, नए जमाने का फैशन भर नहीं है, उनके भीतर की वह बुनावट है जिसम. वे अपने अनुभव के आलोक म. इस अवधारणा को उलट-पुलट कर देखती हैं और कई बार अपर्याप्त पाती हैं। खास कर किसी भी साल के मार्च महीने का 'कथादेश' उठा लीजिए, आपको अर्चनाजी इस सवाल पर विचार करती मिल जाएंगी। 2016 म. उन्होंने लिखा था, 'स्त्री-विमर्श अभी भी हमारे समाज के लिए आत्म-परीक्षण और आत्मालोचन को उकसाने का समुचित कारण नहीं बन सका है लेकिन हिंदी का स्त्री-विमर्श चाहे कितना भी विकलांग, अधूरा, एकतरफा, और अपर्याप्त क्यों न कहा जाता हो, इतनी चेतना तो उसने जगाई ही है कि इस पुरुषवादी मानसिकता की अभिव्यक्ति के विरुद्ध ऐसा न्यायाधिकार-परायण एकजुट आवेश और प्रतिरोध, एकमत आक्रोश और अभियान संभव हुआ है। निश्चय ही यह स्त्री-विमर्श के लिए महोत्सव का एक कारण है।' मेरा जैसे-जैसे उनसे और उनके लेखन से परिचय बढ़ता गया, मैंने पाया कि वे बहुत सूक्ष्म ढंग से विचार करने वाली लेखिका हैं और

अमूमन वे इस बात की परवाह नहीं करतीं कि इस प्रक्रिया म. उनका लेखन दुरूह हुआ जा रहा है। मेरी तरह के पत्रकार-लेखक को, जो बहुत सपाट किस्म की अभिव्यक्ति म. यकीन रखता है और बहुधा इस कोशिश म. रहता है कि जटिल से जटिल अनुभव को रचने-रखने का भी कोई सरलतम तरीका हो, अर्चना जी कुछ उलझा देती थीं। मैं पाता था कि उनका लेख कभी खत्म होता ही नहीं, उनकी बात. कभी पूरी होती ही नहीं। धीरे-धीरे मेरी समझ म. आया कि अनुभव और अभिव्यक्ति के जिस खेल को मैं अंततः किसी नतीजे तक लाना और दूसरों तक पहुंचाना चाहता था, वह किसी संपूर्णता म., किसी वांछित सरलता म. बंधता या समाता ही नहीं है। जैसे हम उसे बांधते हैं, वह विचार कुछ मुर्दा, कुछ निष्प्राण हो जाता है। विचार एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया का नाम है और अर्चना वर्मा जैसे इस विचार के कोई सूत्र या सिरे कभी छोड़ने को तैयार नहीं होती थीं। वे बिलकुल अथक ढंग से इस प्रक्रिया म. लगी रहती थीं, उनके लेख भी इसी प्रक्रिया से निकलते थे और हमेशा उसमें 'शेष अगले अंक म.' की गुंजाइश बनी रहती थी।

यह सूक्ष्मता उनकी कहानियों म. भी मिलती है। उनकी एक बहुत छोटी सी कहानी है, 'अगुआ'। नेतत्वकर्ता यह देख रहा है कि जहां तक वह पहुंच गया है, उसके आगे कोई रास्ता नहीं है। आगे जाने का मतलब जूझना और गिर जाना है। वह पीछे हटना चाहता है, लेकिन पीछे जो भीड़ है वह उसे वापस लौटने नहीं दे सकती। उसे शायद मारा जाना है, इसके बाद भीड़ समझ जाएगी कि वापसी ही रास्ता है। कहानी के अंत म. उनका नायक कहता है, 'पता नहीं, उनके आगे-आगे मैं उनको अपने इशारों पर चलाता हुआ यहां तक लाया था या वही मेरे पीछे-पीछे मुझको खदेड़ते हुए यहां तक ले आए।' तो स्थितियों और विचारों का एक द्वंद्व लगातार उनके यहां है। इस द्वंद्व म. निरा तर्कवाद उनकी ताकत नहीं है, वे उससे आगे जाकर कहीं लक्ष्य को भी देखती हैं। उनकी एक छोटी सी कहानी है- 'निःशंक'। अम्मा सारे विधि-विधान नियम आचार याद रखती थीं। कब क्या करना है, यह हमेशा उनकी जुबान पर रहता था। इसके पीछे तर्क नहीं, बस संस्कार था जिसका विरोध उनकी बेटी किया करती है। बहुएं भी धीरे-धीरे बदल जाती हैं। कहानी कुछ इस तरह खत्म होती है- बहुओं के निजाम म. कोई चीज बस इसलिए नहीं है कि वो बस है। हर चीज किसी मतलब से है और बिना मतलब कोई नहीं कि होना जरूरी हो। व्रत उपवास और दुनिया भर के विधि-विधान का ढोंग वे नहीं करतीं। वे केले पीपल नीम को जल नहीं चढ़ातीं। नमक गिराने से नहीं डरतीं। बुजुर्गों को बेहिचक बेइज्जत कर लेती हैं। रसोई म. चौका नहीं लगता। न घर-आंगन दालान लिपा-पुता दमकता है। वे ताश खेलती हैं, टीवी देखती हैं, बाकी सब पड़ा भिनकता रहता है।'

अचानक हम पाते हैं कि अर्चनाजी के यहां परंपरा के पक्ष म. भी नहीं हैं और छिछली आधुनिकता के साथ भी नहीं है। यह छिछलापन उन्ह. मंज़ूर नहीं था। उनकी विचार प्रक्रिया म. बारीकियां और ब्योरों की पड़ताल जैसे कभी खत्म नहीं होती थी-उनका पूरा चिंतन बहुत संयम, सब्र और संतुलित तर्क तक पहुंचने की कोशिश के बीच विकसित होता था। हैरानी की बात यह है कि यह काम वे ऐसे समय म. कर रही थीं जो सोशल मीडिया के बिलकुल दैनिक, बल्कि प्रतिक्षण पड़ने वाले दबाव से आक्रांत है और वहां विषय, मुद्दे, विचार बदलने म. घड़ी भर का समय भी नहीं लगता। बेशक, वे इस सोशल मीडियां की पीढ़ी की नहीं थीं, कम से कम पांच दशकों के लेखन-पठन-पाठन और अध्यापन का जो अभ्यास उन्होंने अर्जित किया था, उसे वे कैसे छोड़ सकती थीं लेकिन खूबसूरती

यह थी कि बहुत सारे लेखकों और विद्वानों की तरह वे उससे बंधी भी नहीं रही थीं। बिलकुल युवा उत्साह के साथ वे सोशल मीडिया पर सक्रिय थीं और पिछले कई वर्षों से लगभग हर किसी से संवादरत भी। वे खूब लिखतीं, दूसरों के लिखे हुए पर प्रतिक्रिया देतीं और बहुत बेमुरव्वत होकर, दूसरों से बहुत बेपरवाह होकर अपनी बात कहतीं। हाल के दिनों म. हम बहुत सारे साथियों के भीतर यह शिकायत थी कि वे लगातार दक्षिणपंथी हुई जा रही हैं। इन दिनों वे रफाल सौदे को लेकर चल रही बहसों म. शामिल थीं और अपनी पूरी बौद्धिक क्षमता से उन लोगों को प्रत्युत्तर दे रही थीं जो इस पर सवाल खड़े कर रहे थे।

यह सच है कि अर्चनाजी को हमम. से बहुत सारे लोगों ने उनके उत्तरार्ध म. देखा। वे बताती थीं कि वे बीस साल म. मिरांडा हाउस जैसे कॉलेज म. पढ़ाने लगी थीं। मुझे यह नहीं मालूम कि वे अपने शुरुआती दिनों म. कैसी रही होंगी- संकोची, मितभाषी जैसी अमूमन हमारे यहां लड़कियां अपनी कंडीशनिंग, अपने अनुकूलन की वजह से बना दी जाती हैं- या फिर बेहद मुखर और जुझारू जो बहुत सारी लड़कियां अपने चारों ओर घिरी परिधि को लांघकर हो जाती हैं। मुझे कई बार लगता है कि वे इन दोनों के बीच की कुछ रही होंगी। आत्मविश्वास से पूरी तरह युक्त, लेकिन गैरजरूरी मुखरता या वाचालता से भी पूरी तरह मुक्त। शायद एक मृदुता उनके स्वभाव म. थी लेकिन जो व्यक्तित्व उन्होंने अर्जित किया था, वह ठोस वैचारिक तंतुओं से बना हुआ एक विचारशील और स्वतंत्रचेत्ता व्यक्तित्व था जो लगातार चिंतन-मनन म. रहता था। वे हिंदी की उस संस्कृति का हिस्सा थीं जिसम. वाद-विवाद संवाद की अहम भूमिका होती है। वे 'हंस' या 'कथादेश' के पृष्ठों पर लगातार यह संवाद बनाए रखतीं- कई बार खुद भी उसके निशाने पर आतीं, मगर उससे बेपरवाह और लगभग निस्पृह रहतीं। उनके व्यक्तित्व के इस पहलू को मैंने कुछ और करीब से तब समझा जब वे रहने के लिए गाजियाबाद आ गई थीं। यहां एक और संयोग घटा जिसने हमारे बीच एक पारिवारिक सा तार भी बना दिया। स्मिता- यानी मेरी पत्नी ने- जो कभी-कभार मूड म. होने पर कुछ लिख भी दिया करती है, अचानक ऐसे ही किसी मूड म. अपनी एक कहानी उन्ह. भेज दी। इस कहानी म. मगही शब्दों का बहुत इस्तेमाल था। अर्चनाजी ने कहानी पढ़ी, शायद उन्ह. अच्छी लगी और उन्होंने इस अनजान लेखिका को फोन किया। बातों के सिलसिले म. उन्ह. समझ म. आया कि यह तो जनसत्ता सोसाइटी म. रहती है और संभवतः किसी परिचित परिवार की हो।

इसके बाद स्मिता ने मेरा परिचय दिया तो वे हैरान हुईं। इसके बाद हमारे मिलने-जुलने की शुरुआत हुई। फिर तो शायद ही कोई महीना हो, जब हम उनके यहां या वो हमारे यहां नहीं हुआ करती थीं। इन घरेलू मुलाकातों म. एक स्तर पर वे हमारी अभिभावक सी बनी रहतीं और दूसरे स्तर पर हमसे बहस करती रहतीं। यहां प्रभाजी यानी प्रभा दीक्षित का जिक्र जरूरी है जो इन तमाम वर्षों म. उनकी दोस्त, संगिनी, राजदार सब रहीं। वे भी उद्भट विद्वान हैं और मुझे हमेशा शक होता था कि अर्चनाजी के जिन वैचारिक बदलावों पर हम उदास हुआ करते हैं, वे प्रभाजी के साथ उनकी संगत का बाइ प्रोडक्ट हैं। अक्सर हमारी मुलाकातों म. हमारी बहस. बहुत तीखी हो जाया करती थीं। आवाज ऊंची होने लगती, माहौल गरम होने लगता। फिर अचानक हम शांत पड़ जाते। इस समूची बहस के दौरान अर्चना जी अमूमन शांत रहतीं। वे ओजोन परत की तरह थीं- सारा तापमान सोख लेती

थीं। यह भी जोड़ दूं कि प्रभाजी से सारी बहस के बावजूद हम पर उनका भी स्नेह बराबर बना रहा। वे बहुत जतन से हमारे लिए कुछ न कुछ पकाया करतीं और बहुत आग्रह से खिलातीं।

गाजियाबाद म. मिलने-जुलने का एक और सिलसिला 'ककहरा' नाम की एक अनौपचारिक बैठक के साथ शुरू हुआ। इस सिलसिले को समझने के लिए अर्चनाजी से पहले अशोक गुप्ता को याद करना होगा जो हाल ही म. दिवंगत हुए हैं। अशोकजी म. मित्र बनाने की अपार क्षमता थी। वे एक स्तर पर खूब जजबाती थे और निस्संकोच किसी से मिल लिया करते थे। उन्होंने यहां कुछ लोगों को जोड़ा और एक मासिक बैठक शुरू की। इन बैठकों का स्टार अट्रैक्शन कम से कम मेरे लिए अर्चनाजी हुआ करती थीं। सच तो यह है कि ककहरा की बैठकों म. अशोकजी और राजकमल के अलावा अर्चनाजी ही तीसरी सबसे नियमित सदस्य थीं। यहां हम रचनाओं पर बात करते और अर्चनाजी को उनकी गिरह. खोलते देखते।

अर्चनाजी के देहावसान ने मुझे उदास किया, लेकिन शायद मैं बहुत भावुक नहीं हो पाया। इसलिए कि मुझे बार-बार खयाल आता रहा कि अर्चनाजी ऐसी भावुकता को सख्त नापसंद करती थीं। वे बहुत निस्पृह लगभग निष्ठुर प्रतीत होने वाला जीवन जीने की आदी थीं। अकसर मांएं अपने बेटों का जिक्र बड़े उत्साह से करती हैं लेकिन अर्चनाजी कभी अपने दो समर्थ और सफल बेटों का बखान करती नहीं देखी गईं। उनकी श्रद्धांजलि सभा म. जब ये बेटे आए और बोले तब समझ म. आया कि अम्मा और बेटों के बीच कैसा अन्यतम रिश्ता है।

अर्चना वर्मा ने शायद कई तरह के हादसे झेले। आग म. भी झुलसीं लेकिन अपनी मृदुता के साथ बनी रहीं। वो युवाओं के प्रति बहुत सदय थीं- एक बार लिखा था कि वो उनके सौ खून माफ कर सकती हैं। उन्ह. कोई दयनीय, घिसटती हुई मृत्यु मंजूर नहीं थी। उनको यही चाहिए था- किसी दोस्त के यहां जाएं और चल द.। सब हैरान रह जाएं- किसी अधूरे छूटे विचार की तरह उनको याद करते रह.। ●

संस्मरण

मटियानी-स्मृति

दामोदर दत्त दीक्षित

सन् 1975 के दिसंबर महीने की कोई तारीख। ट्रेन लगभग चार बजे सुबह देवरिया पहुंचती थी। उसका कहना था कि वह रेलवे स्टेशन से खुद मेरे घर आ जाएंगे, मेरे आने की कतई जरूरत नहीं है। भगवान बुद्ध की पावन धरती पर 'मध्यममार्ग' का अनुसरण करते हुए मैंने लिखा कि मैं नहीं सही, मेरा चपरासी मुन्ना टिकट-चेकर वाले गेट पर 'हारा हुआ' पुस्तक हाथ में लिए मिल जाएगा, आप उसके साथ आ जाइएगा। 'हारा हुआ' हाथ में लिए मुन्ना! पर वह हारा हुआ था नहीं। मैंने जितने चपरासी देखे हैं, उनमें शायद सबसे ज्यादा होशियार। हाथ में पहचान-चिह्न के रूप में पुस्तक न होती, तो भी वह बताई गई कद-काठी के बल पर और हाव-भाव पढ़कर आगंतुक को पहचान लेता। ऐसे व्यक्ति के हाथ में 'हारा हुआ' पुस्तक? तौबा! फिर भी अतिरिक्त सावधानी के चलते हाथ में पुस्तक थमाने का निर्णय लिया था। उधर जो व्यक्ति आ रहा था, उसने 'हारा हुआ' लिखी जरूर थी, पर हारा हुआ था नहीं। जुझारू और जीवट का आदमी था-साहस, संघर्षशील और दृढ़ता की प्रतिमूर्ति।

मटियानीजी से पहली मुलाकात ब्रह्म मुहूर्त में! नित्कर्म के बाद नाश्ते पर ही शुरू हो गई थी दुनिया -जहान की बातें। अनौपचारिकता ऐसी जैसे बरसों पुराने मित्रों का पिछली रात छूटा वार्ता-सूत्र सुबह फिर हाथ लग गया हो। वार्ता का मुख्य विषय साहित्य तो था ही, 25 जून, 1975 को देश में लगा-आपातकाल और सेंसरशिप भी थी! आपातकाल के उस दौरान में लगता था कि मटियानीजी आज धरे गए, कल धरे गए। कुछ लेखक इस दिशा में प्रयासरत भी थे, पर वह संयोगवश बच गए थे। मुझे याद है कि उस यात्रा में हम लोग भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण स्थल कुशीनगर भी देखने गए थे, जो देवरिया से 36 कि.मी. दूर है।

उसके बाद जहाँ-जहाँ मेरा स्थानांतरण हुआ, मटियानीजी आते रहे। शामली (मुजफ्फरनगर) के उस विचित्र-दिलचस्प फ्लैट में भी, जिसमें मेरी रसोई पहली मंजिल पर, ड्राइंग-रूम दुमंजिले पर और बेडरूम तिमंजिले पर था। शामली और दिल्ली का निन्नानबे का चक्कर है यानी दोनों का फासला 99 कि.मी. है। वह दिल्ली आते, तो कभी-कभी शामली आ जाते। मेरे शामली कार्यकाल में आपात्काल समाप्त हुआ था और उसी के साथ सेंसरशिप भी। भारतीय लोकतंत्र की विजय पर वह फूले नहीं समाए थे, उत्साह देखते बनता था। चेहरे पर हल्का थी-'कहता न था! तानाशाही ज्यादा दिन चल नहीं सकती।'

लखनऊ में भी वह आते रहे थे और बाराबंकी में भी जब मैं चीनी मिल में प्रतिनियुक्ति पर था। बाराबंकी में उन्होंने मेरे साथ प्रसिद्ध सूफी संत वारस शाह की मजार-जो देवा शरीफ के नाम से जानी जाती है- और दुनिया के इकलौती पारिजात वृक्ष के दर्शन किए थे। मुंडेरवा (बस्ती) में वह सपरिवार आए थे और गोरखपुर में गोरखनाथ मंदिर, मगहर में कबीर के मंदिर-मजार और अयोध्या में जन्मभूमि मंदिर-बाबरी मस्जिद, कनक भवन, हनुमानगढ़ी और जैन मंदिरों के दर्शन किए थे और फैजाबाद में गुलाबवाड़ी देखी थी। फैजाबाद में उन्हें इलाहाबाद की बस में बैठा दिया था। बाद में पता चला कि जब वह इलाहाबाद में उतरे थे जो रिक्शे के पैसे मुश्किल से जुट पाए थे।

मटियानीजी का 'बेनेट कोलमैन एंड कंपनी' जैसे सर्वसमर्थ प्रकाशन-समूह से लंबा विवाद छिड़ा। हुआ यह कि 'धर्मयुग' के 5 जनवरी, 1980 के चुनाव-विशेषांक में बिहारीलाल के नाम से 'अमेठी के दिन बहुरे' नामक पुस्तिका पर समीक्षानुमा लेख छपा जिसके साथ एक छायाचित्र भी था जिसमें मार्कण्डेय, रवींद्र कालिया, सत्यप्रकाश मिश्र और जगदीश पीयूष के साथ मटियानीजी भी थे। छायाचित्र पुस्तिका के पृष्ठभाग से लिया गया था। लेख में इन सभी लोगों को एक राजनीतिक दल के कार्यकर्ता-समर्थक के रूप में प्रस्तुत किया गया था। मटियानीजी ने इसे झूठ और अपमानजनक मानते हुए संपादक को प्रतिवाद भेजा पर उन्होंने न प्रतिवाद छापा और न ही किसी प्रकार का खेद व्यक्त किया। मटियानीजी ने इस पर न्यायालय में मानहानि का दावा ठोंक दिया। यह जानते हुए कि संघर्ष बहुत बड़े औद्योगिक संस्थान से है, जो दिए गए और तूफान की लड़ाई की तरह। कमजोर आर्थिक स्थिति के बावजूद तार्किक परिणति देने का जुनून उन पर सवार था। मुकदमेबाजी में कदम-दर-कदम उनसे चर्चा होती रहती। मैं उनको नैतिक समर्थन ही दे सकता था। उस दौर में राजेंद्र यादव ने उनका खुलकर, बहुत दूर तक साथ दिया। लंबी कानूनी लड़ाई के बाद मुकदमा उच्चतम न्यायालय तक पहुंचा, जहां माननीय न्यायाधीश ने मुकदमा खारिज करते हुए यह बहुचर्चित वाक्य कहा था- 'यू में बी द ग्रेटेस्ट राइटर ऑफ द वर्ल्ड, सो व्हाट?'(आप विश्व के महानतम लेखक हो सकते हैं, तो उससे क्या?)। धर्मयुग-विवाद में ही उन्हें धमकी दी गई थी- 'देखता हूं कि आदमी इस शहर में रहता कैसे है?'

बरेली में मेरी पोस्टिंग तीन बार हुई यानी आप कह सकते हैं कि तीन बार मेरा इलाज हुआ। वहीं मटियानीजी ने अपने करीबी मित्र और जाने-माने कवि डॉ. वीरेन डंगवाल से भेंट कराई जो मेरे भी करीबी बन गए। मेरे बरेली आने से पहले वह उन्हीं के घर रुकते थे। डंगवालजी उनसे पहले की तरह अपने घर रुकने का अनुरोध करते, तो उनका उत्तर होता, 'जब तक दीक्षितजी बरेली में हैं, उनके साथ रूकूंगा पर जब इनका ट्रांसफर हो जाएगा, तो आपका घर छोड़कर कहीं जाऊंगा नहीं। अभी से सावधान रहें।'

बरेली में ही वह एक बार आलोचक अंबिका सिंह वर्मा के साथ आए। वर्माजी का बात करने का अंदाज बेहद रोचक और पुरलुल्फ होता है और हँसी संक्रामक। मटियानीजी और उनका गुरु-शिष्य जैसा संवाद होता था। हम तीनों दिन में ही नहीं, देर रात तक बतियाते रहे थे। एक बार उनके साथ हिंदी के प्रोफेसर और कवि-कथाकार डॉ. ओमप्रकाश गंगोला आए थे। उनकी स्मृति मेरी माताजी को इस नाते है कि ऐश ट्रे के बावजूद सुबह उन्हें ड्राइंग-रूम में सिगरेट के कट्टे यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे मिले थे जिन्हें मिले थे जिन्हें वह झेल नहीं पाई थीं और पत्नी को इस नाते कि तकिया उपलब्ध

होने के बावजूद उन्होंने सोफा सेट की गद्दियों का कचूमर निकाल दिया था। मटियानीजी की सामान लाद-फाँदकर चलने की आदत थी। जहां गए, कोई अच्छी चीज मिलती दिखी तो उसे ले लिया। अगर मन बना लिया तो चाहे जितने रुपये की चीज हो, उतने ही रिक्शा भाड़े में खर्च हो जाएं, ढेर सारा समय लग जाए, पर लाएंगे जरूर। यह अपने परिवार के प्रति स्नेह का प्रतिफल तो था ही, बेहतर की प्राप्ति की अंतर्निहित ललक भी थी। मुझे उनके सामानलादू आचरण से हैरानी थी, हँसी भी आती थी, ऊब भी होती थी और चिंता भी। चिंता इस नाते कि इतना सामान लाद-फांदकर चलने से ट्रेन-बस में दिक्कत होगी।

मुझे याद है, मेरठ नगर दर्शनीय स्थलों के अलावा मटियानीजी मेरे साथ हस्तिनापुर के मंदिर और पुरातात्विक अवशेष और सरधना का बेगम सुमरू का चर्च देखने गए थे। मेरठ में मटियानीजी के रिश्ते के भांजे पुष्पेंद्र नाथ सिंह विष्ट व्यापार कर विभाग में सहायक आयुक्त थे। उनका काफी बड़ा, सुविधासंपन्न और सुरूचिपूर्ण घर है। वह अंग्रेजी साहित्य के विद्वान और प्रशंसक, परिहासशील और उदार व्यक्ति हैं। वह मटियानीजी का बहुत ख्याल रखते थे, 'मामाजी, आप जब तक चाहें, मेरे यहां रुकें। सारी चिंताएं ताक पर रखकर लिखें, खूब लिखें।' मटियानीजी को ज्यादा दिन तक रूककर लिखना होता, तो उन्हीं के घर रुकते अन्यथा हमारे घर।

दिल्ली के करीब होने के कारण मटियानीजी अकसर मेरठ आते। दो-तीन बार मैं भी उनके साथ दिल्ली गया और राजेंद्र यादव, हरिनारायण, अमर गोस्वामी, हरिसुमन बिष्ट जैसे लेखकों, प्रशासक सेवाराम शर्मा, प्रकाशक अनिल पालीवाल, मटियानीजी के छोटे भाई और संस्कृतिकर्मी प्रेम मटियानी आदि से मिलना हुआ। राजेंद्र यादवजी और मटियानीजी के बीच तीखी बहसें भी होती और मजाक भी खूब चलता। आज समाज में जातिवाद, धार्मिक कट्टरता और क्षेत्रवाद इतना हावी है कि मटियानीजी के साथ अंतरंगता देखकर यादवजी ने सहज ही सवाल किया था, 'दीक्षितजी, क्या आप भी पहाड़ के हैं?'

'नहीं, लखनऊ से हूं।' मैंने बताया था।

कुछ साल पुराना प्रसंग मुझे याद आ गया था। मेरे मित्र अविनाश चंद्र वर्मा (चौधरी चरण सिंह के दामाद) मुझे लेकर उत्तर प्रदेश विधान-सभा के तत्कालीन नेता, विरोधी दल मुलायम सिंह यादव से मिलने गए थे। परिचय कराए जाने पर मुलायम सिंहजी ने पूछा, 'वर्मा जी, दीक्षितजी और आपके साथ, यह कैसे?' उनके ठहाके के बीच वर्माजी ने जवाब दिया था, 'अच्छा यह बताओ गणेशदत्त वाजपेयी को क्यों पार्टी में रखे हो? बगैर ब्राह्मणों के राजनीति कर लोगे?' नेताजी ने और ऊंचा ठहाका लगाते हुए काफी का ऑर्डर दे दिया था।

पता नहीं मुलायम सिंहजी को अब ऐसे उन्मुक्त ठहाकों का अवसर मिलता है या नहीं?

मेरे भी हर साल इलाहाबाद के एक-दो चक्कर लगते थे। बताने की जरूरत नहीं कि मटियानीजी शहर में होते, तो उनसे मिलना होता। प्रायः उन्हीं के घर रूकता और बहुचर्चित आतिथ्य का लाभ उठाता।

जैसा कि अकसर ऊंचे पाए के लेखक के साथ होता है, मटियानीजी की साहित्यिक परख का स्तर काफी ऊंचा था। मेरी केवल चार कहानियां ('अंडरवेमेंट' 'आजकल' में, 'हुद्देदार' 'संडे आब्जर्वर' में, 'मेरी बीड़ी कहां है?' 'हंस' में और 'छिपकली-कॉक्रोच से डरने वाली हसीन लड़की' 'वागर्थ' में

छपी) उन्हें पसंद आई थीं, पर मैं इसी में खुश था क्योंकि बहुत से नामचीन लेखकों की एक भी रचना उन्हें पसंद न आई थी। जब 'हुद्देदार' कहानी फेयर की, तो वह संयोग से बिष्टजी के घर रूके हुए थे। मैंने कहानी पढ़ने के लिए उनके पास भेज दी। उन्होंने जैसे ही कहानी पढ़ी, तुरंत रिक्शे से आए और कहानी की प्रशंसा करते हुए बधाई दी। वह फोन से भी बधाई दे सकते थे, पर नहीं, खुद आए। यह भी पूछा कि इसे कहीं भेजा तो नहीं। मैंने बताया कि आज ही तो फेयर किया है। उन्होंने कहा कि कल वह दिल्ली जा रहे हैं, राजेंद्रजी को भेंट दे देंगे। बहुत अच्छी कहानी है, इसे 'हंस' में ही छपना चाहिए। मैंने संपादक के नाम औपचारिक पत्र लिखकर कहानी उन्हें दे दी। कुछ दिनों बाद वह कहानी 'हंस' से वापस आ गई जिसे जानकर उन्हें अफसोस हुआ। उन्हें लगा कि यादवजी ने उनकी पसंद को खारिज करने की नीयत से यह कहानी नहीं छापी। (तब तक दोनों में तनातनी शुरू हो गई थी) पर मैं इस पर कोई निश्चित राय देने की स्थिति में नहीं क्योंकि जरूरी नहीं कि किसी लेखक को पसंद रचना संपादक को भी पसंद आए। फिर, यादवजी तब तक मेरी कई लघुकथाएं छाप चुके थे (बाद में एक कहानी और समीक्षा भी छापी)।

एक चीज का अफसोस रहा। मटियानीजी हमारे यहां आते रहे, पर उन्हें वह सुविधा-सहायता नहीं दे सका जितनी जरूरी थी और जितनी अन्य लोग देते रहे होंगे। भावना में कोई कमी नहीं रही, आर्थिक बाध्यताएं ही आड़े आती रहीं। ईमानदारी से सरकारी नौकरी करने वाले अधिकारी का काम तो नहीं रूकता, पर हाथ सिकोड़कर चलना होता है। बहुत-से लोग नहीं समझते, पर मटियानीजी मेरी स्थिति को अच्छी तरह समझते थे। वह अकसर मजाक में कहते थे, 'एक सेवाराम शर्माजी (दिल्ली कैडर के आई.ए.एस. अधिकारी और कथाकार सरयू शर्मा के पति) हैं, दूसरे गोविंद मिश्र (प्रसिद्ध लेखक और आई.आर.एस. अधिकारी) हैं, तीसरे आप। तीनों ही सरकारी अफसर हैं जो मेरे बहुत करीब हैं और तीनों-के-तीनों ईमानदार। मेरा दुर्भाग्य है कि घनिष्टता भी होती है तो ईमानदार-अफसरों से जो मेरा ज्यादा भला नहीं कर सकते, वरना कमाऊपूत सरकारी अफसरों से दोस्ती हुई होती और दो-चार लाख मुझे दे देते, तो मेरे कष्ट कट जाते...।'

उनके दुर्भाग्य पर हम सबके हँसी फूट पड़ती। वैसे मटियानीजी में जबर्दस्त परिहासशीलता, हाजिरजवाबी और अलमस्तपन था। जब वह अपनी पत्रिका 'विकल्प' या 'जनपक्ष' के आजीवन सदस्य बने थे, कहते थे, 'आजीवन सदस्य का अर्थ पत्रिका के जीवन से है, आपके जीवन से नहीं।'

वह अकसर मुझसे कहते थे, 'आप अपने दफ्तर में मुझे चौकीदारी की नौकरी दिला दीजिए, मेरा कल्याण हो जाएगा। रात को चौकीदारी तो करूंगा ही, रोजी-रोटी का स्थायी जुगाड़ भी हो जाएगा और बगैर किसी व्यवधान के लेखन भी कर लूंगा।' 'राष्ट्रीय सहारा' के कर्मचारीगण 'गुड सहारा' कहकर अभिवादन करते हैं। यह देखकर मटियानीजी फीचर संपादक से बोले, 'जब आप मुझसे 'गुड सहारा' कहते हुए अभिवादन करेंगे, तो मेरा उत्तर होगा, 'बेसहारा!' आपके पास तो सहारा है, पर मैं तो बेसहारा हूं इसलिए मेरे लिए यही अभिवादन सबसे उपयुक्त होगा-बेसहारा!'

वह भोजनरसी व्यक्ति थे। उन्हें मधुमेह की शिकायत थी। दोबारा मीठा लेने से मना करता, तो बोलते, 'मेरे मधुमेह में मीठी चीजें फायदा करती हैं। उनसे मेरी सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ता।'

सचमुच मधुमेह से कोई फर्क नहीं पड़ा, उन्हें मनोरोग ने मारा।

मटियानीजी वाग्मी और तर्कपटु थे। घंटों बोलते रह सकते थे, बस चाहिए थे रूचिवान श्रोता

और डेढ़ कप चाय के दौर...। वह साहसी (जो कभी-कभी दुस्साहसिकता की सीमा का स्पर्श कर जाते थे।, संघर्षशील, स्वाभिमानी, प्रतिबद्ध, मूल्यों के प्रति सजग, सरल, सहज, दिखावे से दूर, संवेदनशील और प्रतिभाशाली लेखक थे। स्त्रियों का अत्यधिक सम्मान करते थे, मुँह से गंदी गाली नहीं निकालते थे। हमारी अच्छी पटरी बैठती थीं। कुछ बातों को लेकर हमारा मतवैभिन्य होता, तो भी हमारी चर्चाएं स्वस्थ और जनतांत्रिक होती थीं। हम दोनों एक-दूसरे की वैचारिक स्वतंत्रता का सम्मान करते थे।

मटियानीजी के कुछ अनुमान, त्वरित निष्कर्ष मुझे अपील नहीं करते थे। मटियानीजी जिन्हें अपने यौगिक अनुभव कहते थे, उन्हें अवचेतन मन के अनुभव मानता हूं। उन्होंने शास्त्रोक्त यौगिक क्रियाओं का पालन नहीं किया था, फिर भी यौगिक अनुभव की बात करते थे। इसी तरह अमेठी में जब कालियाजी ने मटियानीजी को पान खिलाया, तो मटियानीजी को लगा कि कालियाजी ने जहर मिला पान खिलाया। यह आरोप मुझे कालियाजी के प्रति ज्यादती लगती है। जैसा कि वहां मौजूद आलोक सत्यप्रकाश मिश्र ने 'कथादेश' में बाद में कहा था, पान में शायद तंबाकू के झटके ने मटियानीजी को जहर का आभास दिया (बाद में उन्होंने पान थूक दिया था)। अन्य कोई बात, साक्ष्य या पृष्ठभूमि जहर वाली बात की पुष्टि नहीं करती। इसी प्रकार बेटे मनीष की दुखद हत्या का आरोप 'आवास विकास परिषद्' के ठेकेदारों-इंजीनियरों पर मढ़ना मुझे तर्कसंगत नहीं लगता। शुरू में मटियानीजी के पारिवारिकजनों ने भी यही कहा था कि विश्वविद्यालय जाते समय मनीष साथियों के साथ ढाबे पर चाय पीने के लिए आकस्मिक तौर पर रूक गया था और दो माफिया गुटों की आपसी प्रतिद्वंद्विता में, एक गुट ने दूसरे गुट के सदस्य पर देशी बम फेंका था और निशाना चूक जाने के कारण वहीं खड़े मनीष की पीठ पर लगा था। फिर, 'आवास विकास परिषद्' के लोगों को खतरा मटियानीजी से था क्योंकि वही शिकायत कर रहे थे। मनीष की हत्या से मटियानीजी की आवाज नहीं बंद की जा सकती थी। वह हुई भी नहीं।

लेखकीय स्वतंत्रता और अस्मिता के प्रति जितनी पक्षधरता मटियानीजी में थी, उतनी बहुत कम लेखकों में मिलती है। इसी के चलते वह लेखकीय संघों के सदस्य नहीं बने-वह चाहे वामपंथी संघ रहे हों या दक्षिणपंथी। साहित्य की राजनीति, दलाली, गिरोहबाजी और मठवादिता करने वाले लोग मटियानीजी जैसे स्पष्टवादी और तर्कशील व्यक्ति के वैचारिक प्रतिवाद को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे और मन में गांठ बांध लेते थे। एक गोष्ठी में उन्होंने लेखक-संगठनों को गिरोह की संज्ञा दी, तो बहुतों को किरकिरी हुई। बेटे मनीष की हत्या के बाद एक बार राजेंद्र यादवजी के घर पर मटियानीजी ने कहा, 'अगर ऐसी मर्मांतक, बड़ी दुर्घटना किसी प्रगतिशील लेखक संघ, जनवादी लेखक संघ, जन संस्कृति मंच या अशोक वाजपेयी संघ के सदस्य लेखक के साथ घटित हुई होती, तो प्रदेश सरकार से लेकर केंद्र सरकार तक हंगामा मचा दिया गया होता और उजड़े हुए परिवार की आर्थिक सहायता करने को बाध्य कर दिया गया होता, लेकिन चूंकि दुर्घटना मेरे साथ हुई है, इसीलिए किसी भी लेखक संघ ने आवाज नहीं उठाई।' यादवजी ने उत्तर दिया, 'तुम सारे लेखक संगठनों को लेखकों के गिरोह बताते रहे हो, तो तुम्हारे मामले में कोई लेखक संगठन रूचि क्यों लें?' बहुत भीतर तक टूट चुके होने की स्थिति में भी मटियानीजी ने कहा था, 'राजेंद्र भाई, इस बात के लिए आपको धन्यवाद, क्योंकि इससे जो विभिन्न लेखक संघों को लेखकों के गिरोह बताया मैंने, यह सच सिद्ध हो गया।'

मटियानीजी को फेदिन का यह कथन बहुत पसंद था-'भाषा की पहली शर्त सच्चाई है।' उनकी कोशिश सच के करीब पहुंचने की होती थी। वह न दक्षिणमार्गी थे, वाममार्गी। वह सत्यमार्गी थे। लेखन को वह कागज पर खेती करना कहते थे। अपने बारे में वह कहते थे-'इक्के में जुते हुए घोड़े जैसी मेरी जिंदगी है और मैं दौड़ रहा हूं, बदहवास दौड़ता जा रहा हूं। जब तक दम है, दौड़ता रहूंगा।' सचमुच इक्के में जुते घोड़े की तरह आखिरी दम तक दौड़ते रहे वह...। पर यह भी सच है कि आखिरी दम तक उन्होंने कागज पर खेती करना भी नहीं छोड़ा।

ढेर सारी स्मृतियां, ढेर सारे प्रसंग हैं...।

मार्च-अप्रैल, 1992 में सपरिवार भारत-यात्रा पर निकला था जिसके आखिरी दौर का एक पड़ाव इलाहाबाद था। हम लोग आनंद भवन देखकर निकले, तो पास ही स्थित मटियानीजी के घर भी गए। वहीं पता चला कि कोई दस दिन पहले 13 अप्रैल को उनके कनिष्ठ पुत्र की पास ही के एक ढाबे पर दो माफिया गुटों के आपसी संघर्ष के फलस्वरूप धोखे से देशी बम लग जाने से हत्या हो गई है। यह सुनकर सन्न रह गए हम, रंग में भंग हो गया। मटियानीजी नहीं थे, पर शेष सारा परिवार शोक के महासागर में डूबा था।

मनीष मृदुभाषी स्वभाव का, कर्मठ और सेवाभावी बच्चा था। जिस किसी के संपर्क में आता, मुरीद बना लेता। उसके अभाव ने संघर्षशीलता और जिजीविषा वाले मटियानीजी को आश्चर्यजनक रूप से तोड़ दिया। एक हादसा मनुष्य के जीवन को किस तरह झकझोर देता है, किस तरह साहस को तार-तार कर पंगु और असहाय बना देता है, उसका ज्वलंत उदाहरण है यह हादसा। हादसे के बाद पहली बार मिलना हुआ, तो वह दूसरे मटियानी थे- एकदम टूटे और हारे हुए। मैंने दबी जबान सलाह दी कि वह परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए इलाहाबाद में ही रहें, पर उन्हें इलाहाबाद से इतनी वितृष्णा हुई कि हल्द्वानी आकर रहने लगे। यह पलायन भी मटियानीजी के आघात को कम नहीं कर सका और 7 जुलाई, 1995 को जब वह एक गोष्ठी में कलकत्ता गए थे, मनोविक्षिप्ति का भयंकर दौरा पड़ा।

कुछ समय बाद तबीयत ठीक हुई, पर ज्यादा दिन के लिए नहीं। मनोविक्षिप्ति के दौरे धूप-छांव की तरह बार-बार पड़ने लगे और उन्हें इलाहाबाद, लखनऊ या दिल्ली के अस्पतालों में भर्ती कराना पड़ता। एक बार तो वह इलाहाबाद के घर से कुछ दिनों के लिए गायब हो गए और अचेतावस्था में एक मैदान में पड़े पाए गए। एक बार हल्द्वानी में तबीयत खराब होने पर नीला भाभी और राकेश उन्हें लखनऊ ले जाते समय थोड़ी देर हमारे यहां रूके। कार में ही बगल में बैठकर उन्हें नाश्ता कराया। तबीयत इतनी खराब थी कि बायां हाथ हथकड़ी में बंधा था जिससे वह न मारपीट करें और न भागें। पर उस समय उन्हें थोड़ा होश जरूर था क्योंकि बाएं हाथ पर तौलिया रखकर वह हथकड़ी को मुझसे छिपा रहे थे। यह देखकर मन भर आया था। उनकी चिर-परिचित मुखरता गायब थी, पर मेरे सामने व्यवहार सामान्य ही रहा।

कुछ वर्षों से उनका बाहर निकलना बंद हो चुका था। पिछले साल वह 'आधारशिला' (हल्द्वानी) के संपादक दिवाकर भट्ट के साथ कुछ दिनों के लिए दिल्ली गए या फिर बेटे राकेश के पास इलाहाबाद। वह कुछ वर्षों से हमारे घर भले ही न आ पाए हों, पर उनके संपर्क में रहा-फोन से, पत्र-माध्यम से और हल्द्वानी जा-जाकर भी। पिछले साल 20 अगस्त को हल्द्वानी में उनका नागरिक

अभिनंदन हुआ, तो उसमें भी जाना हुआ। वैसे तो पारिवारिक दायित्वों के प्रति मटियानीजी सदैव सजग रहे, पर बीमारी के बाद उनकी चिंताएं बहुत बढ़ गईं। ये चिंताएं भी तबीयत न सुधरने देने में अहम भूमिका अदा करती रहीं। बेटा राकेश विनिवेश सलाहकार का कार्य करता रहा और बेटी शुभा हल्द्वानी के एक प्राइवेट इंटरमीडिएट कॉलेज में अध्यापन करती है। दोनों की आर्थिक सुरक्षा को लेकर वह बहुत चिंतित रहते थे। वह यौगिक अनुभवों पर एक पुस्तक और एक बड़ा उपन्यास लिखना चाहते थे- ये इच्छाएं भी पूरी नहीं हो सकीं।

इस वर्ष 15 अप्रैल को पता चला कि मटियानीजी को एक पहले शाहदरा (दिल्ली) के 'मानव व्यवहार एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान' में मनोविक्षिप्ति के प्रचंड दौरे के फलस्वरूप भरती कराया गया है। कई दिन से वह सोए ही नहीं थे। 17 अप्रैल को उन्हें देखने पहुंचा। वह प्राइवेट वार्ड सं. 5 में अचेतावस्था में पड़े थे और हाथ-पैर कपड़ों से बंधे थे। राकेश, उनकी पत्नी, उनका बेटा और स्वामी (मनोज पाल सिंह-साली का बेटा जिसे मटियानीजी ने बचपन से ही स्नेह से पाला और पढ़ाया-लिखाया) उनकी देखरेख में थे। पता चला कि 7-8 इंजेक्शनों के बाद कुछ देर पहले ही सो पाए हैं। इसके पहले लोगों को धमकाते थे, मारने दौड़ते थे। कुल मिलाकर हालत गंभीर थी। अगले कुछ दिनों में फोन से उनकी तबीयत का हाल मिलता रहा। 24 अप्रैल को लगभग ग्यारह बजे दिन में हरिनारायणजी का फोन आया कि सुबह मटियानीजी नहीं रहे। बुखार और कफ था। सुबह सांस लेने में तकलीफ हुई, तो डॉक्टरों ने ऑक्सीजन दी। पर कोई असर नहीं हुआ। यह भी सूचना दी कि अंत्येष्टि अगले दिन हल्द्वानी में होनी है। आखिर वही हुआ जिसकी आशंका थी, पर हम चाहते थे, न हो। अगले दिन बस से लगभग ग्यारह बजे हल्द्वानी पहुंचा। शुभा ने फोन पर बताया था कि अंत्येष्टि रानीबाग श्मशान-घाट पर होनी है। थ्री व्हीलर से रानीबाग पहुंचा। आधा-घंटे पहले अग्नि दी जा चुकी थी। स्मृति में अब उनका जीवित रूप ही रहेगा!

गोला नदी की क्षीण धारा के ठीक किनारे चिता धूं-धूं-कर जल रही थी, मिट्टी आग में तपकर मिट्टी बन रही थी। धूप खिली थी, यद्यपि आकाश में बादलों के चार-छह टुकड़े भी थे। मानो सूरज और बादल साथ-साथ हिंदी के इस प्रतिभाशाली, संघर्षशील लेखक को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हों। मद्धम हवा भी मानो विनम्र श्रद्धांजलि के फिराक में हो। पच्चीस-तीस परिजनों के अलावा पानू खोलिया, प्रेमसिंह नेगी, बटरोही, महेंद्र मटियानी जैसे लेखक, प्रताप भइया जैसे समाजवादी और समाजसेवक, संस्कृतिकर्मी प्रेम मटियानी और इलाहाबाद के प्रकाशक अभय मित्र मौजूद थे। उत्तरांचल सरकार के प्रतिनिधि के रूप में जिला मजिस्ट्रेट उत्पल कुमार सिंह भी आए थे।

लगभग दो घंटे बाद चिता पूरी हुई। हम लोगों ने जलांजलि दी और भस्मी गोला नदी में प्रवाहित कर दी गई। पंडितजी ने दीप जलाकर मंत्र पढ़े और राकेश से कुछ संक्षिप्त संस्कार कराए। बाड़ेछीना (अल्मोड़ा) से शुरू हुआ सफर देश की लंबी-लंबी दूरी नापता हुआ आखिर अपनी जमीन पर गोला-तट पर समाप्त हुआ। दाज्यू (भाई) चला गया मानो मेरे जीवन का छब्बीस साल पुराना अध्याय समाप्त हो गया हो। हल्द्वानी में अब रूकने का न ही मन था, न ही कोई अर्थ। भाई प्रेम मटियानी ने अपनी कार से बस स्टेशन तक छोड़ा और वापस लौट पड़ा।

रौ में है रक्श-ए-उम्र देखिए कहां थमे,
न हाथ में लगाम है, न पा है रकाब में। ●

कुंभ में कविता

राधेश्याम तिवारी

बात वर्ष 2016 के अप्रैल माह की है। साहित्य अकादेमी से हिंदी के युवा कवि एवं संपादक कुमार अनुपम का फोन आया। उन्होंने उज्जैन में सिंहस्थ के अवसर पर साहित्य अकादेमी की ओर से होने वाले आयोजन में कविता पाठ का निमंत्रण दिया। निमंत्रण मैंने तुरंत स्वीकार कर लिया। सच तो यह है कि उनके इस निमंत्रण से मैं रोमांचित भी हुआ क्योंकि उज्जैन जाने की मेरी इच्छा बहुत दिनों से थी। उस उज्जैन को मैं देखना चाहता था जिसके वैभव का जिक्र पुराणों एवं संस्कृत के कवियों ने किया है। महाकवि कालिदास ने तो अपनी अमर कृति 'मेघदूत' में इसका उल्लेख कुछ इस तरह किया है मानो इस धरती पर अगर कहीं स्वर्ग है तो वह उज्जैन में ही है।

उज्जैन को विभिन्न नामों से जाना जाता है। मसलन अवंतिका, उज्जयिनी, विशाला, प्रतिकल्पा, कुमुदमति, स्वर्णश्रृंगा, अमरावती आदि। इस नगर से कालिदास इतने सम्मोहित थे कि उन्होंने यहां तक लिख डाला कि'दुनिया के सारे रत्न उज्जैन में हैं और समुद्र के पास केवल जल बचा है।' स्वयं कालिदास भी विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में एक थे। यह बात और है कि बाकी आठ रत्नों को कम ही लोग जानते हैं। शायद सबसे बड़ा रत्न साहित्य रत्न ही है जो महाकाल के भाल पर अवस्थित है।

उज्जैन में एयरपोर्ट नहीं है इसलिए हवाई जहाज की यात्रा इंदौर तक ही संभव है। 4 मई, 2016 को प्रातः 7 बजे दिल्ली के इंदिरा गांधी एयरपोर्ट से इंदौर के लिए जाना था। जब दिल्ली एयरपोर्ट पर गया तो देखा इंदौर जाने वालों की अच्छी खासी तादाद थी। इसका मुख्य कारण उज्जैन में सिंहस्थ का होना था। भीड़ के कारण उज्जैन जाने वाली अधिकांश गाड़ियों में रिजर्वेशन नहीं मिल रहे थे। ऐसे में हवाई जहाज से जाने वालों की संख्या बढ़ गई थी। उनमें महिलाओं की संख्या ज्यादा थी। एयरपोर्ट पर भीड़ को देखकर सिंहस्थ में होने वाली भीड़ का अंदाजा लगाया जा सकता था। उस समय मुझे किसी कवि की ये पंक्तियां याद आईं

'संतो, लगा कुंभ का मेला,
एक झंकोरा इधर से आया
एक झंकोरा उधर से आया
फंसा भंवर में चेला,
संतो, लगा कुंभ का मेला।'

एयरपोर्ट पर कई ऐसे भव्य त्रिपुंडधारी भी मिले जिनके आगे-पीछे चेलों की जमात थी। उन्हें

देखने से ही लग रहा था कि गुरुजी काफी मालदार हैं। चेहरे पर ज्ञान की आभा झलक रही थी। कई प्रगतिशील लोगों के लिए कुंभ मेला अंधविश्वास एवं पाखंड का प्रतीक है मगर त्रिलोचन शास्त्री का दृष्टिकोण इस संदर्भ में कुछ भिन्न है। वे अपनी एक कविता में लिखते हैं

'आने दो-आने दो, जनता को मत रोको
पर्वत की दुहिता है, कब रुकने वाली है
पथ दो, प्याऊ बैठा दो, चलते मत टोको
बल प्रयोग देखकर कब झुकने वाली है
हार थकन से क्या यह धुन चुकने वाली है
आने दो यदि महाकुंभ में जन आता है
कुछ तो अपने मन का परिवर्तन पाता है।'

सिंहस्थ उज्जैन का स्नान पर्व माना जाता है। 12 वर्षों के अंतराल में यह पर्व तब मनाया जाता है जब बृहस्पति सिंह राशि पर स्थित रहता है। पवित्र शिप्रा नदी के प्रणय स्नान की विधियां चैत्र मास की पूर्णिमा से प्रारंभ होती है और पूरे मास में वैशाख पूर्णिमा के अंतिम स्नान काल तक भिन्न-भिन्न तिथियों में संपंन होती है। उज्जैन के इस महापर्व के लिए पारंपरिक रूप से दस योग महत्वपूर्ण माने गए हैं। देश भर में उज्जैन के अलावा प्रयाग, नासिक और हरिद्वार में भी कुंभ स्नान की परंपरा है।

इससे पूर्व किसी भी कुंभ मेले में मुझे जाने का अवसर नहीं मिला था। मेरी विशेष रूचि नई जगहों को देखने में है। खास तौर से ऐसे समय में जाना मुझे ज्यादा पसंद है जब कोई विशेष धार्मिक अवसर न हो क्योंकि विशेष धार्मिक अवसर पर अत्यधिक भीड़ के कारण यात्रा का आनंद नहीं मिल पाता। यह पहला अवसर था जब कुंभ में मैं कविता सुनाने जा रहा था बाकी अधिकांश भीड़ पुण्य लाभ के लिए जा रही थी। मैं पालम एयरपोर्ट पर हवाई जहाज की जिस सीट पर बैठा था वह खिड़की की ओर थी। मेरे अलावा बगल की सीट पर दो महिलाएं थीं। उनमें एक कुछ ज्यादा ही मोटी और उम्रदराज भी लगी। एक ने बैठते ही मुझसे पूछा

'आप भी उज्जैन चलेंगे क्या?'

'जी।'

'दिल्ली के ही रहने वाले हैं?'

'हां, और आप लोग?' मैंने पूछा।

'हम लोग उत्तम नगर की रहने वाली हैं।'

मैं खिड़की से बाहर का दृश्य देखने लगा तभी एयर होस्टेस ने बताना शुरू किया कि हवाई यात्रा में किन-किन बातों पर विशेष रूप से ध्यान रखना है। उसी समय एक आकर्षक युवती आई और उसने यात्रियों की सीट की ओर ध्यान से देखा। मेरे पास आकर उसने कहा'बेल्ट लगा लीजिए प्लीज!' जब प्लेन टेकऑफ होने को था तभी मैंने लक्ष्य किया मेरे बगल में बैठी महिलाओं में एक ने अपनी आँखें बंद कर ली।

'आपने आँखें क्यों बंद कर ली?' मैंने पूछा।

'मुझे डर लगता है।' उसकी बात पर मोटी वाली महिला ने मुस्कुराते हुए कहा'यह बहुत

डरती है। पहली बार हवाई जहाज में बैठी है। बहुत कहने पर तैयार हुई। किसी भी ट्रेन में रिजर्वेशन नहीं मिला...।'

'इसमें डरने की क्या बात है। होने को तो ट्रेन में भी दुर्घटनाएं होती ही हैं और फिर ये अकेली थोड़े ही हैं जो होगा सबके साथ होगा। आँखें बंद रहें या खुली रहें, उससे क्या फर्क पड़ता है।' मेरी बात पर उस महिला ने एक बार आँखें खोलकर मेरी ओर देखा और हँसती हुई फिर आँखें बंद कर ली। थोड़ी देर बाद उस मोटी महिला ने पूछा'आप किस बाबा के कैंप में जा रहे हैं? मैं तो गुरु जैराम बाबा के कैंप में रूकूंगी। यह भी मेरे साथ ही रहेगी।'

'मैं किसी गुरु के पास नहीं जा रहा। एक कार्यक्रम में जा रहा हूंकविता सुनाने।'

'कुंभ में कविता!' उसने अचरज से मेरी ओर देखते हुए कहा। जब उसे लगा कि उसकी तरह मैं किसी गुरु के पास नहीं जा रहा हूं तो लगभग मुझसे विमुख-सी हो गई। उसके बाद फिर कोई संवाद नहीं हुआ।

जहाज बादलों को छूता हुआ बढ़ता जा रहा था। उन बादलों के परिवार से गुजरते हुए फिर कालिदास याद आए। सोचने लगा, उस महाकवि ने आखिर 'मेघदूत' में मेघ को ही दूत क्यों बनाया। क्या शायद इसलिए कि इस मेघ की रचना भी उन्हीं पंच महाभूतों से हुई है जिनसे इस मानव शरीर की रचना हुई है। मानव से बादलों की यह साम्यता ही उन्हें दूत बनाने को प्रेरित किया होगा। बादलों के बीच से गुजरते हुए ऐसा लगा मानो मैं भी उसी के परिवार का हिस्सा हूं। उस समय आकाश एक विशाल कैनवास जैसा लगा, जिस पर बादलों की चित्रकारी देखते ही बन रही थी। आखिर यह चित्रकारी किस चित्रकार की है? बादलों पर सूरज की रोशनी पड़ने से उसमें जो रंग उभर रहे थे उस रंग से मेरी चेतना में भी उजास फैलता जा रहा था। मैं कहीं खो-सा गया था। इस विराट आकाश का दर्शन कर पहले तो अपनी तुच्छता का बोध हुआ, लेकिन जैसे ही मैंने अपने को उस विराटता से जोड़ लिया तो लगा यह मेरा ही विस्तार है। बादलों की तरह ही मैं भी उस विराटता में गोते लगाने का अहसास करने लगा तभी सूचित किया गया कि अब प्लेन इंदौर के अहिल्याबाई होलकर एयरपोर्ट पर लैंड करने वाली है। मैंने लक्ष्य किया कि बगल की सीट पर बैठी महिला ने अभी तक आँखें बंद की हुई है। मोटी महिला ने उसके कान के पास मुंह कर कुछ कहा। शायद कह रही थी'अब तो आँखें खोलो सखि! धरती पर उतरने वाली हो।'

जहाज से उतरते समय देखा, जो लड़की सीट बेल्ट लगाने को कह गई थी वही गेट पर हाथ जोड़कर मुस्कुराते हुए सबका स्वागत इस भाव से कर रही थी मानो फिर सेवा का अवसर दीजिएगा। बाहर निकला तो एयरपोर्ट परिसर में ही एक युवक मेरी ओर तेजी से आया और बोला

'टैक्सी चाहिए सर?'

'हां, उज्जैन जाना है। क्या लोगे?' मैंने पूछा।

'उज्जैन में कहां जाना है?'

'श्रीमाया होटल।'

'हजार रुपये लगेंगे सर।' वह किसी ट्रेवल कंपनी का एजेंट था। साहित्य अकादेमी के अजय शर्मा ने मुझे पहले ही बता दिया था कि वहां से प्रीपेड टैक्सी मिल जाएगी। हजार रुपये लेते हैं। एजेंट ने तुरंत एक युवक को बुलाकर कहा'साहब को श्रीमाया होटल ले जाओ।'

एसी कार थी। बैठते ही ड्राइवर ने एसी चालू कर दिया। गर्मी के दिन थे। एयरपोर्ट से बाहर निकलते ही गर्मी ज्यादा महसूस होने लगी थी। ड्राइवर के बगल में बैठ गया। उससे नाम पूछा तो भरत बताया। उम्र- 20-21 वर्ष की रही होगी। दुबला किंतु आकर्षक। सहज और विनम्र भी। एयरपोर्ट से थोड़ी दूर चलने पर एक मोड़ आया। वहीं से उज्जैन के लिए सीधी सड़क जाती है। सड़क देखकर लगा वह अभी-अभी बनी है बिलकुल साफ-सुथरी। कहीं भी उबड़-खाबड़ नहीं। शायद सिंहस्थ के अवसर पर इसकी मरम्मत हुई होगी। थोड़ा आगे चलने पर सड़क के दोनों ओर बाबाओं के बड़े-बड़े बैनर और पोस्टर नजर आने लगे। उनमें बाबाओं की विशेषताओं का उल्लेख था मगर कहीं भी जैराम बाबा का पोस्टर नजर नहीं आया जिनके कैंप में दिल्ली की वे दोनों महिलाएं गई थीं। कुछ दूर जाने पर एक ऊंची और लंबी दीवार नजर आई। ड्राइवर से पूछा तो उसने बताया कि यह जेल की दीवार है। बीच-बीच में कई होटल भी नजर आए। सड़क के दोनों ओर जगह-जगह मधुशाला का बोर्ड लगा था। मुझे लगा यहां शराब बिकती होगी।

'यहां मधुशाला बहुत है?' ड्राइवर से पूछा।

'हां!' उसने सिर हिलाया।

'यहां लोग पीते बहुत हैं?' मेरे पूछने पर वह कुछ बोला नहीं। शायद सुन नहीं पाया हो। उसे समय से श्रीमाया होटल पहुंचना था। वह तेज रफ्तार में गाड़ी चला रहा था। देखने में भोला-भाला था। चेहरे से मासूमियत झलक रही थी। थोड़ी देर बाद मैंने पूछा'घर में और कौन हैं?'

'मां-पिताजी एवं बड़ा भाई।' उसने मेरी ओर देखते हुए कहा। फिर थोड़ी देर बाद रुककर उसने कहा'बड़े भाई को पीने की लत है। बहुत समझाने पर भी नहीं मानता। पिताजी भी पीते थे। उनकी हालत अब ठीक नहीं है। कभी भी जा सकते हैं।'

'तुम्हारे भाई की शादी हो गई है?'

'हां, दो बच्चे भी हैं।'

'और तुम्हारी?'

'अभी नहीं। जो कमाता हूं उसमें कैसे शादी करूं। पूरा घर मुझे ही चलाना पड़ता है।'

'कितना कमा लेते हो?'

'बारह हजार रुपये मिलते हैं। सोचता हूं कुछ दिनों के लिए काम करने दिल्ली चला जाऊं। हमारे कुछ परिचित वहां रहते हैं। बताते हैं ड्राइवरों को 18-20 हजार रुपये तक मिल जाते हैं। आप भी दिल्ली के ही हैं न? आपको तो पता ही होगा।'

'तुम्हें कैसे पता कि मैं दिल्ली का हूं।' मैंने हँसते हुए कहा।

'जिस फ्लाइट से आप आए वह दिल्ली से ही तो आती है।' उसने भी हँसते हुए कहा।

'मुझे नहीं पता कि वहां ड्राइवरों को क्या मिलता है, न मेरे पास गाड़ी है न ड्राइवर।' बातचीत परिवार से शुरू होकर राजनीति पर चली गई। उसने कहा'मैं देश की तो नहीं जानता, मगर मध्य प्रदेश सरकार ने बड़ा काम किया है। मेरा बड़ा भाई भी ठीक-ठाक कमाता था, लेकिन जब आदमी खुद ही बरबाद होने पर तुला हो तो कोई सरकार क्या कर लेगी।' उसने बताया कि वह 12वीं तक पढ़ा है। जिम्मेवारी आ जाने के कारण कम उम्र में ही वह बड़ों जैसी बातें कर रहा था। उसमें इच्छा-शक्ति बहुत थी। किसी से उसे कोई शिकायत नहीं। बातों-बातों में पता ही नहीं

चला और हम लोग उज्जैन शहर में प्रवेश कर गए। जैसे ही शहर में प्रवेश किए कि तुलसीदास की ये पंक्तियाँ याद आईं

'प्रबिसि नगर कीजै सब काजा।
हृदय राखि कौसलपुर राजा॥'

संभवतः यह पंक्तियां उस समय की हैं जब हनुमानजी लंका में प्रवेश करते हैं और उन्हें अपहृत सीता मैय्या का पता लगाना है मगर मेरे साथ ऐसा कुछ भी नहीं था। न मुझे सीता मैय्या का पता लगाना था और न ही मैं कोई हनुमान ही हूं। मैं तो महाकवि कालिदास के उस नगरी में आया था जिसकी सौंदर्य और समृद्धि गाथा का गौरवशाली इतिहास है।

उज्जैन का इतिहास काफी लंबा है हालांकि इसके इतिहास को लेकर अनेक भ्रांतियां भी हैं। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इसकी नींव किसने डाली। कतिपय विद्वान अच्युतगामी को उज्जयिनी को बसाने वाला मानते हैं। स्कंध पुराण में यह उल्लेख है कि त्रिपुर राक्षस का वध करके भगवान शंकर ने उज्जयिनी बसाई। उज्जैन के गढ़क्षेत्र में हुई खुदाई में प्रागैतिहासिक (Protohistric) आरंभिक लौहयुगिन सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई है। पुराणों एवं महाभारत में यह भी उल्लेख मिलता है कि कृष्ण और बलराम यहां गुरु संदीपनी के आश्रम में विद्या प्राप्त करने आए थे। कृष्ण की एक पत्नी मित्र वृंदा उज्जैन की राजकुमारी थी। उसके दो भाई विंद एवं अनुविंद महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। ईसा की छठी सदी में उज्जैन में एक अत्यंत प्रतापी राजा हुआ जिसका नाम चंद्र प्रद्योत था। भारत के अन्य शासक उससे डरते थे। उसकी दुहिता वासवदत्ता एवं वत्स नरेश उदयन की प्रणयगाथा इतिहास प्रसिद्ध है। प्रद्योत वंश के उपरांत उज्जैन मगध साम्राज्य का अंग बन गया था। महाकवि कालिदास उज्जयिनी सम्राट विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक थे। उनको उज्जयिनी अत्यंत प्रिय थी इसलिए उन्होंने इसका मनोहारी वर्णन किया है। वाणभट्ट ने कादंबरी में भी इस नगर का वर्णन किया है। सम्राट विक्रमादित्य ही कालिदास के वास्तविक आश्रयदाता के रूप में विख्यात हैं। कालिदास को मालवा के प्रति गहरी आस्था थी। उन्होंने उज्जैन के प्राचीन एवं गौरवशाली वैभव को देखा था। अट्टालिकाओं, उद्यानों, वासवदत्ता की प्रणयगाथा, भगवान महाकाल की सांध्यकालीन आरती तथा नृत्य करती गौरी मनाओं के साथ ही शिप्रा नदी का प्रवाह भी उन्हें देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। 'मेघदूत' में वे उज्जयिनी का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि जब स्वर्ग के जीवों को अपने पुण्यक्षीण होने की स्थिति पर पृथ्वी पर आना पड़ा तब उन्होंने विचार किया कि हम अपने साथ स्वर्ग का एक टुकड़ा भी लेते चलें वही स्वर्ग-खंड उज्जयिनी है।

उज्जयिनी की ऐतिहासिकता का प्रमाण 600 वर्ष पूर्व मिलता है। तत्कालीन समय में भारत में जो 16 जनपद थे उनमें अवंतिका जनपद भी एक था। अवंति उत्तर-दक्षिण दो भागों में विभक्त था। उत्तरी क्षेत्र की राजधानी उज्जैन थी और दक्षिण भाग की राजधानी महिष्मती। उस समय चंद्रप्रद्योत गुर्जर नामक सम्राट सिंहासनारूढ़ था। प्रद्योत के वंशजों का उज्जैन पर तीसरी शताब्दी तक प्रभुत्व रहा। मौर्य साम्राज्य के अभ्युदय होने पर मगध सम्राट बिंदुसार के पुत्र अशोक जब उज्जयिनी के वाइसराय थे तभी उन्होंने वेदिसा देवी से शादी की थी। देवी संभवतः वहीं की थी। बिंदुसार की मृत्यु के बाद अशोक ने उज्जयिनी की बागडोर अपने हाथों में ली। वेदिसा देवी से ही उन्हें महेंद्र

एवं सिंधमित्रा जैसी संतान प्राप्त हुई थी जिसने कालांतर में श्रीलंका में बौद्धधर्म का प्रचार किया था। अशोक के पश्चात् उज्जयिनी ने दीर्घकाल तक अनेक सम्राटों का उतार-चढ़ाव देखा।

मौर्य सम्राट के पतन के बाद उज्जैन शकों एवं सात वाहनों की प्रतिस्पर्धा का केंद्र बना। शकों के पहले आक्रमण को उज्जैन के वीर गुर्जर विधुमाहित्य के नेतृत्व में यहां की जनता ने पहली सदी पूर्व विफल कर दिया था। कालांतर में विदेशी पश्चिमी शकों ने उज्जैन हस्तगत कर लिया। चस्टान व सद्मान इस देश के प्रतापी एवं लोकप्रिय महाक्षत्रप सिद्ध हुए।

चौथी शताब्दी में गुप्तों और औलिकारों ने मालवा से इन शकों की सत्ता समाप्त कर दी। शकों एवं गुप्तों के काल में इस क्षेत्र का अद्वितीय आर्थिक एवं औद्योगिक विकास हुआ। छठी से 10वीं सदी तक उज्जैन गुर्जर प्रतिहारों की राजनैतिक-सैनिक स्पर्धा का दृश्य देखता रहा। सातवीं शताब्दी में उज्जैन कन्नौज के हर्षवर्धन साम्राज्य में विलीन हो गया। उस काल में उज्जैन का सर्वांगीण विकास होता रहा। वर्ष 648 में हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद नौवीं शताब्दी तक उज्जैन गुर्जरों परमारों के अधिपत्य में आया और 11वीं शताब्दी तक कायम रहा। उस काल में उज्जैन की उन्नति होती रही। उसके बाद उज्जैन गुर्जर चौहान और तोमर गुजरो के अधिकार में आया।

वर्ष 1000 से 13000 तक मालवा परमार शक्ति द्वारा शासित रहा। काफी समय बाद तक उसकी राजधानी उज्जैन रही। उस काल में सीचक द्वितीय, मुंजदेव, भोजदेव, उदयादित्य, नर वर्मन जैसे महान शासकों ने साहित्य, कला एवं संस्कृति की अभूतपूर्व सेवा की लेकिन दिल्ली के दास एवं खिलजी सुल्तानों के आक्रमण के कारण परमार वंश का पतन हो गया। वर्ष 1235 में दिल्ली का शमसुद्दीन इल्तुतमिश विदिशा विजय करके उज्जैन की ओर आया। उस क्रूर शासक ने उज्जैन को न केवल बुरी तरह लूटा अपितु उसके प्राचीन मंदिरों एवं धार्मिक स्थलों का वैभव भी नष्ट किया। वर्ष 1406 में मालवा दिल्ली सल्तनत से मुक्त हो गया। उसकी राजधानी मांडू से होरी बनी। खिलजी और अफगान सुल्तान स्वतंत्र राज्य करते रहे। मुगल सम्राट अकबर ने जब मालवा पर आक्रमण किया तब उज्जैन को प्रांतीय मुख्यालय बनाया। अकबर, जहांगीर, शाहजहां एवं औरंगजेब यहां आए थे।

सन् 1736 में उज्जैन सिंधिया वंश के अधिकार में आया। उनका वर्ष 1880 तक एक-छत्र राज्य रहा जिसमें उज्जैन का सर्वांगीण विकास होता रहा। सिंधिया वंश की राजधानी उज्जैन बनी। राणेजी सिंधिया ने महाकालेश्वर मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया। इस वंश के संस्थापक राणेजी शिंदे के मंत्री रामचंद शेणवी ने वर्तमान महाकाल मंदिर का निर्माण कराया। वर्ष 1810 में सिंधिया राजधानी ग्वालियर ले जाई गई किंतु उज्जैन का सांस्कृतिक विकास जारी रहा। 1948 में ग्वालियर राज्य का नवीन मध्य प्रदेश में विलय हो गया।

ड्राइवर ने कहा‘अंकलजी यही है श्रीमाया होटल।’ उसे मैंने हजार रुपये दिए। उसने गाड़ी मोड़ ली। होटल कोई बहुत सुंदर नहीं था। उसकी बाहरी बनावट से लग रहा था कि लंबे समय से उसमें रंग-रोगन नहीं हुआ है। परिसर के गेट पर दरबान खड़ा था? देखकर नमस्ते किया। उसने सीढ़ियों की ओर इशारा करते हुए कहा‘ऊपर चले जाइए। प्रथम तल पर रिसेप्सनिस्ट है।’ ऊपर गया तो देखा अंदर का हिस्सा आकर्षक था। अंदर गेट पर एक युवती रिसेप्सनिस्ट मिली। अपना परिचय देते हुए उससे जानना चाहा कि मेरे ठहरने का कमरा कौन-सा है। उसने बताया कि मुझे

जिस कमरे में रहना है उसका नंबर 103 है' वह नीचे है और उसमें एक सज्जन पहले से हैं। उसने यह भी बताया कि वे दिल्ली के ही रहने वाले हैं और इसी कार्यक्रम में आए हैं। मैंने उनका नाम पूछा तो उसने कुछ विचित्र-सा नाम बताया। दिल्ली के लिखने-पढ़ने वाले अधिकांश लेखकों-कवियों से मैं परिचित हूं मगर उसने जो नाम बताया वह मेरे लिए अपरिचित लगा। बताया'कुमार सुखचैनजी के साथ आपको रहना है।' मुझे उज्जैन में तीन दिनों तक रहना था। दूसरे दिन मेरा कविता पाठ था और तीसरे दिन 'हिंदी कविता में नदी' विषय पर बोलना था। अपरिचित व्यक्ति के साथ रहना कैसा रहेगा, यह सोचते हुए कमरा नंबर 103 का कालबेल बजाया। जिस सज्जन ने गेट खोला वे डॉ. कुँवर बेचैन थे हालांकि कुँवरजी से भी मेरा कोई परिचय नहीं था मगर उन्हें मैं जानता जरूर था। मिलते ही उन्होंने गर्मजोशी से स्वागत किया। कहा'अच्छा हुआ आप आ गए। मैं अकेले बोर हो रहा था।'

'लेकिन इसमें तो कोई सुखचैनजी ठहरे हैं न?' मैंने कहा। वे हँसे'किसने बताया।'

'रिसेप्सनिस्ट ने।'

'पागल है। देखने में ही उजबक लगती है।' हम दोनों हँस पड़े।

'बैठिए पहले चाय पीते हैं।' कहकर इंटर-कॉम से कैंटीन में आर्डर दिया। अभी बैठा ही था कि तभी एक सज्जन आ गए। आते ही उन्होंने कहा'आप तिवारीजी हैं?'

'आप?' मैंने बैठने का आग्रह करते हुए कहा।

'मेरा नाम जय श्रीवास्तव है। यहीं एक कॉलेज में पढ़ाता हूं।'

तब मुझे ध्यान आया। उज्जैन आते समय हरिपाल त्यागीजी ने एक पत्रिका दी थी। कहा था एक सज्जन आपसे मिलेंगे। उन्हें यह दे दीजिएगा। श्रीवास्तवजी को पत्रिका दे दी। उसमें उनके नए कविता संग्रह की समीक्षा छपी थी। त्यागीजी ने ही लिखी थी। जय श्रीवास्तव सहज और मिलनसार लगे। उन्होंने यह भी बताया कि मुझसे मिलने के लिए ही उस दिन उन्होंने छुट्टी ले रखी है। कुँवरजी से भी मैंने उनका परिचय करवाया। जयजी ने यह भी बताया कि हिंदी के प्रख्यात कवि शमशेर बहादुर सिंह आखिरी दिनों में उनके यहां ठहरे थे। अब भोजन का वक्त हो गया था। हम लोगों ने साथ ही होटल की कैंटीन में भोजन किया। भोजन के बाद कुछ थकान महसूस हुई। जयजी के जाने के बाद मैं भी लेट गया और कुँवरजी भी।

करीब पांच बजे कुँवरजी उठे। उस दिन उनका कविता पाठ था। उनके साथ हम लोगों को भी जाना था। कुँवरजी ने कहा'एक बार फिर चाय हो जाए उसके बाद तैयार होते हैं।' थोड़ी देर में चाय आ गई। मैंने सुबह ही दिल्ली में स्नान कर लिया था। मुझे सिर्फ कपड़े बदलने थे। बेचैनजी स्नान करने चले गए। काफी देर बाद बाथरूम से निकले। ऐसा लगा मानो कई जन्मों का उन्होंने मैल छुड़ा लिया हो। एकदम फ्रेस लगे। उसके बाद बड़े करीने से क्रीच लगा कपड़ा पहना। इत्र लगाया और बैग से कंघी निकाली हालांकि सिर में बाल सिर्फ ढलान पर ही बचे थे तभी निकाली हुई कंघी कहीं खो गई। उन्हें लगा कि उसे ढूंढ़ने में समय लगेगा सो दूसरी कंघी निकाली।

'इसके अलावा और भी कंघी है क्या?' मैंने कहा तो वे हँसे। बोले'मंच पर परफारमेंस के साथ-साथ लुक भी अच्छा होना चाहिए इसीलिए कविता पाठ के लिए जाने से पहले मैं दाढ़ी बनाता

हूं और स्नान करता हूं।' उनके पास कई जोड़े कपड़े थे लगा कि वे कई महीनों की तैयारी करके घर से निकले हैं। बनने-संवरने में थोड़ा समय लगा। तब तक गाड़ी आ गई। अभिनय में तो बनते-संवरते कलाकारों को देखा है, लेकिन कवि भी मंच पर जाने से पूर्व ऐसा करते हैं यह मेरे लिए बिलकुल नया अनुभव था। बाबा नागार्जुन के साथ भी कविता पढ़ने और रहने का सुयोग मुझे मिला है, लेकिन वहां भी मुझे यह बोध नहीं हो पाया था। त्रिलोचनजी के सान्निध्य में भी इस बोध से वंचित रहा। कहते हैं, त्रिलोचनजी शुरू में जब बनारस में थे तब उनके पास एक ही पाजामा हुआ करता था। बारिश में एक बार कीचड़ लगने के डर से वे उस पाजामे को कंधे पर लिए जा रहे थे। कुर्ता घुटने तक था इसलिए कोई खतरा नहीं था। तभी किसी ने उनका कुर्ता उठा दिया और शिव हो, शिव हो कहते हुए विश्वनाथजी वाली गली में मुड़ गया। त्रिलोचनजी वही पाजामा पहनकर कवि सम्मेलनों में जाया करते थे। उसे वे जिस तरह संभालकर रखते थे, उस तरह रानी विक्टोरिया अपने मुकुट में लगा कोहिनूर हीरा भी नहीं रखती होंगी। रात में बेचैनजी ने एक कवि सम्मेलन का संस्मरण भी सुनाया था। संस्मरण कबीर के मगहर का था। वहां आयोजकों ने कुँवरजी को बुला तो लिया लेकिन मानदेय देने के समय सब गायब हो गए। बड़ी मुश्किल से वहां से वे लौट पाए थे।

गाड़ी में हम दोनों के अलावा अजय शर्मा, अनूप अशेष आदि लोग भी थे। हम सभी उस कार्यक्रम स्थल पर पहुंचे जहां दूसरे दिन मुझे भी काव्य पाठ करना था। मंच की भव्यता देखने लायक था। लोगों के बैठने की अच्छी व्यवस्था थी। काफी संख्या में लोग इकट्ठे थे। उस दिन मंच पर अशोक चक्रधर, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, अनूप अशेष, कुँवर बेचैन के अलावा वहां के कुछ स्थानीय कवि भी थे। देर तक कार्यक्रम चला। अधिकांश कवियों ने छंद में और नदियों पर ही कविताएं सुनाईं। उस आयोजन का मुख्य उद्देश्य नदियों के प्रति लोगों में जागृति पैदा करना था। यह चिंता जायज भी है। नदियों का पानी लगातार घटता जा रहा है। चीन की यलो रिवर, अफ्रीका की नील नदी और उत्तरी अमेरिका की कोलोराडा नदी साल के तीन महीनों के दौरान सागर में मिलने से पहले ही सूख जाती है। भारत की प्रमुख नदियों में भी पानी का घटता बहाव साफ देखा जा सकता है। नदियों को पानी से लबालब भरने वाले ग्लेशियर बढ़ते तापमान के कारण लगातार पिघलते जा रहे हैं इसीलिए भविष्य में यदि कभी सदानीरा नदियां सूखी पगडंडी की तरह दिखाई देने लगें तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। कवियों ने अपनी-अपनी कविताओं के माध्यम से नदियों के घटते प्रवाह, मानव जीवन का उससे संबंध और पर्यावरणीय समस्या को केंद्र में रखकर चिंता व्यक्त की।

शिप्रा नदी में हालांकि उस समय पानी था मगर वह पानी नहर से जोड़कर लाया गया था। अपने स्वाभाविक रूप में शिप्रा भी अब दुबली और क्षीणकाय हो गई है। पुराणों में जिस तरह इसका उल्लेख है असल में अब वह वैसी नहीं है। बाकी नदियों की तरह शिप्रा भी दुर्दिन की शिकार है। पुराणों में इसे मोक्षदायिनी नदी माना गया है। यह मध्य प्रदेश की धार्मिक और ऐतिहासिक नगरी उज्जैन से होकर गुजरती है। उज्जैन की शिप्रा नदी के तट पर हर 12 वर्ष बाद सिंहस्थ कुंभ का आयोजन किया जाता है। इसे विश्व का सबसे बड़ा मेला माना जाता है। किंवदंती के अनुसार शिप्रा नदी विष्णु के रक्त से उत्पन्न हुई है। कालिदास ने 'मेघदूत' में शिप्रा का उल्लेख अवंतिका राज्य की प्रधान नदी के रूप में किया है। स्कंद पुराण में भी इस नदी की महिमा का

बखान है। पुराण के अनुसार यह नदी अपने उद्गम स्थल से बहती हुई चंबल नदी से मिल जाती है। मान्यता है कि प्राचीन समय में इसके तेज बहाव के कारण ही इसका नाम शिप्रा पड़ा। इस नदी का उद्गम स्थल मध्य प्रदेश की महू छावनी से लगभग 17 किलोमीटर दूर जानापाव की पहाड़ियों से माना गया है। मान्यता है कि यहीं भगवान विष्णु का अवतार एवं भगवान परशुराम का जन्म हुआ था।

शिप्रा नदी की उत्पत्ति के बारे में एक पौराणिक कथा है कि बहुत समय पहले भगवान शिव ब्रह्म कपाल लेकर भगवान विष्णु से भिक्षा मांगने पहुंचे। तब भगवान विष्णु ने उन्हें अंगुली दिखाते हुए भिक्षा प्रदान की। इस अशिष्टता से भगवान भोलेनाथ नाराज हो गए और उन्होंने तुरंत अपने त्रिशूल से विष्णु की उस अंगुली पर प्रहार कर दिया। अंगुली से रक्त की धार बह निकली जो विष्णु लोक से धरती पर आ पहुंची। इस तरह यह रक्त की धारा ही शिप्रा नदी के रूप में परिणत हो गई। शिप्रा नदी के किनारे स्थित घाटों का भी पौराणिक महत्त्व है, जिनमें रामघाट मुख्य माना जाता है। कहते हैं भगवान राम के पिता दशरथ का श्राद्धकर्म और तर्पण इसी घाट पर किया गया था। इसके अलावा नरसिंह घाट, पिशाच-मोचन तीर्थ, गंधर्व तीर्थ भी प्रमुख घाट हैं। शिप्रा नदी के किनारे ही सांदीपनि आश्रम में श्रीकृष्ण, बलराम और उनके प्रिय मित्र सुदामा ने विद्या अध्ययन किया था। यह भी उल्लेख है कि राजा भर्तृहरि और गुरु गोरखनाथ ने भी इसी नदी के तट पर तपस्या कर सिद्धि प्राप्त की थी।

देर रात तक कवि सम्मेलन चला। रात्रि भोजन की व्यवस्था वहीं थी। वहां से फिर हम लोग होटल में आ गए। यहां आने के बाद गीत-कविता की बात फिर शुरू हो गई। कुँवरजी बेहद सहज और सुनने-सुनाने वाले व्यक्ति लगे। उन्होंने अपनी अनेक गजलें सुनाईं। उन्होंने अपनी एक कविता पुस्तक भी भेंट की जिसका नाम 'आंधियों में पेड़' है। उनकी गजलें एवं गीत कोमल भाव के लगे। उन्होंने अपना वह प्रिय गीत भी सुनाया जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं

'जितनी दूर नयन से सपना
जितनी दूर अधर से हँसना
बिछुए जितनी दूर कुँवारे पांव से
उतनी दूर पिया तुम मेरे गांव से।'

5 मई, 2016 को कुछ देर से नींद खुली। रात में देर तक कुँवरजी कविता सुनते-सुनाते इसलिए देर से नींद खुलना स्वाभाविक था। आज से लगातार दो दिन कार्यक्रम में मुझे भी शामिल होना था। मगर महाकाल को कुछ और ही मंजूर था। सुबह से ही बारिश शुरू हो गई और बारिश भी ऐसी-वैसी नहीं। जोर की आंधी के साथ बेहिसाब बारिश ने सारा खेल बिगाड़ दिया। उस आंधी में अनेक लोगों की जानें गईं और कवि सम्मेलन का भव्यमंच पूरी तरह ध्वस्त हो गया। उसे देखकर लगा ही नहीं कि यहां कोई मंच भी था। चारों ओर फैले बाबाओं के बड़े-बड़े कैंप इधर-उधर गिरे पड़े थे। उस प्राकृतिक आपदा का परिणाम यह हुआ कि प्रशासन की ओर से सारे कार्यक्रम स्थगित कर देने का आदेश जारी हो गया। बारिश लगातार हो रही थी तभी कुँवर बेचैन ने कहा

'बादल गरज रहे हैं बरसात हो रही है,
उज्जैन में हर तरफ यही बात हो रही है।'

कुँवरजी को आज भी कार्यक्रम में शामिल होना था। वे मेरे आने से एक दिन पूर्व आए थे। उन्हें 6 मई को प्रातः फ्लाइट से दिल्ली रवाना हो जाना था मगर मेरे कविता पाठ का तो अभी बिस्मिल्लाह भी नहीं हुआ था। ऐसे में हवाई जहाज से आने-जाने का खर्च लेने की बात थी। बेचैन जी पेमेंट ले चुके थे। उनकी कही मगहर कवि सम्मेलन वाली घटना मुझे बार-बार याद आने लगी इसीलिए मैंने पारिश्रमिक की चर्चा अजय शर्मा से की। अजयजी ही साहित्य अकादेमी की ओर से वहां गए थे। उन्होंने पहले तो कहा कि कार्यक्रम ही नहीं हुआ तो किस आधार पर पेमेंट होगा लेकिन मेरे समझाने पर वह मान गए। मैंने कहा'मैं तो दिल्ली से अकादेमी के बुलावे पर ही आया हूं। बारिश और तूफान के आने में मेरी या मेरी कविता की कोई भूमिका नहीं है। मैं इस मुगालते में कभी नहीं रहता कि कविता से मैं तूफान ला दूंगा। मैं अब भी कविता सुनाने को तैयार हूं। भाड़ में जाए प्रशासन का आदेश। आप श्रोता तो लाइए।' मेरी बात पर अजयजी खूब हँसे। पेमेंट हो गया। मगर मुझे अभी दो दिन और रहना था। मेरी मजबूरी यह थी कि कार्यक्रम के हिसाब से ही वापसी का हवाई जहाज का टिकट बना था। अब मैं पूरी तरह बेरोजगार था और उज्जैन घूमने के अलावा और कोई चारा भी नहीं था। उसी समय मुझसे मिलने जय श्रीवास्तवजी आए, तभी तय हुआ कि चंद्रकांत देवतालेजी के घर उनसे मिलने चलना है। वे लंबे समय से बीमार हैं। जयजी को मैंने कहा'आप दस बजे आ जाइए। आपके साथ ही चलेंगे।'

चंद्रकांत देवताले हिंदी के अच्छे कवि तो हैं हीं, मनुष्य भी बहुत अच्छे थे। बच्चों जैसी चंचलता। बड़ी मजेदार बातें किया करते थे। मुझे वे पहले से ही जानते थे और अकसर फोन पर उनसे बातें होती रहती थीं। साहित्य अकादेमी से मेरे संपादन में प्रकाशित पुस्तक, 'कविता में दिल्ली' के लिए उन्होंने बहुत उत्साहित होकर कविताएं दी थीं। कविता भेजने के बाद अनेक बार उनके फोन आए। तभी वाणी प्रकाशन से उनका एक कविता संग्रह भी आया था। नए संग्रह में भी दिल्ली पर एक कविता थी। उनका जोर था कि मैं इस नए संग्रह से कविता जरूर संचयन में शामिल करूं। यह उनका अपनापन था। कहीं कोई अहंकार नहीं। सरल-सहज मगर प्रतिबद्ध व्यक्ति थे। चेहरे पर कोई ओढ़ी हुई गंभीरता नहीं। उज्जैन जाकर उनसे न मिलता तो पछतावा ही रहता। तय समय के अनुसार जय श्रीवास्तव आ गए। उनके साथ थे डॉ. कुँवर बेचैन, अजय शर्मा और इन पंक्तियों लेखक। हम लोग जहां ठहरे थे उसके पास ही देवतालेजी का निवास था। उनके निवास परिसर के गेट पर जैसे ही, हम लोग पहुंचे वैसे ही अंदर से अनेक कुत्ते भूंकते हुए काटने को दौड़े। वे इतने आक्रामक थे कि लगा जैसे उन्हें कई जन्मों का दुश्मन मिल गया हो। उन्हें बहुत पुचकारा फिर भी वे मानने को तैयार नहीं थे। उन्हें मैं कैसे समझाता कि हर आने वाला व्यक्ति उठाईगीर नहीं होता। मैं कुत्ते पालने वालों के घर जाने से बचता हूं। उस समय मुझे विष्णुचंद शर्मा का कुत्ता भी याद आया था। उसका नाम शेरू था। जाते ही उसका नाम लेकर पुकारता तो वह पूंछ हिलाने लगता था। देवतालेजी से फोन पर अकसर मेरी बात होती थी लेकिन उन्होंने अपने कुत्तों का नाम कभी नहीं बताया। फिर विष्णुजी के पास तो सिर्फ एक था। यहां तो उन्होंने कुत्तों का बाजार लगा रखा था। वहां जाते ही लगा जैसे कवि का घर न होकर कुत्तों का घर हो। उसी शोर में मैंने देवतालेजी को फोन किया। मेरा नंबर उनके मोबाइल में दर्ज था। उधर से बोले'कहां हो भाई।' उन्होंने सोचा भी न होगा कि मैं भी कभी उज्जैन उनका पीछा करते-करते पहुंच सकता

हूं। मैंने कहा'आपके गेट पर कुत्तों से घिरा हूं।'

'अभी आया...।' कहकर उन्होंने मोबाइल रख दिया और तुरंत घर से निकले। उन्हें एक युवक सहारा देकर ला रहा था। उन्होंने वहीं से कुत्तों की भाषा में कुछ कहा। उनकी आवाज सुनते ही कुत्ते न केवल शांत हो गए, बल्कि जहां से आए थे वहीं चले गए।

देवतालेजी लंबे समय से बीमार थे। देखने से ही लगा कि बहुत कमजोर हो चुके हैं। सफेद कुर्ता और लूंगी पहने थे। लगा जैसे अभी-अभी उन्होंने स्नान किया हो। आते ही जिस गर्मजोशी से मिले वह देखकर लगा जैसे वे हम लोगों का इंतजार ही कर रहे थे। अब उन्होंने युवक का हाथ छोड़कर हम लोगों का हाथ पकड़ लिया और उस स्थल पर गए जहां अनेक कुर्सियां रखी थीं। उन्होंने युवक को शर्बत लाने को कहा। युवक अंदर चला गया। जब शर्बत आया तो देवतालेजी के लिए भी था। उन्होंने उस युवक की ओर इशारा करते हुए कहा'इसका गणित बहुत कमजोर है। डॉक्टर ने मुझे शर्बत लेने से मना किया है। फिर भी बार-बार आगंतुकों के साथ ये मुझे भी जोड़ लेता है। इसे लगता है कि मैं भी आगंतुकों की तरह चला जाऊंगा।' हम लोग अब बैठ गए और देवतालेजी के विनोदी बातचीत का लुत्फ उठाने लगे। बैठते ही उन्होंने कहा'आज सिंहस्थ स्नान किया हूं। बहुत दिनों से नहाने को सोच रहा था मगर उसका योग आज बना है।' 'लेकिन यह योग तो 12 वर्षों बाद आता है।' इस पर सामूहिक ठहाका लगा। उसके बाद बनावटी गंभीरता लिए बोले'देखिए मैं 10 बजे रात के बाद झूठ नहीं बोलता।'

'अभी तो दस बजने में बहुत समय है।' फिर सभी हँसे। देवतालेजी ने कहा'मेरी इच्छा अभिनेता बनने की थी, लेकिन मैं कवि हो गया।'

'अभिनय तो आप अब भी करते हैं।' किसी ने कहा। इस पर फिर देवतालेजी मुस्कुराए। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, सुनिए एक कविता

'राजा बोला रात है
रानी बोली रात है
मंत्री बोला रात है
सबने बोला रात है
सुबह-सुबह की बात है।'

यह कविता गोरख पांडेय की है। उसके बाद पिछली रात उज्जैन में हुई मूसलाधार बारिश और आंधी से नुकसान पर वे चिंतित भी हुए। उसमें छह लोग मरे थे और 40 से अधिक गंभीर रूप से घायल थे। हम लोग करीब डेढ़ घंटे तक उनके पास बैठे। गंभीर बीमारी के कारण उनको बैठने में असुविधा भी हुई होगी। फिर भी वे इतने उत्साहित थे कि लगा जैसे उन्हें कुछ हुआ ही न हो। हम लोग जब जाने को उठे तो उन्होंने कहा'आप लोगों के आने से मैं स्वस्थ हो गया हूं।' गेट तक वे छोड़ने आए। उनकी अस्वस्थता के कारण बार-बार मन में कुछ अशुभ विचार भी उठ रहे थे। वे जब गेट पर छोड़ने आए तो अहमद फराज की यह पंक्तिया याद आईं

'अबके हम बिछड़े तो शायद कभी ख्वाबों में मिलें
जिस तरह सूखे हुए फूल किताबों में मिलें।'

उज्जैन से लौटने के कुछ ही समय बाद आशंका सही साबित हुई मगर देवतालेजी सूखे हुए

फूलों में नहीं, बल्कि ताजे-टटके जीवन संघर्ष की अपनी कविताओं में मिलते रहेंगे।

6 मई 2016 को कुँवरजी सुबह ही चले गए। अब उस कमरे में मैं अकेला था। दिन में डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षितजी आए। उनके साथ उनकी पत्नी, बेटी और दामाद भी थे। जिस कमरे में उन्हें ठहराया गया था, वह अपेक्षाकृत छोटा था। वे जब मेरे कमरे में आए तो मैंने ही कहा कि बेहतर होगा कि हम लोग कमरे का अदला-बदली कर लें। मेरा तो छोटे से भी काम चल जाएगा। वे मेरे कमरे में आ गए और मैं उनके कमरे में चला गया। दीक्षितजी सज्जन और विद्वान व्यक्ति हैं। उसके बाद पूरे दिन हम लोग साथ रहे। उनके साथ ही कार से हम लोग महाकालेश्वर मंदिर गए। भीड़ होने के बावजूद हम लोगों को वीआईपी रास्ते से मंदिर में ले जाया गया। उस समय महाकाल की आरती हो रही थी। भीड़ इतनी थी कि लगा लोग महाकाल पर ही टूट पड़ेंगे। हम लोग दूर से ही महाकाल और भीड़ का दर्शन कर सकुशल मंदिर परिसर से बाहर आ गए। साथ में अनूप अशेष और अजय शर्मा भी थे। हम लोगों का नेतृत्व दीक्षितजी कर रहे थे। अनेक जगह उनके साथ गए। जहां भी गए वहां बेहद अपनापन मिला। शाम को हम लोग उस काली मंदिर भी गए जिसके साथ कालिदास के जिह्वा चढ़ाने की किंवदंती जुड़ी है। मंदिर के स्थापत्य को देखकर मुझे कोलकाता के दक्षिणेश्वर मंदिर की याद आई थी। मंदिर परिसर से बाहर निकला तो किसी ने कहा‘बहुत गर्मी है चलिए मधुशाला।’ उस सज्जन को मैं जानता नहीं था। वे दीक्षितजी के परिचित थे। हमलोग भी दीक्षितजी के पीछे-पीछे हो लिए। मधुशाला का बोर्ड देखकर ही एयरपोर्ट से उज्जैन आते समय जो दृश्य देखा था उसकी याद आई। रास्ते में अनेक जगह मधुशाला का बोर्ड देखकर ही ड्राइवर से मैंने आशंका व्यक्त की थी कि उज्जैन में मधुशाला (शराब) के प्रेमी बहुत हैं। दीक्षितजी के साथ जाते हुए तय किया कि जिसे पीना हो पिए, मैं नहीं लूंगा मगर अंदर गया तो दृश्य कुछ दूसरा ही था। लोग गन्ने का जूस पी रहे थे। मुझे अपने पर हँसी आई। यह भी सोचने लगा कि एयरपोर्ट से उज्जैन तक आते समय ड्राइवर ने भी इस बात का खुलासा नहीं किया कि ये वो वाली मधुशाला नहीं है जो मैं समझ रहा था। शायद सोच रहा होगा कि दिल्ली के लोग ऐसे ही होते हैं।

कालिदास ने भी कुछ ऐसी ही मूर्खता की होगी। आखिर वे भी तो बाहर से ही आए थे। लोगों की आदत है तिल का ताड़ बनाने की। कालिदास भी इसी तरह किसी विभ्रम के शिकार हुए होंगे। मगर उनके आलोचकों ने उन्हें महामूर्ख घोषित कर दिया और न जाने कैसे-कैसे किस्से गढ़ दिए। कहते हैं पत्नी से तिरस्कृत होने के कारण कालिदास और तुलसीदास महाकवि हो गए। किंवदंती है कि कालिदास को जब उस मंदिर में ज्ञान प्राप्त हुआ तो वे पत्नी के पास गए। घर का दरवाजा बंद था। उन्होंने बाहर से ही कहा

‘अपावृतं द्वारं भिक्षां देहि।’ अर्थात् द्वार खोलो भिक्षा दो। पत्नी ने अंदर से कहा‘अस्ति कश्चित वाग्विशेषः’ अर्थात् हां, वाणी में कुछ विशेषता है। कहते हैं कि इन्हीं तीन शब्दों पर कालिदास ने तीन महाकाव्य लिखे। रघुवंश, कुमार संभव और मेघदूत इसी घटना की परिणति है।

मगर क्या यह संभव है कि कालिदास सिर्फ इसलिए महाकवि हो गए कि पत्नी से उन्हें अनादर मिला था। अगर ऐसा होता तो दुनिया में अनेक ऐसे लोग हैं जिन्हें पत्नियों से जूते तक खाने पड़े मगर वे कुछ भी नहीं हो पाए। सच तो यह है कि आप बेशक बहुत बड़ी तोप हों मगर

अधिकांश पत्नियों की नजर में उनके पति गदहे ही होते हैं और कुछ घोड़े भी। दिनकर ने उर्वशी यूं ही नहीं लिखा है

'इंद्र का आयुध पुरुष जो झेल सकता
सिंह से बाँहें मिलाकर खेल सकता
फूल के आगे वही असहाय हो जाता
शक्ति के रहते हुए निरुपाय हो जाता
विद्ध से जाता सहज बंकिम नयन के बाण से
जीत लेती रूपसी नारी उसे मुस्कान से।'

मुझे लगता है कि कालिदास की मूर्खता से जुड़ी कथा का मुख्य प्रयोजन सिर्फ इतना है कि जब कालिदास जैसी महान प्रतिभा को भी पत्नी नहीं पहचान पाई तो दूसरों की बात ही क्या। असल में इसमें महिलाओं का भी दोष नहीं है। अधिकांश महिलाएं अपने पतियों को देह के धरातल पर ही देखना चाहती हैं। स्त्रियां ज्यादा भौतिकवादी होती हैं। यही कारण है कि साधु-सन्यासी पुरुष ज्यादा होते हैं स्त्रियां कम। एक सीमा के बाद पुरुष बार-बार देह के धरातल से परे जाना चाहता है। माना कि कालिदास की पत्नी बहुत विदुषी थीं मगर मेरी जानकारी में उनकी ऐसी कोई कृति नहीं है जो यह सिद्ध कर सके कि वह कालिदास से ज्यादा प्रतिभावान थीं। बहरहाल जब हम लोग उस ऐतिहासिक काली मंदिर से चले तो रास्ते में अनूप अशेष ने कालिदास की अनेक पंक्तियां सुनाईं। अनूपजी बनारस विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाते हैं। उनकी स्मृति बहुत अच्छी है। संस्कृत साहित्य का भी उन्होंने अच्छा अध्ययन किया है। उन्होंने कालिदास की प्रकृति प्रेम से जुड़ी अनेक पंक्तियां सुनाईं। खासकर अभिज्ञान शाकुंतलम् की उन पंक्तियों को सुनकर मैं रोमांचित हो गया जिसमें शकुंतला के पति गृह जाने का वर्णन है। कालिदास की ये अमर पंक्तियां हमें प्रकृति से जुड़ने का संदेश देती हैं। पंक्तियां हैं

'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु वा
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुंतला पतिगृहं सर्वैरनुग्यायताम॥'

अर्थात तुम लोगों (पौधों) को बिना जल पिलाए (बिना जल सिंचन किए) जो शकुंतला जल नहीं पीती थी, तुम्हारे प्रेम के कारण जो आभूषण प्रिय होने पर भी पल्लव नहीं तोड़ती थी, तुम्हारे प्रथम पुष्प निकलने के समय जिसका उत्सव होता था, वह शकुंतला अपने पति घर जा रही है, तुम सभी अनुमति दो।

कण्व ऋषि के आश्रम में रहने वाली शकुंतला जब अपने पति गृह जा रही है उस समय ऋषि होकर भी कंव ऋषि अपने को रोक नहीं पाए और वियोग से विह्वल हो गए। जब ऋषि होकर कन्या के विदा वेला में वे शोकाकुल हो गए तो अपनी बेटी की विदाई की बेला में सामान्य जन की क्या स्थिति होती होगी, इसका सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है।

इस तरह साहित्य-संस्कृति-इतिहास और मिथकों पर चर्चा करते हुए हम लोग मिठाई की एक दुकान पर रुके। दीक्षितजी ने बताया कि यह उज्जैन की सबसे चर्चित दुकान है। मिठाई मेरी

कमजोरी है मगर यह बात मैंने किसी को बताई नहीं। जब बिना बताए ही अभीष्ट की सिद्धि हो जाए तो बताने की जरूरत भी क्या है।

7 मई, 2016। आज सुबह सैर के बहाने अजय शर्मा के साथ शिप्रा तट के रामघाट चला गया। रास्ते में मांगने वाले और अपाहिजों के भी दर्शन हुए। वहां जाते हुए बनारस के घाट याद आए। इन धार्मिक स्थलों की बनावट लगभग एक-सी है। सुबह के वक्त स्नान करने वालों की भीड़ थी लेकिन हम लोगों ने नदी का सिर्फ दर्शन किया। पानी साफ जरूर था, लेकिन उसमें बहाव नहीं था। इससे लगा कि पानी कहीं से इसमें छोड़ा गया है। बहाव में पानी साफ होता रहता है। वापसी में कुछ दूर पैदल चलने के बाद थकान महसूस हुई। एक इक्कावाला मिल गया। उसके इक्के पर बैठकर कुछ दूरी तय की। उसके बाद टहलते हुए होटल पहुंचे। दिन में भोजन के बाद जय श्रीवास्तव के साथ घूमने जाना था। वे वहीं रहते हैं इसलिए उनसे बेहतर गाइड कोई और हो भी नहीं सकता था। जय श्रीवास्तव हैं भी बहुत आत्मीय व्यक्ति। उनकी आत्मीयता ने मुझे प्रभावित किया। वे एक कॉलेज में राजनीतिशास्त्र पढ़ाते हैं। वे भी घूमाने को उत्साहित थे। उस दिन भी उन्होंने छुट्टी ले रखी थी। हम लोग दिल्ली में रहते हुए इतना समय किसी को कहां दे पाते हैं। ऐसा नहीं कि उनके पास काम नहीं था मगर उन्होंने अपना समय निकाला। वे गाड़ी लेकर आए साथ में अजय जी भी थे। सबसे पहले हम लोग एक म्यूजियम में गए। वह म्यूजियम विक्रमकीर्ति मंदिर से सटा हुआ था। वहां प्राचीनकाल की बहुत-सी खंडित मूर्तियां देखने को मिलीं। खंडित अवस्था में भी वे मूर्तियां बोलती-सी लगीं। वे यह बता रही थीं कि कितने सधे हुए हाथों से उनको गढ़ा गया था। उन्हें देखकर दिनकर की ये पंक्तियां याद आईं‘हम मूर्ति इसलिए नहीं पूजते कि उसमें देवता बसता है, बल्कि इसलिए पूजते हैं कि उसने तराशे जाने का दर्द सहा है।’ वहां दस हजार से लेकर पांच लाख वर्षों के मानव एवं पशुओं के कंकाल भी देखे। वे कंकाल यह बता रहे थे कि काल किसी को नहीं छोड़ता। मगर काल के भाल पर केवल कवि-कलाकर ही अपनी निशानी छोड़ पाते हैं हालांकि उन प्राचीन धरोहरों की देख-रेख ठीक नहीं लगी। उनके रख-रखाव के प्रति प्रशासन की उदासीनता से दुख हुआ। उसके बाद तारामंडल एवं बेधशाला भी हम लोगों ने देखा।

उस दिन रात में डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षितजी के आत्मीय गोदौलियाजी के घर खाने का निमंत्रण था। उन्होंने उज्जैन का खास चीज खिलाया। उस भोजन में प्रेम की मात्रा ज्यादा थी इसलिए भोजन का स्वाद कई गुना बढ़ गया।

दूसरे दिन जल्दी उठना था क्योंकि उसी दिन इंदौर से मेरी प्लाइट 10 बजे थी। 8 मई 2016 को सुबह जल्दी ही उठ गया। स्नानादि के बाद नाश्ता कर ड्राइवर का इंतजार करने लगा। वह समय पर आ गया था। ड्राइवर बूढ़ा था। इंदौर जाते समय रास्ते में जगह-जगह साधुओं के बैनर और पोस्टर उखड़े हुए नजर आए शायद बारिश और आंधी के कारण ऐसा हुआ होगा। इंदौर एयरपोर्ट पर नियत समय से करीब एक घंटा पूर्व ही पहुंच गया। ड्राइवर ने जाते हुए कहा‘अभी कुछ लेखक और भी हैं उन्हें भी छोड़ना है।’ मुझे लगा वह कह रहा है जो आया है उसे जाना ही है। आते समय युवा ड्राइवर था, जाते समय बूढ़ा। थोड़ी देर बाद बादलों के देश से गुजरता हुआ फिर मैं इंदिरा गांधी एयरपोर्ट दिल्ली आ गया। ●

लंदन में केदारनाथ परिक्रमा

(संदर्भ : छठा विश्व हिंदी सम्मेलन, 1999)

रणजीत साहा

कविवर केदारनाथजी को बहुत निकट से पाने और जानने का अवसर मुझे 1999 म. लंदन म. आयोजित छठे विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान हुआ था, इसम. भारत सरकार के विदेश विभाग और इसके राजभाषा अनुभाग द्वारा साहित्य अकादेमी का प्रतिनिधित्व करने का मुझे अवसर मिला था। सम्मेलन म. आरंभ से ही कई अनिमितताएं देखी गईं। संख्या से अधिक लोगों के पहुंच जाने पर हीथ्रो हवाई अड्डे पर ही हम. देरी और परेशानी का सामना करना पड़ा। चूंकि मैं विदेश विभाग के अधिकारियों के साथ गया था, इसलिए हमारे लिए गाड़ी और रहने की अलग व्यवस्था की गई थी। स्कूल ऑव ऑरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज (एस.ओ.ए.एस.) यानी सोआस यूनिवर्सिटी ऑव लंदन के परिसर म. 14 से 18 सितंबर, 1999 तक तमाम आयोजन होने थे और वहीं के हॉस्टलों म. अधिकांश लोगों के खाने-ठहरने की व्यवस्था थी। केदारनाथजी, जो वहां विशेष अतिथि के तौर पर आमंत्रित थे, वे मुझे दूर खड़े दीखे। इधर हॉस्टलों म. कमरे म. आबंटन करने वालों के पास प्राथमिकता संबंधी कोई सूची नहीं थी, वहां कई लेखक बंधु भी खड़े थे, जो पहले आ चुके थे और जिन्ह. कमरे मिल चुके थे। हम सब निरुपाय और चुपचाप इस बंदरबांट का तमाशा देख रहे थे। मैं केदारनाथजी के लिए अधिक चिंतित था। दो घंटे बाद भी कोई कमरा नहीं मिल रहा था। इस बीच दिन (भारतीय समय के अनुसार दिन के एक बजे) का खाना बटने लगा। कतार में खड़े होकर मैंने खाने का पैकेट केदारजी को दिया। फिर मैं अपने लिए पैकेट लेकर आया। बिना हाथ-मुँह धोए हमने खाना खाया। तभी घोषणा हुई कि हम. उद्‌घाटन स्थल, वेम्बले कांफ्र.स स.टर जाना है। सामान वगैरह एक कोने म. रखकर, हम वहां पहुंचे। केदारजी भारी तनाव म. थे, आखिरकार कर भी क्या सकते थे? वहां क्या कुछ हुआ अटल बिहारी वाजपेयीजी और ब्रिटेन के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेअर के टेलि-कांफ्रेसिंग द्वारा संदेश, जगजीत सिंह का गायन, शोभना नारायण का नृत्य, कबीरवाणी और बंदे मातरम् इन सबका कोई प्रभाव हम पर नहीं पड़ा। दिन-रात्रि के जागरण और सफर की थकान और आते ही मुसीबतों का दौर हम पर इस कदर हावी था कि कोई राह नहीं निकल रही थी।

कोई तीन घंटे तक चले कार्यक्रम के बाद जब हम एस.ओ.ए.एस. लौट रहे थे तो केदारजी और भी उद्विग्न दीखे। थोड़ी देर बाद मेरा नाम पुकारा गया और कमरे की चाबी लेने को कहा गया लेकिन वहां के प्रभारी डॉ. धर्मपाल मैनी से मैंने अतिरिक्त दबाव बनाने के लिए कहा कि जब तक

केदारजी को कमरा नहीं मिल जाता मैं कहीं नहीं जाऊंगा। मैं विदेश मंत्रालय के उस अधिकारी की भी तलाश करता रहा, जो कहीं दीख नहीं रहे थे। थोड़ी देर पहले मुझे हिमांशु जोशी और हरीश नारंग भी दिखे, लेकिन वे पहले ही आकर अपने-अपने कमरे म. जम गए थे। वहां मुझे शिवानीजी भी दिखीं, जो अपने सामान (एक भारी सूटकेस) के साथ खड़ी थीं और चाहती थीं कि उन्ह. मिले कमरे तक कोई छोड़ आए। वहां ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। खैर, मैं ही उन्ह. उनके कमरे तक छोड़ आया। इसी दरम्यान मुझे मिला कमरा किसी और को सौंप दिया गया। मैंने जब इस संबंध में जरा ऊंचे स्वर म. मेज पर बैठी एक महिला से चाबी वापस करने कहा तो उसने कहा- 'आप तो मुझे ऐसे डांट रहे हैं, जैसे कि मैं आपकी बीवी हूं।' उसके जवाब से वहां का तनाव भरा माहौल तो थोड़ा शिथिल हुआ लेकिन आठ घंटे बाद भी हम. कमरा नहीं मिला। तभी विदेश मंत्रालय के अधिकारी (कोई यादव) हम. मिल गए और उन्होंने मुझसे कहा, 'आपकी व्यवस्था पास ही एक होटल म. हुई है, आइए गाड़ी खड़ी है।' मैंने कहा, 'मेरे साथ केदारजी भी रह.गे' तो वे सहर्ष राजी हो गए।

अंततः हम छह-सात लोगों के ठहरने का इंतजाम रसेल स्ट्रीट स्थित इंपीरियल होटल म. हो गया हालांकि वहां भी विलंब का सामना करना पड़ा। इस बीच रिसेप्शन के टॉयलेट म. ही केदारजी और मैं शौच कार्य आदि से निवृत्त हुए क्योंकि हमारे खाने की व्यवस्था होटल की पहली मंजिल वाली रेस्ट्रां म. थी और रात के नौ-बजे तक ही वहां खाना मिलने वाला था। मितभोजी केदारजी को विदेशी भोजन अरुचिकर लगता था। खैर, चावल और फिशकरी के साथ पुडिंग पेट म. डालकर हम बारहव. तल के 112व. नंबर कमरे म. आ गए। वहां के दरवाजों पर 'इलेक्ट्रॉनिक की' लगी थी, जिससे हम अपरिचित थे। दो-तीन बार के अभ्यास के बाद दरवाजा खुला। तभी नीचे रिसेप्शन से फोन आया कि हम. अपना पासपोर्ट नं. और परिचय-पत्र जमा करना है और साथ ही हस्ताक्षर भी। केदारजी झुंझलाहट म. कुछ बोल नहीं पा रहे थे। हम दोनों फिर लिफ्ट से रिसेप्शन पर आए तो रिसेप्शनिस्ट महोदय गायब थे। खैर, थोड़ी देर बाद सारी औपचारिकता पूरी हुई। केदारजी को लिफ्ट तक छोड़कर मैं रेस्तरां से पानी की बोतल लाने चला गया, जो हम. फ्री म. दिया जाना था। थोड़ी देर बाद, जब मैं बारहवीं मंजिल पर आया तो केदारजी कमरे के सामने घुटने पकड़कर बैठे थे और बड़े कातर भाव से कह रहे थे- 'साहा, मुझे यहां नहीं रहना, मुझे भारत लौटना है।' दरअसल कई बार कोशिश के बावजूद उनसे दरवाजा नहीं खुला था और दिन भर की भागदौड़ और परेशानी से वे एकदम तंग आ गए थे। यही हालत मेरी भी थी लेकिन एक तो लंदन और फिर इतने बड़े आयोजन का आकर्षण मुझे बांधे हुआ था। बावजूद दुर्व्यवस्था और आपाधापी के चौदह-सितंबर की यह बोझिल रात बिछावन पर पड़ते ही पंद्रह-सितंबर की सुबह म. तब्दील हो गई।

हम. पहले से बताया गया था कि सोआस म. विभिन्न सत्रों म. आयोजित होने वाली विभिन्न विचार गोष्ठियां- रसखान, सूर, मीरा, तुलसी और कबीर कक्षों म. होने वाली हैं। इस आयोजन के पहले आमंत्रित सदस्यों को अपना पंजीकरण भी कराना था। सोआस पहुंचने पर हमने देखा कि परिसर म. सदस्यों, आमंत्रितों, अतिथियों और अधिकारियों की भीड़ लगी है। चूंकि अधिकांश लोग कबीर कक्ष (सभागार) की ओर जा रहे थे तो हम भी वहां पहुंच गए, इस बात की चिंता किए बिना कि पंजीयन वगैरह होता रहेगा। कार्यक्रम संबंधी सूचना और विवरण पत्रिका का कहीं अता-पता नहीं था। बाद म. यह सब हाथ लगा। कबीर कक्ष म. स्टूअर्ट मैग्रेगर की अध्यक्षता म. अज्ञेय स्मृति

व्याख्यान था, जिसम. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी और विद्यानिवास मिश्र प्रमुख प्रवक्ता थे। हम सबके श्रद्धेय अज्ञेयजी के बारे म. सुनना तो प्रिय था ही बगल म. बैठे केदारजी भी उनके बारे म. व्यक्तिगत जानकारियां देते रहे। यह सत्र समय से अधिक खिंच गया तो भी आस-पास के अन्य कक्षों म. चल रही समानांतर विचार गोष्ठियों म. कमोबेश श्रोताओं की उपस्थिति बनी हुई थी।

भोजन के लिए हुए अंतराल के दौरान फिर वैसी ही चिल-पों मची, जैसी कल मची थी। लोगों की संख्या इतनी अधिक होगी, इसका अनुमान आयोजकों को संभवतः नहीं था। 'क्यू' लगाए विद्वानों और लेखकों (नामोल्लेख आवश्यक नहीं) के धैर्य की प्रतीक्षा ली जा रही थी। अंततः हमारे हाथ खाने का पैकेट लगा। अगला सत्र नागार्जुनजी की स्मृति को समर्पित था, जिसकी अध्यक्षता विष्णुकांत शास्त्री करने वाले थे और प्रमुख प्रवक्ता नामवर सिंह थे। कुछ नामचीन विद्वान तो सीधे सभागार म. ही मिले- स्पष्ट है, हमारी तरह वे अलग-अलग स्थानों पर ठहराए गए थे। नामवरजी ने बनारस, जे. एन.यू. और दिल्ली म. नागार्जुनजी के साथ बिताए गए प्रसंगों के साथ उनकी जनोन्मुखी काव्य चेतना पर अपनी चिर-परिचित शैली म. प्रकाश डाला। आलोचकों द्वारा उनकी अनदेखी किए जाने पर क्षोभ भी जताया। साथ ही इस बात के लिए प्रसन्नता भी जताई कि भारत से सात समुंदर पार, लंदन की सुप्रतिष्ठित संस्था म. उन्ह. आज याद किया जा रहा है।

संगोष्ठी समाप्त होने के बाद, जैसा कि पहले से तय था, हम. नेअसडेन, ब्र.टफील्ड रोड स्थित श्री नारायण मंदिर जाना था, क्योंकि वहीं भोजन की व्यवस्था थी। हम सब बस पर सवार हो वहां पहुंचे। वहां ऐसे कई विदेशी विद्वानों से भी मिलने का अवसर मिला, जो हिंदी म. अध्ययन- अध्यापन कर रहे थे। उनम. से कई भारत भी आ चुके थे और जे.एन.यू., साहित्य अकादेमी और विभिन्न शिक्षा संस्थानों से परिचित थे। केदारजी से मिलकर वे प्रसन्नता व्यक्त करते रहे। मंदिर की परिक्रमा और वहां के सभागार म. प्रमुखाचार्य के संबोधन के बाद 'प्रसाद' वितरण आरंभ हुआ। यह भोजन का लघु संस्करण था- थर्मोकोल प्लेट म. थोड़ा-सा चावल, कढ़ी, दो पूरी, सब्जी, हलवाबस। यह 'प्रसाद' के नाम पर जयशंकर प्रसाद के लघु काव्य 'आँसू' का बृहद संस्करण था। मुझे लगा, दोबारा भी कुछ ले पाऊंगा, लेकिन नहीं। शायद रात के आठ बजे मंदिर का द्वार बंद होना था। हम सब जब तक बाहर निकल. तब तक बारिश शुरू हो गई। हमें मंदिर छोड़कर बस भी चली गई थी। हमें लगा, बारिश को ध्यान म. रखकर मंदिर का द्वार खोल दिया जाएगा और अतिथेय हम. अंदर आने द.गे लेकिन देवता और पुरोहित दोनों नाराज थे। अचानक बारिश के साथ तेज आंधी आ गई। हम मंदिर की बाहरी दीवार से लगे मेहराबों और छज्जों की ओट किए खड़े थे और स्थानीय आयोजकों को कोस रहे थे। ठंड अचानक बहुत बढ़ गई और एकाध सिक्यूरिटी अधिकारी अपनी 'वॉकी-टॉकी' पर कार या टैक्सी की व्यवस्था करने म. जुटे थे। गनीमत है, केदारजी बंडी धारे हुए थे और मैं कोट पहने हुए था, तभी मेरी दृष्टि एक शेड की आड़ म. खड़ी कबीर वाङ्मय की अन्यतम विदुषी प्रो. लिंडा हेस पर पड़ी, जो फ्रॉक पहने थी और ठंड से कांप रही थी। मैंने उनके पास जाकर अपना कोट उतारा और उन्ह. पहनाया। उन्होंने कृतज्ञतावश पूछा, 'आर यू ओ.के.', मैंने मजाक म. उत्तर दिया, 'इन यू. के भीजै दास कबीर।'(बाद म. प्रो. लिंडा हेस से मेरी भ.ट दिल्ली और बनारस म. भी हुई तो वे मुझे 'भीजै दास कबीर' कहकर ही बुलाती थीं) वैसे उस रात हम सब भीगे हुए तो थे ही, सहमे हुए भी थे।

कोई चालीस मिनट बाद वहां कारों म. एक-एक कर हम अतिथियों और प्रतिभागियों को ठूंस-ठूंस अलग-अलग निर्धारित जगहों पर पहुंचाया गया। होटल पहुंचते-पहुंचते साढ़े दस तो बज ही गए थे। इच्छा हुई रेस्तरां से कुछ मंगाऊं लेकिन वह भी बंद मिला। केदारजी थोड़े उद्विग्न दिखे तो मैंने संकोचवश पूछा, 'सर, थोड़ी-सी ल.गे? मेरे पास ह्विस्की है?' वे मानों उछल पडे- 'अरे भाई, तो देर किस बात की आज तो इसकी सख्त जरूरत है' और उन्होंने आयोजकों को दो-तीन ठेठ देशज गालियां दीं। मेरे पास दालमोठ का पैकेट भी था, जो मैं दिल्ली से साथ ले आया था। उस रात केदारजी ने मेरा उनके सामने शराब न पीने का संकोच भी भंग किया, 'अरे भाई, यह भी देवताओं का 'प्रसाद' ही है, तंत्र शास्त्र म. इसे कहते हैं 'कारणवारि' लो शुरू करो।'

भारतीय घड़ी के अनुसार लंदन के समय को आगे-पीछे से पकड़ने से अच्छा था, अपने आपको छोड़ देना। भारत से साढ़े पांच घंटे पीछे चलने वाले समय के अनुसार केदारजी रात के बारह-बजे (शाम के साढ़े पांच-बजे) होटल लौटे और काफी खुश थे। वजह साफ थी कि उन्ह. उपयुक्त सामग्री यथासमय मिल गई थी और अब उनसे कुछ कहा भी नहीं जा रहा था। पीना समाप्त कर बिछावन पर पड़ गए। कल सुबह उन्ह. सम्मेलन म. व्याख्यान भी देना था। सुबह वे देर से उठे और व्यवस्थित होकर मैं भी रेस्तरां म. नाश्ता कर उनके साथ सम्मेलन स्थल, जो होटल से अधिक दूर नहीं था, टहलते हुए सोआस (एगस.ओ.ए.एस.) पहुंचा। जाहिर है, उन्हें वहां जानने और सराहने वालों की संख्या भी कुछ कम नहीं थी- उनम. श्री श्रीलाल शुक्ल, विद्यानिवास मिश्र, विष्णुकांत शास्त्री, इंद्रनाथ चौधुरी (तब नेहरू स.टर, लंदन के निदेशक) के साथ उनके कई पूर्वपरिचित और प्रशंसक भी उपस्थित थे। अधिकांश ऐसे थे, जो संबंधित साहित्यिक आयोजनों और गोष्ठियों म. भाग लेने से अधिक वहां के सैर-सपाटे का आनंद लेने आए थे। सोआस के सभागार कबीर कक्ष और अन्य व्याख्यान कक्षों (तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, रसखान के नाम) म. बहुविध विषयों पर चर्चा आयोजित की गई थी। जहां कुछ बड़े-बड़े नाम थे, वहां ठीक-ठाक उपस्थिति हो जाती, बाकी कुछ छुटभैये पहले से ही आस-पास खड़े लोगों को अपने पर्चे की दुहाई देकर बुलाते रहते। उन्ह. टाल-टूलकर मैं केदारजी को साथ लेकर कबीर कक्ष मुख्य सभागार पहुंचा। वहां इंद्रनाथ चौधुरी की अध्यक्षता म. पंत स्मृति व्याख्यान के अंतर्गत 'हिंदी का विस्तार-लोक साहित्य आधार' के प्रमुख प्रवक्ता केदारजी थे। अपने लेखन म. लोक की अनिवार्य भूमिका और उसकी रचनात्मक व्याप्ति को रेखांकित करते हुए केदारजी ने पंत के अलावा, अपनी स्मृति से दूसरे कवियों की कृतियों से कुछ उद्धरण प्रस्तुत किए। सभागार म. फोटो खींचने की सख्त मनाही थी क्योंकि कैमरे के फ्लैश होते ही वहां लगा स.सर हरकत म. आ जाता और वहां आग लगने का खतरा हो सकता था। पहले भी इस ओर ध्यान दिलाया गया था। अब मंच पर केदारजी के साथ इंद्रनाथ चौधुरी, दूसरे प्रवक्ता श्याममनोहर पांडे और अन्य विद्वान उपस्थित हों तो श्रोताओं की दूसरी पंक्ति म. बैठा मैं अपने कैमरे से चित्र न खींचू, ऐसा कैसे हो सकता था? और मैंने दो चित्र खींचे और किसी की नजर न पड़े इसलिए कैमरा फर्श पर रख दिया। तभी घंटी टनटनाई और सिक्यूरिटी अफसर भी आ धमका। उसने चारों तरफ देखा और माइक पर फोटो न खींचने की हिदायत देकर चला गया। केदारजी और चौधुरीजी ने मुझे देखा ही होगा पर उन्होंने इसकी अनदेखी कर दी। आखिर वे भी अपनी तस्वीर तो खिंचवाना चाहते ही होंगे।

इस विचार सत्र के बाद, संभवतः प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी के व्यक्तिगत आमंत्रण पर नेहरू स.टर म. कुछ लेखक सम्मिलित होने वाले थे। इधर डॉ. हरीश नारंग ने अपने दो मित्रों के साथ मुझे भी लंदन की सैर कराने का प्रस्ताव दिया तो मैं उनके साथ सहर्ष शामिल हो गया लेकिन चूंकि होटल के कमरे की चाबी मेरे पास रह गई थी, इसलिए नारंग के मित्र की कार से मैं सबसे पहले नेहरू स.टर पहुंचा। वहां एक आधी-अधूरी पुस्तक प्रदर्शनी भी लगाई गई थी, क्योंकि सीढ़ियों के इर्द-गिर्द बोरों और पेटियों म. हजारों पुस्तक. पड़ी हुई थी। हमने साहित्य अकादेमी से भी चुनी हुई पुस्तक. प्रदर्शनी म. भिजवाई थीं, पता नहीं, वे कहां लगी थीं। खैर, मैंने नीचे से घंटी बजाई तो स्वयं प्रो. चौधुरी सीढ़ियों से नीचे उतरे और केदारजी के लिए चाबी ले गए। उनका रवैया मुझे बेहद ठंडा लगा, शायद उन्ह. अपने मित्रों की महफिल से उठकर आना पड़ा था।

मैं डॉ. नारंग के मित्रों के साथ लंदन की प्रमुख सड़कों, रोशनी से जगमगाते बाजारों और प्रमुख मनोरंजन केंद्रों को कार से निहारता हुआ आश्चर्यचकित था- लंदन के ऐश्वर्य, वैभव और शानो-शौकत पर। सबसे रोचक प्रसंग तो मेरे लिए यह था कि ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट पर घूमते हुए कुछ खरीदने के लिए जब हम एक दुकान म. घुसे तो वहां प्रसाधन वाले शो-केस में 'अनन्या' ब्रांड की कुछ चीजें. बिक रहीं थीं। अनन्या मेरी बेटी का नाम है, जो उस समय पंद्रह-साल की थी। दुकानदार का सहयोगी हिंदी जानता था और उसने उस ब्रांड की छह-सात सामग्री (साबुन, शैंपू, बॉडी लोशन, क्रीम वगैरह) का एक 'गिफ्ट हैंपर' बना दिया। वहीं मैंने पहली बार डेबिट कार्ड से रकम चुकाई और यह कोई चौदह सौ रुपए की थी।

इस रोचक और उत्तेजक सैर का अंत साउथ हाल स्थित एक भारतीय रेस्तरां म. पंजाबी डिशों के साथ हुआ। तंदूरी, शाही पनीर, छोले, कुल्फी और लौटते हुए एक और ढाबे म. रुककर गरमागरम जलेबी का आनंद। इससे शानदार और रात और बात क्या हो सकती थी? साउथ हाल का हमने बड़ा नाम सुना था लेकिन वह तो भारतीय दुकानों, पकवानों और सामानों से पटा हुआ था। सिख सरदार भी बड़ी संख्या में वहां नजर आए और लंबा-चौड़ा गुरुद्वारा भी।

पता नहीं, रात के कितने बजे होंगे, शायद दो मुझे होटल तक कार ने छोड़ दिया। मैं बारहवीं मंजिल स्थित अपने कमरे म. पहुंचा और हल्के से दरवाजे पर हाथ रखा तो वह अंदर से खुल गया। केदारजी अपनी बेड पर पूरा लंदन बेचकर सोए थे। मैंने धीरे से बाथरूम का दरवाजा खोला और रोशनी जलाई तो देखा कमरे के एक कोने म. रखी तीन प्लेटों म. कुछ चम्मचों और तीन गिलासों के साथ हड्डी का अंबार लगा था, तो सारा तमाशा समझ म. आ गया लेकिन सुबह जब मेरी नींद खुली तो केदारजी बड़े खुश नजर आ रहे थे और कुछ पूछने के पहले बताया कि यहां कल रात श्रीलाल शुक्ल, नामवर सिंह और उनके एक मित्र आए थे। आपके सूटकेस म. पड़ी बोतल ने मेरी इज्जत रख ली। वैसे आपकी कमी बड़ी खली।

दरअसल नामवरजी और केदारजी के साथ यात्रा करने के पहले 'संध्यार्चन' का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। यह सुखद संयोग ही था कि यहां लंदन म. केदारजी का अंतरंग साथ मुझे प्राप्त हुआ। यहां यह बताना जरूरी है कि उम्र म. उनसे काफी छोटा होता हुआ भी केदारजी (और नामवरजी भी) मुझे 'साहा साहब' कहकर ही कोई बात कहते या आदेश देते रहे हैं। ऐसा अकादेमी का एक अधिकारी के नाते ही हुआ होगा। नाश्ता करने के बाद हम दोनों सितंबर की गुनगुनी सर्दी म. टहलते

हुए एक ओर 'किंग्स् क्रॉस' के व्यस्त चौराहे पर स्थित भव्य चर्च और दूसरी ओर ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट तक निकल गए। हमारा इरादा ब्रिटिश म्यूजियम तक जाने का था लेकिन केदारजी ने इस बीच एक बार और टायलेट जाने की इच्छा व्यक्त की तो मैं भी उनके साथ होटल लौटने लगा लेकिन उन्होंने कहा, 'आप म्यूजियम जाइए। हम लंच के समय सोआस म. ही मिलते हैं।' मैंने उनसे विदा ली और कोई ढाई-तीन घंटे ब्रिटिश म्यूजियम का परिदर्शन करता रहा, साथ ही घड़ी भी देखता रहा। ऐसा लगा, यहां तो आठ-दस दिनों तक रोज आना चाहिए तभी सब कुछ देखना संभव हो पाएगा। दोपहर मैं जब सोआस पहुंचा तो केदारजी वहां नहीं मिले। उनके दो-तीन मित्र उन्ह. होटल से, कुछ अन्य मित्रों और लेखकों से मिलाने ले गए। मैं सोआस म. ही, भोजन के बाद दो गोष्ठियों म. समय बिताकर नारंग साहब के मित्रों के साथ एक बार फिर ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट और न्यू ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट पर काफी देर चलते हुए, पिकाडिली सर्कस, ट्रेफलगर स्कॉयर, मोनुम.ट (जॉर्ज, चतुर्थ), ब्रिटिश पार्लियाम.ट और बकिंघम पैलेस तक की सैर करता रहा। थोड़ा-बहुत रुकते हुए और पब म. बियर पीते हुए, ये सात-घंटे कैसे बीत गए, पता ही नहीं चला। अपने आप म. यह एक अद्भुत अनुभव था- ऐश्वर्य और वैभव की इस सदाबहार गाथा म. अपनी उपस्थिति बनाए रखने वाला एकमात्र अनोखा महानगर लंदन, इतिहास की आहों और आहटों को कुचलकर आगे भागते समय को अपनी कुटिल मुस्कानों और कठोर बंधनों म. जकड़कर रखने वाला एक सम्मोहक और उत्तेजक परी-देश। चूंकि पहले से कुछ तय नहीं था और होटल के रिसेप्शन म. चाबी छोड़ आया था, इसलिए मैं निश्चिंत था कि केदारजी जब भी लौट.गे उन्ह. कोई परेशानी नहीं होगी। मैं हरीश नारंग के साथ पहले सोआस ही पहुंचा और कार्यालय से आवश्यक सूचना सामग्री पत्र-पत्रिकाओं से भरी भारी-भरकम बैग लेकर होटल लौटा। कमरे म. जाने के पहले मैं पहले रेस्तरां म. ही गया। वाशरूम म. हाथ-मुँह धोकर खाने की मेज पर बैठा तो थोड़ी देर म. मेरे सामने एक सुदर्शन युवक खड़ा हो गया। उसने जब हिंदी म. पूछा 'आप की खाएगा' तो मैं समझ गया यह बंगाली है। दरअसल वह एक बांग्लादेशी था। मैंने जब उससे बांग्ला म. बात. शुरू कीं तो वह बहुत खुश हुआ। मैंने उसी पर खाने की सामग्री लाने का भार सौंप दिया। वह खुशी से जैसे पागल हो गया। थोड़ी देर बाद मेरी मेज पर स्पेशल फिशकरी, चावल, बंस, सलाद और आलू की भुजिया परोस दी गई। मैंने देर तक, यहां कि रेस्तरां के बंद होने तक वहां बैठकर खाना खाया। उस युवक को धन्यवाद देने के लिए मेरे पास शब्द नहीं थे। मैंने उससे इतना ही कहा- 'आबार देखा होबे'- दोबारा मुलाकात होगी। उसके चेहरे पर भी प्रसन्नता दिखी। केदारजी आने वाले होंगे- यही सोचकर मैं पानी के बोतल के साथ ऊपर गया। केदारजी अब तक नहीं आए थे। सोआस होस्टल और होटल म. ठहरे कुछ विद्वान कल यॉर्क जा रहे थे। मैं अपने कमरे म. आकर पत्र-पत्रिकाएं उलटता-पलटता रहा। थोड़ी देर बाद ही केदारजी आ गए। उन्होंने पूछा- 'आपने खाना खा लिया न!' मैंने सिर हिलाकर हामी भरी। केदारजी कपड़े बदलकर एक बार फिर देर तक बाथरूम (टायलेट) म. बैठे रहे। उनके आने तक मैं आँखों म. नींद लिए इंतजार करता रहा और बत्ती बुझाकर सो गया।

सत्रह सितंबर आज की सुबह की शुरुआत कुछ इतनी लचीली थी कि देर शाम तक खिंचती चली गई। दरअसल सम्मेलन म. आए कुछ लेखकों और कवियों को बी.बी.सी. ने अपने विभिन्न कार्यक्रमों म. भाग लेने के लिए आमंत्रित किया था और जो वैसे भी वहां पहुंच गए थे, उन्ह. भी

किसी-न-किसी कार्यक्रम म. शामिल कर लिया गया था। आयोजकों के साथ बी.बी.सी. ने अपने तयशुदा कार्यक्रम के अंतर्गत होटल से बी.बी.सी. के मुख्यालय, बुश हाउस तक जाने के लिए कार भिजवाने की बात थी। हमने रेस्ट्रां म. नाश्ता शुरू ही किया था कि केदारजी घड़ी देखने लगे। बांग्लादेशी युवक ने 'नमस्कार' के बाद कहा, 'फिश करी रेडी आछे चलबे!' मैंने खुश होकर कहा 'हां, ले आओ!' थोड़ी देर हुई तो केदारजी ने कहा, 'मैं जरा ऊपर से आता हूं' मैं समझ गया उनका पेट अपसेट है! मैंने इत्मिनान से मसालेदार करी म. पड़ी, बल्कि सोई मत्स्यकन्या को उसे मिटा देने की हद तक कदाचार किया और इसम. थोड़ी देर हो गई। सिर उठाया तो केदारजी खड़े थे, तनिक नाराज। बोले, 'अरे भाई, गाड़ी आ गई होगी।' 'सर चाय कॉफी?' बांग्लादेशी युवक ने पूछा। 'कल पिलाना' केदारजी ने छूटते ही कहा।

गाड़ी कोई पंद्रह मिनट बाद आई। बाहर बारिश शुरू हो गई थी। ड्राइवर के साथ कोई सज्जन अगली सीट पर बैठे थे। मैं केदारजी के साथ पिछली सीट पर बैठा। लंदन की चहल-पहल भरी सड़क., इमारत. और बारिश म. छतरी थामे और रेनकोट पहने तेजी से भागते लोगों को देख रहा था। बीस मिनट बाद गाड़ी की रफ्तार एकाएक कम हो गई बल्कि थम ही गई। आगे ट्रैफिक की वजह से रास्ता जाम था।

शुक्र है, इतनी देर बाद सामने बैठे सज्जन की जुबान खुली। उन्होंने कहा, 'सर, आप लोगों को देर हो रही होगी। पता नहीं, ट्रैफिक कब खुले। ऐसा है, बुश हाउस एकदम पास है। बाईं तरफ, कोई दो फर्लांग आपको चलकर जाना होगा। रिसेप्शन पर आपका इंतजार हो रहा होगा सॉरी सर!'

केदारजी घड़ी पर इस तरह आँख गड़ाए बैठे थे, मानों वह बंद हो गई हो। मैंने कार का दरवाजा खोला। केदारजी भी उतरे। पांच-मिनट में हम बुश हाउस म. थे। गेट पर हम. हाथ में छतरी लिए ओंकारनाथ श्रीवास्तव मिल गए, जिन्ह. मैं जानता था और जो केदारजी से कई बार मिल चुके थे। वे कई सालों से लंदन म. बसे हुए थे और हिंदी अध्यापन कर रहे थे लेकिन केदारजी की प्रतीक्षा म. श्रीलाल शुक्ल और उनकी मित्र मंडली एक हॉल म. मेज घेरकर बैठी थी। यही नहीं, वहां सबके सामने स्नैक्स की प्लेट. और ह्विस्की के ग्लास रखे थे। सिगरेट के धुएँ से हॉल अटा पड़ा था। लग रहा था, बादलों के कुछ नशीले टुकड़े आसमान से उतरकर हॉल म. दाखिल हो गए हों।

वहां अजीब-सा नशीला लेकिन खुशनुमा माहौल। सभी मस्त और मुदित थे। कुछ न्यूज-रिपोर्टर किसी-किसी लेखक को अलग से बुलाते, उनके फोटो खींचते और बातचीत करते। ज्यादातर सवाल-जवाब सम्मेलन को लेकर ही हो रहे थे। उधर बी.बी.सी. एक साथ कई कार्यक्रमों की रिकॉर्डिंग कर रहा था। किसी खास लेखक से बातचीत, किसी कवि का कविता-पाठ, किसी विशेष विषय पर विमर्श जिसम. मुझे भी शामिल कर लिया गया। विषय था, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति। इसके लिए मुझे तीस पौंड भी मिले। केदारजी का उनकी रचना-यात्रा पर अलग से साक्षात्कार लिया गया। तो भी चुपके से मैं भीगते-भागते पास ही, इंडिया ऑफिस बिल्डिंग की सैर करने चला गया। वहां भी तीन-चार लेखक मिल गए। उसका मुख्य हॉल प्रसिद्ध भारतीय राजनेताओं और महापुरुषों के तैलचित्रों और दुर्लभ दस्तावेजों से भरा था। इन तमाम गतिविधियों के साथ इधर मुख्य हाल म. एक उत्सवी माहौल था। बाहर वर्षा हो रही थी, अंदर ड्रिंक और स्नैक्स की कोई कमी नहीं थी-ज्यादातर चीज. नॉनवेज ही थे। केदारजी की रुचि पीने म. भी तो मेरी खाने म. क्योंकि आज सम्मेलन म. जाना

असंभव था और यहां बैठे उन तमाम लेखकों की मंचीय भागीदारी लगभग समाप्त हो चुकी थी। अगर थी भी तो यहां का जो खुला माहौल और मौसम था, वह अतुलनीय था। हम जिससे चाहे मिल सकते थे, यह शानदार और यादगार कार्यक्रम शाम सात बजे तक चलता रहा। सभी कमोबेश हिल-डुल कर थक चुके थे। एक दूसरे से 'फिर कहीं मिल.गे' कहकर हम विदा हुए। जब कार ने हम. होटल छोड़ा तो केदारजी ने घड़ी देखी और कहा, 'मुझे तो नींद आ रही है आप तो शायद खाना खाएंगे?' मैंने हामी भरी। वे रिसेप्शन से चाबी लेकर ऊपर चले गए।

मैं रेस्तरां पहुंचा और मेज पर बैठे-बैठे उस बांग्लादेशी युवक को ढूंढ़ता रहा, लेकिन वह नहीं दिखा। एक दूसरे अंग्रेज बैरे ने मिले-जुले मेनू के अनुसार खाना परोसा। मैंने उससे अंग्रेजी म. उस युवक के बारे म. पूछा तो उसने कंधा उचका कर इतना ही कहा- 'उसकी मां की हालत ठीक नहीं है। संभव है वह 'अपने कंट्री' जाने की तैयारी म. हो।' मैं थोड़ा निराश हुआ। कल सम्मेलन का समापन भी होना था। खैर, खाने के बाद मैं पानी की दो बोतल. लेकर ऊपर आया। जैसा कि तय था, कमरे का दरवाजा उढ़का हुआ था और केदारजी गाढ़ी नींद म. सोए थे। मैंने अपनी यात्रा डायरी म. पिछले दो दिनों के छिट-पुट नोट्स लिए ओर 'बिग बेन' के समयानुसार सोने की कोशिश म. जुट गया।

सुबह नींद खुली तो देखा केदारजी अपनी जेबी डायरी म. कुछ लिख रहे थे। कहने लगे, बच्चों के लिए कुछ सामान लेना है। इसी बीच उसी होटल के दूसरे विंग म. रहने वाले दो अधिकारी हमारे कमरे म. आए और रात की उड़ान से भारत लौटने की सूचना दी। रात्रि भोजन के बाद होटल से कार हीथ्रो हवाई अड्डे के लिए चलेगी और हम. ग्यारह बजे लंदन छोड़ देना होगा। सम्मेलन का अंतिम कार्यक्रम वेस्ट मिंस्टर थिएटर के प्रांगण म. आयोजित था। आयोजक उन सज्जनों के नाम बार-बार पुकार रहे थे, जिन्ह. प्रमाण-पत्र और प्रतीक चिह्न देकर सम्मानित किया जाना था। इनम. एक नाम डॉ. रामविलास शर्मा का भी था, जो लंदन आए ही नहीं थे। चूंकि उनके विकासपुरी स्थित घर के पास ही, मेरा आवास था और वे पहले ही लंदन आने के बारे म. अपनी असमर्थता जता चुके थे। मुझे हैरानी हुई कि आज इस आयोजन का छठा दिन है और आयोजकों को इतने बड़े विद्वान के न आने की खबर तक नहीं। आयोजन की विभिन्न गतिविधियों के विवरण और प्रस्तावादि के बाद कोई चालीस हिंदी सेवी विद्वानों को सम्मानित किया गया। मंच पर महेंद्र वर्मा, कृष्ण कुमार और अंतिम वक्ता के नाते इंद्रनाथ चौधुरी भी उपस्थित थे। सम्मान समारोह के अंत म. एक बार फिर रामविलास शर्मा जी का नाम पुकारा गया कि अगर वे इस बीच आ गए हों तो मंच आ जाएं। केदारजी भी सकते म. थे कि ऐसा भला कौन हिंदी वाला होगा जो रामविलासजी को नहीं जानता होगा। बाद म., जब मैंने रामविलासजी को इस हास्यास्पद घटना के बारे में बताया था तो तबीयत बिगड़ने के बावजूद वे हँसते रहे और कहा 'हिंदी की दुर्गति के कारण ऐसे सम्मान समारोह ही हैं, जिनसे मैं बचता रहा हूं।' समापन समारोह के बाद हम होटल लौटे। भोजन करने के बाद केदारजी के साथ मैं आसपास के बाजारों म. घूमता रहा। केदारजी कुछ कपड़े और खिलौने खरीदना चाहते थे लेकिन उनके दाम हमारे लिए काफी थे। मैं अपनी खरीदारी पहले ही कर चुका था। 'बच्चों के लिए खरीदे जाने वाले खिलौने दो दिन बाद ही पुराने हो जाते हैं और कपड़े दो महीने बाद छोटे।' हमारे भीतर बैठे कंजूस अभिभावक ने हम. तसल्ली दी कि 'बाजार से (गया) गुजरा हूं खरीदार नहीं हूं।'

लेकिन ग्रेट रसेल स्ट्रीट म. एक इलेक्ट्रॉनिक शॉप म. हजामत बनाने वाली मशीन और वायस रिकॉर्डर देखने के चक्कर म. पहले मैं और फिर केदारजी फंस ही गए। पहले की कीमत बीस पौंड थी और दूसरे की तीस पौंड। मुझे उन दिनों अकादेमी के उपसचिव के नाते विभिन्न स्थानों की यात्रा करना और विभिन्न संस्थाओं म. आयोजित कार्यक्रमों का संचालन-संयोजन भी करना पड़ता था। मेरे पास कुल साठ-पैंसठ पौंड अब भी पड़े थे। चूंकि दुकानदार कड़क ब्रिटिश था, इसलिए मोलभाव की कोई गुंजाइश नहीं थी। मेरी देखा-देखी केदारजी ने भी 'ओलंपस' माइक्रो रिकॉर्डर तीस पौंड (बी.बी. सी. से मिले) म. खरीद लिया। हालांकि बाद म. दोनों ने इसे इस्तेमाल दो-चार बार ही किया। मेरे पास आज भी वह पड़ा है और अब भी मरियल ढंग से काम करने की स्थिति म. है।

लंदन से भारत की हवाई-यात्रा बहुत सुखद रही। वापसी म. अनावश्यक अफरा-तफरी नहीं थी। आमिष-निरामिष भोजन के साथ पेय की समुचित व्यवस्था थी इसलिए जब भी हमारी नींद खुलती, हम 'तेजाब' की शरण म. चले जाते। हवाई यात्रा में बंटनेवाली तर्जनी आकार की अलग-अलग ब्रांड की 'तेजाब' की शीशियां भी हमने रख लीं। केदारजी की झिझक के बावजूद मैंने उनकी जेब म. दो-तीन शीशियां डाल दी थीं।

19 सितंबर की सुबह जब हम दिल्ली के पालम हवाई अड्डे पर उतरे तो सामने सूरज चमक बिखेर रहा था। टैक्सी पर सामान रखकर केदारजी जे.एन.यू. स्थित अपने आवास 'दक्षिणापुरम' रवाना हुए तो मेरा हाथ अपने हाथ म. लेकर कहा, 'साहा, आप नहीं होते तो यह यात्रा मेरे लिए एक दुःस्वप्न की तरह होती। जल्द ही मिलते हैं' और हाथ हिलाकर विदा हुए।

मैं रास्ते म. बार-बार उनकी बहुश्रुत पंक्तियां दोहराता रहा 'दुनिया को हाथ की तरह गर्म और सुंदर होना चाहिए।' ●

इंद्रधनुषी हॉर्नबिल...

यशस्विनी पांडेय

शब्दों की निश्चित या अनिश्चित सीमा म. बंधकर अधिकांशतः बड़ा मुश्किल हो जाता है किसी ऐसे अनुभव के बारे म. लिखना जिसका एक-एक पल आपने आकंठ जिया हो। ठीक यही स्थिति है मेरे लिए 'हॉर्नबिल' उत्सव के बारे म. लिखना पर लिखने के अलावा अपने अनुभव को दूसरों तक पहुंचाने का कोई और जरिया भी नहीं। विविध घटनाओं, बातों, झलकियों, अनुभवों से भरे हॉर्नबिल के बारे म. कुछ पन्नों म. भी बता पाऊं, ये चुनौती ही है मेरे लिए मन म. जब बहुत सारी बात.-याद., ताजे एहसास, नए अनुभव, विलक्षण संस्कृतियां और विराट रीति-रिवाजों का मेला उमड़-घुमड़ रहा हो तो उनमें से क्या लिखा जाए, क्या नहीं? इसका जवाब मेरे पास भी नहीं, क्योंकि हॉर्नबिल फेस्टिवल केवल पूर्वोत्तर राज्य का उत्सव ही नहीं बल्कि उनके जीने का ढंग और जीवन के इंद्रधनुषी रंग निहित ह इसम. हम सब अपने कल्चर, ट्रेडिशन और फेस्टिवल्स की वजह से जाने जाते हैं और यही वो चीज. हैं जो हमे अपनी जड़ों से जोड़कर रखते हैं। कल्चर और ट्रेडिशन की बात कर. तो दुनिया म. भारत जैसी कोई और दूसरी जगह शायद ही होगी। भारत के अनेक राज्य, अनेक भाषाओं और इनके लोगों को समझ पाना शायद एक जनम म. संभव नही आश्चर्य होता है जब हमारे देश म. अधिकांशतः बुद्धिजीवी से लेकर घूमने-फिरने के शौक रखने वाले लोग अपने देश म. ही रहकर यहां की विभिन्न संस्कृतियों, जीवन-शैली, स्थल, जनजाति, खान-पान, प्राकृतिक सौंदर्य इत्यादि को नहीं देख, जान, समझ पाते और अपने स्टेट्स सिंबल को दिखाने के लिए योरोप टूर और विदेशों के चक्कर लगाकर कहीं न कहीं अपने ही देश की खूबसूरती और विविधताओं के साथ अनदेखी और अन्याय करते हैं। अगर शोध किया जाए तो भारत के कुछ प्रतिशत लोग ही ऐसे होंगे जिन्होंने भारत के विलक्षण भू-भाग और प्राकृतिक सौंदर्य को देखा होगा। इन विलक्षण सौंदर्य से युक्त भारत के खूबसूरत हिस्से पूर्वोत्तर राज्यों की बात कर. जिन्ह. सात बहनों के नाम से भी जाना जाता है। ये सात राज्य भारत से चंद 25 व 30 मील चौड़ी जमीं से जुड़े हैं। भारत के सबसे विविध, मनमोहक और आश्चर्यजनक संस्कृति और परंपरा से रूबरू होना चाहते हैं तो आपको यहां जरूर ही आना चाहिए, जहां कल्चर और परंपरा की बात हो तो फेस्टिवल्स इन्ह. जिंदा रखते हैं। उत्तर पूर्व के ये सातों राज्य अपने आप म. अनूठे हैं और इन सबकी पहचान कहीं न कहीं से किसी फेस्टिवल और उत्सव से जुड़ती है।

इस बार हम इन पूर्वोत्तर राज्यों म. बात कर.गे 'नागालेंड' की जिसे 'लैंड ऑफ फेस्टिवल्स' भी

कहा जाता है। नागालैंड एक ऐसा प्रदेश है जिसम. 17 प्रमुख जनजातियां हैं। जनजातियों का मतलब ये नहीं कि ये आदिम युग म. जी रहे और आधुनिकता या नगरीकरण से इनका कोई वास्ता नहीं, समय के साथ-साथ इनके जीने के, रहने के, सोचने के तरीकों म. पर्याप्त बदलाव हुआ है और हो रहा है। ये लोग समय के साथ बदलते रहे हैं और अपनी संस्कृतियों, रीति-रिवाजों को जिंदा ही नहीं रखे हुए हैं बल्कि जी भी रहे हैं। नागालैंड म. हर महीने कोई न कोई उत्सव मनाया ही जाता है, जिसके कारण इसका नाम 'लैंड ऑफ फेस्टिवल' पड़ा। इन सभी उत्सवों का समागम है 'हार्नबिल' जिसे उत्सवों का उत्सव कहा जाता है। इस महोत्सव का नामकरण ग्रेट इंडियन हॉर्नबिल पक्षी के नाम पर हुआ है। इसे नागालैंड राज्य के स्थापना दिवस (1 दिसंबर, 1963) के उपलक्ष्य पर मनाया जाता है। पहली बार इसे 2000 म. आयोजित किया गया था, तब से यह दिसंबर के पहले सप्ताह म. हर साल आयोजित किया जाता है। ग्रेट इंडियन हॉर्नबिल से इसका यह नाम पड़ा है जिसकी सुंदरता, सार्थकता और भव्यता की नागा लोगों ने बहुत प्रशंसा की है। नागाओं के विभिन्न आदिवासी लोकगीत, नृत्यों और गीतों म. इस पक्षी के उल्लेख पाए जाते है।

हॉर्नबिल के दौरान ये ट्राइब्स कोहिमा से 12 और ऊंचाई की तरफ स्थित 'किशामा' नामक गांव म. एकत्र होते हैं जहां पर सैलानी इनकी संस्कृति, कला, खान-पान और पहनावे को करीब से देख, जान और महसूस करते हैं। शुरुआती दौर म. हॉर्नबिल 1 से 7 दिसंबर तक आयोजित किया जाता था पर इसकी बढ़ती लोकप्रियता और बहुआयामी आकर्षण के कारण पिछले कुछ सालों से इसे 1 से 10 दिसंबर तक आयोजित किया जाता है। 2017 म. इसका उद्घाटन भारत के महामहिम राष्ट्रपति ने स्वयं किया। इस आयोजन के दौरान सभी जनजातियां लोकनृत्य ,लोकनाट्य ,लोककलाएं प्रदर्शित करते हैं। इस अद्भुत कार्यक्रम के दौरान ये अपने जीवनशैली व गांव म. होने वाले छोटे बड़े आयोजन जैसे कि विवाहोत्सव, अच्छी पैदावार होने का सामूहिक भोज, गांव म. होने वाले छोटे-बड़े वाद विवाद को किस तरह हँसते-खेलते सुलझाते हैं का नाट्य रूपांतरण कर दर्शकों को रोचकपूर्ण ढंग से दिखाते हैं। ये सांस्कृतिक कार्यक्रम दिन के दो चरण म. होता है पहला सुबह 9 से 11 फिर 2 घंटे का मध्यांतर तत्पश्चात 1 से 3 इनके मध्यांतर म. किशामा हेरिटेज विलेज म. मौजूद हर ट्राइब के घर जिसे मोरुंग कहते हैं वहां जाकर इनके साथ इनकी संस्कृति का कुछ क्षणों के लिए हिस्सा बना जा सकता है। सैलानियों को इनकी स्थानीय प्रजातीय राइस बियर बहुत ही आकर्षित करती है जिन्ह. कि वे बांस के बने हुए ग्लास म. बांस के बने हुए स्ट्रा के साथ बेचते हैं। इसके अलावा हर जनजाति का अपना विशेष खानपान और उसको बनाने की विविध विधि होती है। अगर आप शाकाहारी हैं तो इन विविधता से भरे व्यंजनों को खाने से पहले जरूर सोच ल. क्योंकि अगर आप इनसे पूछ.गे कि वेज म. क्या है तो आपको जवाब मिलेगा चिकेन पर ऐसा नहीं है यहां शाकाहारी भोजन नहीं मिलता। मैंने यहां कुछ ऐसे शाकाहारी व्यंजनों का आनंद लिया, जिसे मैंने पहले इस स्वाद और पाक-विधि के साथ कभी नहीं खाया था। इनमे से कुछ के बारे म. बताए बिना जानकारी अधूरी ही रहेगी। कोनियाक ट्राइब द्वारा बनाई गई रेड राइस विथ येम यानी कि जिम्मीकंद की स्वादिष्ट सब्जी के साथ नागा लाल चावल, अकुनि यानी सोयाबीन की सब्जी, बहुत प्रकार के आचार, चटनी और सलाद जो आपको और कहीं नहीं मिल सकते। इसके अलावा यहां के सीधे-साधे लोग और उनके 'अतिथि देवो भव' के भाव को जरूर महसूस कर. स इनके मोरुंग म. जाकर इनके साथ आग स.क

कर बात. करना, लॉग ड्रम बजाना, इनके लोकनृत्य म. शामिल होना इससे बेहतर कोई तरीका नहीं है। किसी भी संस्कृति को जानने-पहचानने और जीने का इस पूरे उत्सव म. जो बात हर पल ध्यान खींचती रहती है, आश्चर्य के साथ मन मोहती है वो है उनका बहुरंगी आदिवासी पहनावा और उनके चेहरे पर सकारात्मक मुस्कान। उनके पारंपरिक वस्त्र जो हर क्षण आकर्षण का क.द्र रहते हैं जिसे वे खुद अपने हाथों से बनाते हैं इसम. रेशम, कपास बहुत प्रकार के जीवों के पंख, नाखून, दांत, हड्डियां, चमड़े आदि का इस्तेमाल होता है। इन सबको देखकर पशु संरक्षण समुदाय भी बुरा नहीं मान सकते क्योंकि ये प्रकृति म. मौजूद हर तत्व को इस्तेमाल करते आए हैं और ये बिना जरूरत के किसी भी जीव को हानि नहीं पहुंचाते। इनके पहनावे, आभूषण, नाट्य, गीत या हाव-भाव को दुनिया की किसी भी भाषा म. हूबहू बयां नहीं किया जा सकता। इसे सिर्फ प्रत्यक्ष ही देख सकने का सच्चा सुख है। यही कारण है कि इस सुख के लिए दूर-दूर से दर्शक दुर्गम रास्ते तय करके यहां तक आते हैं। यहां की टूटी-फूटी सड़कें और संकरे मार्ग तय करने के बाद किशामा के प्रांगण म. प्रवेश करते ही सारे संघर्षों की सार्थकता सिद्ध हो जाती है।

देश-विदेश से आए तमाम फोटोग्राफर जिन्ह. कभी आप स्थिर नहीं देख सकते उन्ह. तो जैसे फोटोग्राफी के लिए खजाना मिल जाता है। तमाम तरह की तकनीक के सहारे इस पल को कैद करने की कोशिश सुबह से शाम तक लगातार चलती रहती है। अगर आपके अंदर फोटोग्राफी का हुनर नहीं भी है तो मुझे लगता है वो हुनर विकसित करने का मौका और स्थान यही है। फोटोग्राफर के बैठने के लिए अलग से दरी मैदान के चारों ओर बिछाई जाती है। हर सांस्कृतिक कार्यक्रम के प्रारंभ होने के पहले और समाप्ति के बाद ट्राइब्स के साथ दर्शक से लेकर फोटोग्राफर साथ म. तरह-तरह की तसवीर लेते रहते हैं। कुछ फोटोग्राफर तो उन्ह. पोज भी बताते रहते हैं और हर कलाकार बड़े ही धैर्य और गर्मजोशी से हाव-भाव और उत्साह के साथ पोज देता है। हालांकि कुछ ऐसे लोग भी वहां मौजूद रहते हैं जो महिला कलाकारों की कुछ ज्यादा ही फोटो लेते हैं, जो निश्चित तौर पर देश राज्य और मानवता की छवि खराब करते हैं। खरीददारी की दृष्टि से भी यहां बहुत आकर्षक और कलात्मक वस्तुएं मिलती हैं। कलाप्रेमियों के लिए प्राकृतिक चीजों से बनी कलाकृतियां, प.टिंग्स, प्राकृतिक चीजों से बने बेहद रंगीन आभूषण, स्थानीय आचार, तरह-तरह के स्वाद के प्राकृतिक शहद व खाने-सजाने की तमाम वस्तुएं जिन्हें भर-भर के घर ले जाने का लालच जाग जाता है। इन सारे स्टालों पर लगभग सभी महिलाएं ही होती हैं। यहां का मातृसत्तात्मक, पारिवारिक-सामाजिक व्यवस्था सहज स्वाभाविक रूप से सुरक्षा और नवीनता का एहसास कराता है। नागा महिलाएं आकर्षक मुस्कान के साथ कर्मठ उत्साही और प्रसन्न नजर आती हैं। इतनी आत्मीयता और सहज मुस्कान के साथ कुछ खरीदने का अनुरोध करती हैं कि कुछ ना भी खरीदना हो तो भी एक नैसर्गिक सौंदर्यात्मक दबाव बन जाता है। इसके अलावा नागालैंड हार्टीकल्चर विभाग द्वारा आयोजित की गयी स्थानीय साग, सब्जी, फल व फूलों की प्रदर्शनी को जरूर देखना चाहिए। यहां की सब्जियों का आकार और ताजगी आश्चर्यचकित करती है।

इस फेस्टिवल म. तरह-तरह की प्रतियोगिताएं भी होती हैं जिसमे हर तरह के पर्यटक भाग लेते हैं। हर वर्ष अलग-अलग तरह की खान-पान प्रतियोगिताएं होती हैं जिनमें कई खाद्य पदार्थ और नागा मिर्ची खाने के लिए प्रतियोगियों को दिया जाता है और एक मिनट या कुछ सेकेंड की अवधि दी

जाती है उस अवधि म. जिसने जितना ज्यादा खाया हो उस विजेता को प्रमाण-पत्र और कुछ राशि दी जाती है। यहां पर आयोजित पार्क, पाइनएप्पल और नागा चिल्ली ईटिंग कंपटीशन को देखने के लिए सैलानियों म. खूब जोश दिखता है। जहां लोग नागा मिर्ची की एक बाइट भी लेने से कतरा रहे थे वहीं प्रतियोगियों ने प्लेट भर के इस मिर्ची का सेवन किया हालांकि उनकी हालत पीछे लगे मेडिकल कैंप म. देखने लायक रहती है। उनके लिए एंबुल.स, और तमाम चिकित्सीय उपाय के साधनों का इंतजाम भी रहता है। साल 2007 म. भारत की भूत झोलकिया मिर्च को दुनिया की सबसे ज्यादा तीखी मिर्च माना गया था। साल 2011 म. इंफिनिटी चिली (Infinity Chilli) और फिर साल 2012 म. नागा वाइपर नामक मिर्च को गिनीज वर्ल्ड रिकार्ड के अनुसार सबसे ज्यादा तीखा माना गया था।

भारत की सबसे तीखी मिर्च नागा मिर्ची को मसालों के साथ औषधि के रूप म. भी इस्तेमाल किया जाता है। इसका उपयोग सुअर के मांस और सूखी मछली को अधिक समय तक सुरक्षित बनाए रखने के लिए भी किया जाता है। भारत के उत्तरपूर्वी राज्यों म. हाथियों के हमलों से बचने के लिए यहां के स्थानीय लोग घरों की दीवारों पर इस मिर्च का लेप लगाते हैं और साथ ही धुआँ बम बनाने म. भी इस मिर्च का उपयोग किया जाता है। महिलाओं के खिलाफ बढ़ते शारीरिक हमलों की घटनाओं पर रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन (डीआरडीओ) ने भूत झोलकिया का इस्तेमाल किया। इस संगठन ने भूत झोलकिया मिर्च से मिर्च स्प्रे विकसित किया। डीआरडीओ की तेजपुर यूनिट ने इस मिर्च स्प्रे को तैयार किया, जिससे महिलाएं आत्मरक्षा के लिए उपयोग करती हैं। इस तरह की असंख्य जानकारियों और अद्भुत तथ्यों से भरा है ये उत्सव जो कि कब शुरू होता है, कब समाप्त कुछ पता नहीं चलता, पर हर शुरुआत का अंत भी होता ही है। हॉर्नबिल का आखिरी दिन, असमय बारिश की फुहार, बादलों द्वारा पूरे किशामा गांव को अपने गोद म. लेना, सूरज का रूठकर बादलों म. छिप जाना, आधे-गीले आधे-सूखे कपड़ों म. सभी दर्शकों का ठंड से कंपकंपाना, और अनायास ही उत्सवों की दुनिया से बाहर निकलकर आना। बहुत मुश्किल था वो दिन जब दस दिन से चले आ रहे इस उत्सव को मानो बारिश ने भी जीना चाहा हो। आम तौर पर मुझे बारिश, बरसात, फुहार से बहुत लगाव है पर उस दिन एक-एक बूंदों से शिकायत थी, जब बारिश के कारण हॉर्नबिल का उत्सव जो अपने आखिरी पड़ाव म. होकर भी जवां था, हिलोरे ले रहा था उसे इन बूंदों के कारण वक्त से पहले थमना पड़ा। मेरे लिए बहुत ही मुश्किल रहा उस उत्सव से निकल पाना और वापस घर जाकर रोजमर्रा के एकरस जीवन म. खुद को समायोजित कर पाना। ये चिंता उस चिंता से भी बढ़कर थी जब बचपन म. साल म. एक बार जन्मदिन आता था और उस दिन स्पेशल सा फील होता था, अच्छे पकवान बनते थे, नए कपडे दिलाए जाते थे ,कमरे को मेरी बहन फूलों से सजाया करती थी और उपहार भी मिलते थे। उस दिन की रात से मै ये सोचना शुरू कर देती थी कि अगला जन्मदिन एक साल बाद आएगा उसी नॉस्टेल्जिक सी स्थिति म. खुद को पा रही हूं। जन्मदिन का तो पता है हर साल आएगा पर हॉर्नबिल आने का नहीं पता कि हर साल मै आ पाऊंगी या नहीं, घर-परिवार, संसार, बच्चा, उसका स्कूल, उसकी छुट्टियां और तमाम कमिटम.ट्स जिंदगी के, पर उन तमाम कमिटम.ट्स के बीच एक कमिटम.ट खुद के लिए और इस फेस्टिवल म. आने के लिए मैने खुद से किया। कहते हैं (All good things come to an end) इसलिए इस उत्सव का भी अंत होना ही था पर यह अंत इतना दुखदाई और असंख्य बहुमूल्य अनुभवों और स्मृतियों से समृद्ध होगा ये मैंने नहीं सोचा था। आखिरी दिन

के सभी सांस्कृतिक कार्यक्रम के बाद हॉर्नबिल के रिवाज के अनुसार खूबसूरत मिस नागालैंड ने कैंप फायर म. आग लगाई इस कैंप फायर के चारों ओर सभी ट्राइबल और सैलानियों ने जश्न और नृत्य करना शुरू ही किया था कि मानो किशामा इनसे बिछड़ने के दर्द म. सिसकियां ले रहा हो। बारिश के फुहारों ने हॉर्नबिल का जैसे असमय अंत किया पर आग फिर भी जलती रही मानो कह रही हो कुछ भी हो अगले साल यहां जरुर आना। ये आग की लपट. हमारे मानस-पटल पर हमेशा के लिए अंकित हो गईं और इसकी चिंगारी अंदर कहीं सुलगती रहती है जो यहां बार-बार आने के लिए उकसाती है। ●

लेखकों से अनुरोध

★ बहुवचन के लिए वैचारिक, आलोचनात्मक लेख, कहानी, संस्मरण, डायरी, यात्रा-वृत्तांत आदि विधाओं में रचनाएं अधिकतम 3000 शब्दों में ही प्रेषित करें।

★ पत्रिका के लिए सिनेमा, रंगमंच, कला, संगीत, मीडिया आदि विधाओं में भी प्रकाशनार्थ लेख भेजे जा सकते हैं।

★ लेख के अंत में अपना नाम, पता, फोन ई-मेल आदि का उल्लेख करें।

★ भेजी गई सामग्री स्पष्ट एवं पठनीय हो तथा पन्ने के एक तरफ लिखी गई हो। बेहतर होगा कि लेख यूनीकोड/कृतिदेव फांट में ही टाइप कराकर भेजें।

★ किसी अन्य भाषा में प्रकाशित सामग्री का हिंदी अनुवाद भेजा जा सकता है। अनुवादक के संदर्भ में मूल लेखक से लिखित अनुमति जरूरी है।

★ रचनाओं की स्वीकृति व अस्वीकृति की सूचना एक माह के अंदर दे दी जाएगी। रचनाओं की वापसी के लिए लिफाफा संलग्न करें।

★ लेख के साथ भेजे गए पत्र में इस बात का उल्लेख अवश्य हो कि यह लेखक की मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित रचना है तथा इसको प्रकाशन हेतु अन्यत्र नहीं भेजा गया है।

आप लेख bahuvachan.wardha@gmail.com पर ई-मेल कर सकते हैं अथवा रजिस्ट्रीकृत डाक/स्पीड-पोस्ट से निम्न पते पर भेज सकते हैं-

संपादक
बहुवचन
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट-हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा-442001(महाराष्ट्र)
मो. +917888048765,9422386554

कहानी

गुमशुदा की तलाश

प्रेम भारद्वाज

'गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखवानी है।'

उसने यह बात कंकड़बाग थाने में पांचवीं बार कही थी। इस बार पिछली बार की तुलना में आवाज ज्यादा तेज थी जिसे बुलंद नहीं कहा जा सकता था।

इस बार भी उसकी पिछली चार बार लगाई गई पुकार की तरह अनसुनी कर दी गई। थानेदार साहेब फोन पर किसी 'कारोबारी' से 'लेन-देन' डील कर रहे थे।

वहां हर कोई किसी न किसी से बात कर रहा था। हर किसी को अपनी बात कहने की अकुलाहट थी। सुनने का धीरज परिसर के बीचों-बीच एक बड़े बांस पर टिके 'मेरा भारत महान' के तिरंगे में थी, जो धूप में सूख रहा था।

आधे घंटे से वह अपनी बात पुलिस थाने को पहुंचाने की कोशिश कर रहा था। अभी तक असफल था। शिकायत की पहली पंक्ति ही उन तक नहीं पहुंच पा रही थी।

किसी व्यक्ति का गुम हो जाना, उसके मर जाने से ज्यादा तकलीफ-देह होता है। वह यही कहना चाहता था। न कोई सुन रहा था। न समझ रहा था।

वह इतना भर चाहता था कि उसकी इस वेदना को कोई एक व्यक्ति भी सुनकर समझ ले। वह उसी व्यक्ति की तलाश में आदमियों के समंदर में डूब-उतर रहा था। लहरें खुद ही उसे अस्वीकार कर किनारे फेंक देती थीं। वह तंद्रा टूटने पर जागता। बदन में लिपटे रेत को झाड़कर निकल पड़ता उस आदमी की खोज में। फिर से उसी समंदर की तरफ-व्यक्तियों के समंदर की ओर।

एक कातर आवाज सुनते ही उसने गर्दन मोड़कर देखा। थाने के सबसे बाईं छोर पर बने हालात में बंद बूढ़ा जोर से चीखा था- 'मुझे बहुत जोर से प्यास लगी, कोई सुनता क्यों नहीं... पानी मांग-मांग कर मेरा गला सूख गया है...ए भाई, तुम्हारे पास पानी है क्या?...पिला दो न दो बूंद।'

बूढ़े ने उसे देख लिया था। उसको दया आ गई। वह अपनी गाड़ी में रखे पानी की बोतल ले आया। बिना कुछ कहे उसने बोतल दे दिया। बूढ़े ने बोतल लपक लिया और एक सांस पर उसे खाली कर दिया। उसके चेहरे पर अब संतुष्टि के भाव थे। बूढ़े की नजर उसके चेहरे पर थीं। वह भी बूढ़े की आँखों में छिपे भाव को देख रहा था। देखने से ज्यादा पढ़ रहा था। बैक-ग्राऊंड में थाने के भीतर अलग-अलग कोनों से भद्दी-अश्लील गालियां सुनाई दे रही थीं।

'आपको क्यों यहां बंद कर दिया इन लोगों ने?'

‘कमजोर और बूढ़ा हूं, इसलिए।’

‘आप क्या अपराध कर सकते हैं?’

‘अपराधी नहीं होना ही, सबसे बड़ा अपराध है बबुआ।’

‘पढ़े लिखे है?’

‘चालीस साल तक पढ़ाया है... सब बेकार गया।’

‘क्यों?’

‘ताकतवर नहीं बन पाया।’

‘अरे क्या संसद बन रखा है’, एक सिपाही की झिड़की थी-’ क्यों जी आपको हाजत में बंद होना है क्या?’

उसे बुरा लगा। हाजत से थानेदार के कक्ष की ओर मुड़ गया।

‘क्या काम है आपका?’

‘थानेदारजी से मिलना है... गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखानी है।’

‘वहां हैं थानेदार साहब हाजत में।’

‘नहीं’ उसे फिर बुरा लगा।’

‘फिर उधर क्या कर रहे है... जाइए, थानेदार साहब अभी फुरसत में हैं... पेट्रोलिंग पर निकलने से पहले मिल लीजिए।’

वह तेज कदमों से थानेदार के कक्ष में दाखिल हुआ। थानेदार ने अभी-अभी फोन रखा था। ‘डील’ शायद मन मुताबिक नहीं हो गई थी। उसकी घूरती आँखें दिल को बंध गई। पुलिसवालों के हर आदमी अपराधी ही क्यों नजर आता है?

‘मुझे गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखवानी है।’

‘बैठिए...’

‘शुक्रिया...’

‘गुम हुए व्यक्ति के बारे में कुछ बताएं ताकि उसे पहचाना जा सके।’

‘हवा में उड़ते उसके सूखे बाल... पपड़ियाए होंठ, आँखों में बार-बार ठहर जाते उसके बेबस आँसू, चलते समय बांया कंधा सरवाइकल के दर्द से हमेशा झुका-झुका सा रहता, दर्द से निजात के क्रम में वह कभी हाथ को झटकता है, कभी गर्दन को... वह बोलता कम, चीखता ज्यादा है... गुस्सा उससे भी ज्यादा, गुस्से में वह हकलाने लगता है-झूठ बेईमान के आठ लेन हाईवे को छोड़कर सही-ईमानदारी की पतली पंगड़ंडी पर चलने के नाम पर किसी कीड़े की तरह रेंगता रहा... वह भूल से भी किसी प्लाइओवर, एलिवेटेड रोड से नहीं गुजरता, उसको पुल पसंद है... किसी भी पुल से गुजरने के पहले वह बाकायदा रुककर पुल के हाथ जोड़कर प्रणाम करता है वह। पुल, पहिया और आग को बहुत सम्मान करता है, इन्हें वह कभी प्रेम तो कभी हैरानी भरी नजरों से घंटों निहारता है। वह साइकिल से लेकर ट्रक तक के पहिये को इस तरह छूता है जैसे कोई अपनी महबूबा को पहली बार स्पर्श करता है।’

‘आप कवि है, कवि टाईप हैं-पागल है, क्या हैं आप?’ थानेदार के लहजे में सख्ती थी।

‘क्यों क्या हुआ थानेदार साहेब?’

'आप मुझे गुमशुदा आदमी का हुलिया बता रहे हैं या कोई कविता-कहानी सुना रहे हैं- यह होती है किसी आदमी की पहचान।'

'मेरा यकीन कीजिए वह ऐसे ही पहचाना जा सकता है।'

'कब से गायब है?'

'सब कुछ बताता हूं... उसके पहले एक निवेदन है।'

'बोलिए।' थानेदार झल्ला गया। वह खीझ रहा था। इस तरह के लोगों को झेलना उसकी आदत में शुमार नहीं था।

'मेरी बातें सुनकर उनमें से आप अपने मतलब की चीजें नोट कर लीजिए मगर उसके बारे में ऐसे ही बताया जा सकता है- उसकी पहचान बाहरी से ज्यादा भीतरी ज्यादा अहमियत रखती है। यही वे बातें हैं उसके गायब होने की वजह भी बनी।'

'किसकी?'

'जिसकी गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखवाने आया हूं।' उसी वक्त एक लड़का गंदे कपड़े पहने हाथ में लोहे का स्टैंड लिए दाखिल हुआ। उसमें चाय के गिलास थे। उसने बिना कुछ कहे टेबल पर दो चाय रख दिए। लड़के की उम्र दस-बारह साल की होगी। कपड़े तार-तार और बेहद गंदे थे। निश्चित तौर पर वह कई महीनों से नहीं नहाया होगा। उसके आते ही कमरे में तेज दुर्गंध भी भर गई थी।

'देखिए शर्ट-कर्ट में उसकी पहचान बताइए-हमको पेट्रोलिंग पर निकलना है।'

'उसको इसी शर्ट-कर्ट से चिढ़ थी। उसके हिसाब से शर्ट-कर्ट कोई रास्ता होता नहीं, वह बईमानी और हिंसा होती है, जैसे हाथी का शर्ट-कर्ट चूहा नहीं हो सकता। मैं आपको यह बताना चाह रहा हूं कि उसकी गुमशुदगी के दो पक्ष हैं- पहला उसकी पहचान जो पहचान की परिधि में नहीं आती। दूसरा पक्ष उसके गायब होने की वजह जो मेरे साथ-साथ इस देश के हर नागरिक के लिए जानना जरूरी है।' 'भाईजी, आज आपने फंसा दिया मुझे, अब इस गुमशुदगी को आप राष्ट्रीय मुद्दा बना रहे हैं- चलिए आप उसके घर छोड़ने की वजह ही बता दीजिए।'

'घर नहीं छोड़ा है। गायब हो गया है। इसे आप उसके रूठकर, मायूस होकर कहीं चले जाना भी कह सकते हैं... वह बार-बार कहता था कि उसको लौटना नहीं आता... लेकिन मुझे भरोसा है कि अगर उसको पूरा भरोसा हो जाए कि उसका शिद्दत के साथ इंतजार किया जा रहा तो वह लौट आएगा। लौटना रास्तों के जरिए नहीं होता है, पुकार के मार्फत होता है। पुकार ही लौटने का सबब और सुरंग बनाती है... अजीब आदतें थीं उसकी। कमरे में लाईट जलाने से पहले वह बहुत देर तक अँधेरे को छूकर उसको महसूसता था- अँधेरे के कानों में धीरे से कहता-'अब तुम अपनी आँखें बंद करके सो जाओ, रोशनी होने वाली है... वह खुद भी सोने से पहले चादर को सिराहने रखकर अँधेरा ही ओढ़ लेता... वह बहुत देर तक मुट्ठी में अँधेरा भर लेता। खोलता नहीं, इस डर से कि मुट्ठी खोलते ही उसमें बंद ठिठुरा गर्भस्थ शिशु की तरह सहमे अँधेरे की हत्या हो जाएगी। सभा-संगोष्ठियों' में वह मंच से बोल रहे आदरणीय वक्ताओं को इसलिए छूट कर देता कि वे झूठ बोल रहे होते, पाखंड कर रहे होते जो उसे कतई बर्दाश्त नहीं था। महानता का नाटक करने वाले पाखंडियों को वह सहन नहीं कर पाता था।

उसके दुख के कारण भी अजीब थे। नदियों-तालाबों, कुँओं का पानी सूख जाने से वह इतना दुखी हो जाता कि उसकी इच्छा होती कि अपने आँसुओं में वह उनमें फिर से पहले जैसा जल से भर दे... उसकी दुनिया में जिनकी चीज पसंद थी, उनकी तुलना से नापसंद चीजों की संख्या बेहिसाब थी। वह दुनिया को यह समझाने में नाकाम रहा कि रातें सोने के लिए नहीं जगने, जगाने और जिंदगी की तरंगों से भर जाने के लिए होती हैं-

'मुझे मत मारो रहम करो मेरी हड्डी कमजोर है, अपाहिज हो जाऊंगा। मैंने मोबाइल नहीं चुराया है।'

कमरे में पहुंची इस आवाज ने दोनों को असहज कर दिया। आँखों से आँखें उलझी। सवाल जन्में।

'यह कैसी आवाज है?'

'मंदिर नहीं, थाना है। यहां- घाटियां नहीं इसी तरह की आवाजें आती हैं, एक चोर पकड़ा गया है वह अपना जुर्म नहीं कबूल रहा।'

'मोबाइल के लिए इतनी बेरहमी से पिटाई' यहां लोग बैंक का बैंक लूटकर फरार हो गए-उनको क्यों नहीं हाजत में बंद कर इस तरह पिटाई करते।'

'भाईजी, पुलिस के काम में अपना टांग मत अड़ाइए-यह हमारा अपना तरीका है- गोली और गाली दागना।'

'मलाही पकड़ी चौराहे पर मर्डर हो गया-दो ठो विकेट डाउन' एक इंस्पेक्टर ने कमरे में आकर सूचना दी।

'जरूर बपिया बंगाली और हरिया मास्टर के बीच गैंगवार का मामला है। अच्छा हुआ आशीष तुम आ गए। मुझे मौका एक वारदात पर तफ्तीश के लिए जाना होगा। एस.पी. साहब भी पहुंचने वाले होंगे। उनके पहुंचने से पहले पहुंचना जरूरी है। सुनिए भाईजी आप अपनी बातें इंस्पेक्टर आशीष को बता दीजिए यह कविता भी लिखते हैं, शायद आपकी बातों को बेहतर ढंग से समझें।'

'प्लीज मुझे मत मारो-बीमार हूं-अपाहिज हो जाऊंगा। इलाज के लिए भी पैसा नहीं। अकेला हूं, कोई नहीं है मेरा, कौन कराएगा इलाज, मोबाइल मैंने नहीं चुराया मुझे। उसे चलाना भी नहीं आता।' कातर स्वर। स्वर में कहर की कराह। उस नादान को क्या मालूम कि कमजोर है इसलिए मार खा रहा है। बलवान दूसरों को पीटता है, पिटाई नहीं खाता।

'हां, बताइए साहब' इंस्पेक्टर आशीष ने कुर्सी पर बैठते ही कहा।

'गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखवाने आया हूं- अधिक बातें उनकी सुनाई अब फिर से वही बातें बतानी होगी।'

'ऐसा नहीं है... जो बता चुके हैं, उसे छोड़कर आगे की बातें बताइए, उन्होंने आपकी बात सुनकर कुछ नोट किया है- आप बाकी बताइए।'

'किसी बेकसूर को बेरहमी से पीटा जा रहा है। क्या पता वह अपराधी नहीं हो...।

'आप अपने काम से काम रखिए, यहां यह सब चलता है- यहां का यही कारोबार है, यही दुनिया थाना है, यह कोई ध्यान केंद्र नहीं। आप अपनी बात कीजिए।'

'इन्हीं सब में तो मेरी भी बात शामिल हैं। मेरी कोई भी बात केवल मेरी कैसे हो सकती है।'

'कौन गुम हुआ है?'

'यह भी कोई प्रश्न है? आपके बारे में थानेदार साहब ने बताया था कि आप कविता भी लिखते है।'

'तो' अपमान सा लगा इंस्पेक्टर को। दांत पीसकर रह गया।

'कैसे लिख लेते हैं?'

'क्यों?'

'इतनी मोटी संवेदना और चीजों को मोटे तौर पर देखने-सोचने वाला आदमी कविताएं कैसे लिख सकता है,... कुछ लाइनें जोड़ लेना और बात है इंस्पेक्टर साहब, मगर उनमें जीवन नहीं होता।'

'वही समझ लीजिए। पंक्तियां लिखता हूं-मगर देश के नामी गिरामी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी होती हैं, वे पंक्तियां। पुरस्कार भी मिले हैं कविता पाठ के लिए, देश भर से बुलाया जाता हूं।'

'यह सब पुलिसिया धौंस की बदौलत होता होगा।' 'सुनिए मिस्टर, आप मुझे डिरेल कर रहे हैं, आप किसी गुम हुए आदमी की बात कर रहे थे।'

'जी...'

'किस दिन गुम हुआ वह...'

'वह कोई तारीख देखकर गुम नहीं हुआ... कोई नहीं होता... अकसर ही आदमी धीरे-धीरे टुकड़ों, किश्तों में गुम होता है, फिर अचानक वह दिखाई देना बंद हो जाता है तब हमें पता चलता है, कोई था, जो अब अनुपस्थिति है। उसका हमारी आँखों से ओझल हो जाना एक-दो-दिन में नहीं हुआ होगा, लंबा वक्त लगा होगा, कई दफा तो वह आँखों के आगे ओझल भी नहीं होता, सामने ही होता है लेकिन दिखाई देना बंद हो जाता है। यह मैं यकीनी तौर पर बता सकता हूं कि पचास की उम्र तक जी चुकने के बावजूद वह किसी एक सुंदर दिन की तलाश में था... बचपन में शायद कोई सुंदर दिन रहा हो जो अब उसकी स्मृति में कहीं नहीं... उस सुंदर दिन की तलाश ने उसे बहुत भटकाया बैचेन किया, रूह को छलनी करता रहा जिद थी जो पूरी नहीं होती थी, एक मायूसी थी जो मिटती नहीं थी।

'सुंदर दिन मतलब।'

'वह कोई दिन जब सुबह सूरज के उगने के साथ उसकी नींद मनमीत के स्पर्श से खुले जिसमें सूरज से सौ गुना ज्यादा आग हो-दोनों साथ हों- देह पर न आवरण हो, न भाषा, न शब्द, कोई भी बंधन नहीं' बदन पर प्रेम की त्वचा हो- दूसरा भी उसके ही वजूद का हिस्सा हो' वह मनमीत की पसंद का खाना खुद और घड़ी को फूंक मारकर पिछला दिए जाए। सब कुछ ठहरा हुआ हो। समय भी, घड़ी भी, पृथ्वी भी, धड़कन भी, सांस भी। मर जाए लेकिन जिंदा भी हों, र्स्पश की नदी में तैरने को उतरे साथ-साथ और सदा के लिए डूब जाएं।

'सच में ऐसा चाहता था वह... अब मुझे यह बताइए कि वह गुम क्यों हुआ? दूसरे उसके होने की संभावना कहीं-कहां हो सकती है।'

'वह कहा करता था-हर घटना आने वाली घटना का कारण बन जाती है... जीवन घटनाओं का अंतहीन सिलसिला है... हर बात में वजह ढूंढ़ना आदमी की फितरत का हिस्सा है-वजह का न होना सबसे बड़ी वजह होती है... इंस्पेक्टर साहब वह हर उस जगह हो सकता है जहां उसके होने की

कोई संभावना नहीं... वह इस 'होने' से ही तो ऊब गया था, इसीलिए गुम हुआ। वह होने की सीमा से बाहर 'नहीं होने' के इलाकों में पाया जा सकता है।'

'अब उसका नाम भी बता दीजिए जो सबसे पहले आपको बताना चाहिए था।'

'उसका कोई एक नाम नहीं है।'

'कमाल करते हैं आप, बिना नाम के उसे कैसे ढूंढ़ा जा सकता है।'

'चलिए फिर सुविधा के लिए उसका नाम अनुराग शर्मा मान लीजिए।'

'मान नहीं, पक्का बताइए।'

'अब आप कमाल कर रहे है-नाम में पक्का क्या होता है... क्या आदमी नाम भर है, वह भी आज के आधार कार्ड वाले दौर में जहां नंबर ही सब कुछ है- अगर गुम होने के बाद उसने अपना नाम बदल लिया तो।'

'उम्र कितनी है?'

'जितनी मेरी।'

'मतलब 50 साल।'

'जी...'

'देखने में कैसा है?'

'ठीक से देखा नहीं।'

'कितने साल से उसे जानते हैं- कब से उसके साथ है।'

'हम दोनों साथ ही पैदा हुए। साथ ही रहे सुख में कम, दुःख में ज्यादा।'

'जुड़वा भाई हैं आप?'

'नहीं-नहीं, वह मेरे साथ पैदा हुआ मगर जुड़वा नहीं... 50 साल से साथ है मगर मैं सबसे कम उसके बारे में जानता हूं।

'अब आप मुझे टार्चर कर रहे है जनाब?'

'बिलकुल नहीं- परेशान हूं- कोई खो गया है' जो मेरा अजीज है, उसके बिना हर सांस के आखिरी होने का अहसास होता है... सांस दर सांस जिंदगी से भरोसा खत्म होता जा रहा है।'

'उसे ढूंढ पाना मुश्किल है।'

'ऐसा मत कहिए'-वह रो पड़ता ऐसा मुझे भी लगता है मगर उसके बगैर मेरा जीना मुश्किल।'

'आप उसकी दुरूस्त पहचान नहीं बता रहे।'

'जिस पहचान की आप बात कर रहे है वह उनके विरूद्ध था उन्हें नकली मानता था। अब इंस्पेक्टर चुप हो गया। शायद वह आजिज आ गया था। एक कागज पर कुछ लिखने लगा था। बूढ़े के चीखने की आवाज अब भी आ रही थी। मोबाइल चोर की कराहें जारी थीं।

'लीजिए यहां दस्तख्त कर दीजिए। अपना पूरा नाम, पता, मोबाइल नंबर।'

उसने वैसा ही किया जैसा कहा गया। इंस्पेक्टर ने कागज वापस ले लिया था। इंस्पेक्टर ने कागज वापस लेने के बाद मजमून पढ़ा। उसकी आँखें फैल गई। सामने बैठे व्यक्ति को इस तरह घूरा मानो दुनिया का आठवां अजूबा देख रहा हो।

'आपका नाम भी अनुराग शर्मा है।'

'है।'

'आप भी वहीं रहते है, जहां वह।'

'मामला क्या है- क्या लगता है वह आपका?'

'वह मेरे भीतर रहता था पिछले पचास सालों से।'

'क्यों मेरा समय और दिमाग खराब कर रहे हैं' ठीक से बताओ वह कौन है, आप कौन हैं, दोनों कौन हैं।

'कहा न, वह सालों से मेरे भीतर रह रहा हर किसी को लगता है। पचास वह मैं ही हूं। उसकी गुमशुदगी के पहले तक मुझे भी यही लगता था। मगर मैं गलत था-यकीन मानिए इंस्पेक्टर साहब वह मैं नहीं हूं, वह कोई और था जो मुझे अकेला छोड़कर चला गया और उसके जाते ही मैं अमानुष हो गया हूं- शायद मेरे अमानुष होते ही वह चला गया। उसे ढूंढने में मदद कीजिए। इंस्पेक्टर साहब उसके और मेरे अलग होने का लोग सबूत मांगते हैं। मेरे पास कोई सबूत नहीं, कोई गवाह नहीं है मेरे पास।'

'मैं आपकी पीड़ा समझ सकता हूं' सहसा इंस्पेक्टर नरम पड़ गया। आवाज भी लरज पड़ी।'

'मुझ पर मेहरबानी होगी-मेरे से ज्यादा इस शहर, देश, दुनिया पूरी, मनुष्यता पर होगी। उसका जाना केवल उसका अकेले का ही जाना नहीं है, उसकी देखा-देखी उसके जैसे और भी चले जाएंगे तब यह दुनिया बहुत भयावह हो जाएगी। इससे पहले कि यह दुनिया एक कत्लगाह, हम आप जल्लाद में पूरी तरह तब्दील हो जाए उसे ढूंढ लीजिए। दुनिया को थाना होने बचा लीजिए जहां बूढ़ा पानी को तरसता है, बीमार को अपाहिज बनाया जा रहा है। उसकी गुमशुदगी की बड़ी वजह दुनिया का एक थाने, कत्लगाह में बदल जाना है।' वह रो रहा था। प्रार्थना की मुद्रा में उसके हाथ जुड़े थे। तय जानिए कि उसकी प्रार्थना उसकी निजी नहीं थी।

इंस्पेक्टर के भीतर भी कुछ पिछलने लगा। थाना गल रहा था। कवि चेहरे पर उभर रहा था। उसकी आँखें भी नम हो गई। उसने मान लिया कि उसने सिगरेट सुलगा ली है। कमरे में धुँआ फैल रहा है। धुँए की ओट से सामने उदास बैठे व्यक्ति को गौर से देखने लगा-वह आदमी इस वक्त पृथ्वी की सबसे दर्दनाक कविता लग रहा था। ●

बॉर्डर

शशिभूषण द्विवेदी

बॉर्डर शब्द का जिक्र आते ही जाने क्यों हमारे मन में दुनिया के तमाम देशों की सरहदों, उनके तनाव, युद्ध और खून-खराबे के दृश्य घूमने लगते हैं। पैंसठ और इकहत्तर के युद्ध तो हमने नहीं देखे लेकिन करगिल तो हमारे सामने ही गुजरा था। शायद ही कोई शहर या कस्बा हो जब कारगिल से शहीदों की लाशें न आ रही हों। ट्रेनों का हाल यह था कि कश्मीर जाने वाली तमाम ट्रेनें और स्पेशल ट्रेनें सैनिकों से भरी होती थी। लोग उन्हें सम्मान देते, सलाम करते। हालांकि उस दौर में हमने नागरिक जीवन में सैनिकों की उद्दंडता भी देखी थी। एक फिल्म के सिलसिले में मैं बाघा बॉर्डर भी गया था। शायद वह शांति का समय था इसलिए तब मुझे वहां कुछ भी असहज नहीं लगा था सिवाय उन तारों के बाड़ो के जो दोनों देशों की सीमाओं को अलग करते थे। वैसे लोगों ने बताया था कि तनाव के दिनों में भी यहां के आम जनजीवन पर खास प्रभाव नहीं पड़ता। कितने तो किसानों के खेत बाड़े के उस पार हैं और कितनों के इस पार। रिश्तेदारियां भी हैं। आना-जाना लगा रहता है। हां, कई बार बाड़े के तारों में छोड़ी गई बिजली के कारण मवेशी जरूर मारे जाते हैं। उन्हें किसी बॉर्डर का पता जो नहीं होता। तब मुझे लगा कि टीवी और अखबार हमें कितना कुछ गलत बताते हैं। खैर, मैं यहां जिस बॉर्डर की बात कर रहा हूं वह किन्हीं दो देशों के बीच का बॉर्डर नहीं है बल्कि अपने ही देश के भीतर हमने कितने तो बॉर्डर बना रखे हैं। भले उनकी बाड़ेबंदी न की हो लेकिन एक युद्ध यहां भी लगातार लड़ा जाता है दो राज्यों के बॉर्डर पर। यह दिल्ली-यूपी का बॉर्डर है। आप इसे किसी भी दूसरे राज्य के बॉर्डर के रूप में भी देख सकते हैं। किस्सा शुरू करने से पहले मैं जरा इस बॉर्डर का नक्शा स्पष्ट कर दूं।

बॉर्डर के उस तरफ दिल्ली है जिसकी रंगत ही निराली है। कुछ साल पहले मेट्रो ने आकर इसे और भी निखार दिया है। दूसरी तरफ गोल चक्कर के इस तरफ यूपी शुरू हो जाता है। आटो की रेलमपेल और धुत्त शराबियों की गालियां सुनकर आपको चेतावनी मिल जाती है कि मुस्कुराइए कि आप यूपी में हैं। दिल्ली का आखिरी शराब का ठेका यहीं पर है जिस पर सुबह बारह से रात दस बजे तक शराबियों, स्मैकियों और जेबकतरों की भीड़ एक-दूसरे पर चढ़ी रहती है।

मुझे लगता है कि दिन भर में जितने लोग यहां दिल्ली की कमोबेश सस्ती और अच्छी शराब खरीद पाते होंगे, उससे ज्यादा लोग अपनी जेब कटवाते होंगे। पुलिस रहती है लेकिन डंडा लेकर बैठती ऊंघती हुई। जब कभी उसकी नींद खुलती है तो दो-चार जेबकतरों को लपड़िया कर अपनी ड्यूटी

पूरी कर लेती है। यहीं ओल्ड स्कूल का एक सिनेमाहॉल है जहां अकसर वही फिल्में चलती हैं जो पहले सामान्य सिनेमाहॉलों में मार्निंग शो में चला करती थीं। उसके आसपास तमाम किस्म की दुकानें हैं और ऊपर के हिस्से के दड़बेनुमा कमरों में कुछ लोग रहते भी हैं।

सिनेमाहॉल के भीतर मैं कभी गया नहीं लेकिन एक शरीफ रिक्शेवाले ने बताया कि कभी जाइएगा भी नहीं वरना आपको उल्टी आ जाएगी। वहां सब कुछ होता है, सब कुछ मने सब कुछ। मैंने उससे जानना चाहा कि आज के मल्टीप्लैक्स के जमाने में ये सिनेमाहॉल चलता भी है? तो उसने बताया कि-जी भरा रहता है। हमारे जैसे लोग कहां मल्टीप्लैक्स में जा सकते हैं। हमारी औकात और पसंद का सनीमा तो यहीं होता है। इस दौर में यह अब तक बचा है, यही गनीमत है। उसने अफसोस के स्वर में कहा। मुझे अपने किशोरावस्था के दिन याद आ गए जब वर्जित दृश्यों को देखने की उत्कंठा में हम क्लास छोड़कर ऐसे ही मार्निंग शो में घुस जाया करते थे जो तब भी अट्ठारह वर्ष से कम वालों के लिए वर्जित थे। उस शो में तब भी हम कुछ उद्दंड छात्रों के अलावा इसी वर्ग के अधेड़-बूढ़े सीटी मारते दिखते थे। पूरी फिल्म में एकाध ही वर्जित दृश्य होता था जिसके लिए लोग पूरा दो-ढाई घंटा बर्बाद करते थे। मुझे लगा कि वो दुनिया बिलकुल नहीं बदली। हां, दृश्य से ओझल जरूर हो गई जिसे कई बार हम देखकर भी अनदेखा कर देते हैं।

शरीफ रिक्शेवाले ने आँख मारकर कहा-गुरु यहां सब कुछ मिलता है। शराब, स्मैक, गांजा, लडकी-लडका सब। कमी किसी चीज की नहीं, सब मजा है।

याद आया कि इसी बॉर्डर पर एक लडकी मेरे पीछे पड़ गई थी। मैं एक बीयर लेकर पड़ोस के एक सुनसान पार्क में बैठा था कि वो पीछे-पीछे मेरे बगल में आकर बैठ गई। मैंने पूछा-क्या है? उसने कहा कि साहब मदद की जरूरत है। मैंने कहा-कैसी? उसने कहा कि मेरा बेटा बीमार है, गाजियाबाद हास्पिटल में भर्ती है। आप जो कहोगे मैं करूंगी। उस समय मेरी जेब में हजार रुपये थे। मेरा कमीनापन जाग गया था। अतृप्त इच्छाएं थीं। मुझे लगा कि पांच सौ में वो कुछ भी करने को तैयार है। वैसे मैं उसके बच्चे के बारे में भी सोच रहा था। अपनी बीवी से इतनी सी बात मैं बता नहीं सकता था। बाद में खैर बता दी। मेरा सौभाग्य या दुर्भाग्य, उस औरत ने कुछ किया नहीं, बल्कि चिल्लाने लगी। मैंने हजार रुपये देकर किसी तरह अपना पीछा छुड़ाया और इस तरह मेरी इज्जत बच गई। साली इज्जत। ये बात जब मैंने अपनी पत्नी को बताया तो वो ठहाका मारकर हँसी। बोली-बॉर्डर पर दुश्मन विषकन्याएं भी रखता है, संभलकर रहा कीजिए।

मैं बॉर्डर के इस अंडरवर्ल्ड के बारे में ज्यादा नहीं जानता था। इतना पता था कि यहां जेबकतरे बहुत हैं। यहां की डग्गामार बसों में तो इसकी संभावना नब्बे प्रतिशत है और बसवाले भी इसमें शामिल रहते हैं। अब आटोवाले से एक नई कहानी मिली कि जो तीन-चार किलोमीटर के हम आटोवाले को दस रुपये देते हैं, उसमें हर चक्कर पर बीस रुपये की अवैध वसूली यानी रंगदारी होती है जिसका बड़ा हिस्सा विधायक, सांसद और मुख्यमंत्री तक जाता है। यही नहीं, चोरी-चकारी भी उसमें शामिल है। मैं चौंक गया। फिर यह भी पता चला कि ट्रक और ट्रांसपोर्ट वालों का भी एक अलग अंडरवर्ल्ड है और सब पुलिस के वैधानिक नियंत्रण में होता है। यह सचमुच का बॉर्डर था जिसके कई मोर्चे थे। एक मोर्चे पर मैं भी शहीद हुआ। हुआ यह था कि मैं दिन-दोपहर तीन बजे बॉर्डर से आटो पकड़ कर घर जा रहा था कि अचानक से पीछे से एक लड़का मुझे पकड़ लेता है।

भैया-भैया, मुझे पहचाना नहीं? मैं सोनू का दोस्त।

मैंने उसे देखा। पहचानने की कोशिश करने लगा। सोनू कॉमन नाम है और संयोग से मेरे भाई का नाम भी लेकिन उसके साथ मैंने उसे कभी देखा नहीं था।

फिर सोचा कि क्या पता उसका पुराना दोस्त हो। मैंने हाथ मिलाया। पूछा कि कैसे हो? तो वो बताने लगा कि भैया, यहां गुंडे बहुत हैं। यहीं सामने वाले ढाबे में काम करता हूं। कल गुंडों ने बहुत मारा।

उसने भरी भीड़ में अपनी कमीज उतारकर दिखाया। उस पर डंडों के कई निशान थे। मैं पिघल गया। मैंने कहा-चिंता मत करो, सब ठीक हो जाएगा। वो गले लगकर रोने लगा। मैं उसे दिलासा देता रहा।

फिर उसने कहा कि भैया आप बहुत कमजोर हो गए हो। चलो सामने वाला ढाबा अपना ही है, खाना खिलाता हूं।

मैंने कहा कि नहीं, मैं खाकर आया हूं।

वो पैर छूकर चला गया। मैं आटो में बैठा। पता चला कि मेरी जेब से तीन हजार रुपये और मेरा मोबाइल गायब है।

बॉर्डर पर सेनाएं लगी हुई थीं और दुश्मन ने प्यार से घात लगा दी थी। अब भी मैं रोज बॉर्डर पर तैनात रहता हूं और दुश्मन घात लगाए बैठा है। कभी भी शहीद हो सकता हूं। ऐसा शहीद जिसे कभी शहीद का दर्जा नहीं मिलेगा। ●

चील के पंजे में

श्रद्धा थवाईत

सीता अपनी सहेली कोसी के साथ काली सड़क म. चलते हुए स्कूल की ओर बढ़े जा रही है। अपनी बिनकी को याद करते हुए। जो उन दोनों से कुछ साल बड़ी है। पहले वह, बिनकी और कोसी तीनों साथ-साथ स्कूल जाते थे। कोसी तो बस साथ होती थी लेकिन सीता के सौ तालों की चाबी थी-बिनकी। माँ ने डांटा तो बिनकी से सब कुछ कह दिल हल्का कर लेना... पढ़ाई म. कोई दिक्कत आई तो बिनकी... जंगल म. त.दू खाने जाना हो तो बिनकी... नदी नहाने जाना हो तो बिनकी... सुबह जंगल तरफ जाने से लेकर शाम को अँधेरा होते तक सीता बिनकी के साथ ही रहती थी।

जब यह सड़क नहीं बनी थी तब वे तीनों नदी पार कर के स्कूल जाते थे इसलिए जब यह सड़क बनी, तो बिनकी ने इसे काली नदी नाम दिया था। वे तीनों भी इस सड़क के शुक्रगुजार थे, क्योंकि इसने मुनगाबहार नदी को रोज पार करने की जहमत से निजात दिला दी थी, इसलिए भी क्योंकि सड़क के आने से ही स्कूल म. मैडमजी का आना शुरू हुआ, पढ़ाई शुरू हुई वरना कोई स्कूल म. पढ़ाने आता ही नहीं था। जब बरसात म. नदी उफान पर आ जाती तब इसे पार करना भी बहुत मुश्किल हो जाता था।

अब बिनकी स्कूल नहीं आती। सीता को अकेले आना पड़ता है या कभी कोसी साथ आती है। जब नदी सूखी होती है तब कोसी छोटे रास्ते से स्कूल पहुंच जाती है लेकिन तब भी सीता इसी सड़क पर अकेले चलते हुए स्कूल आती है। उसे इस सड़क से प्यार है। बिनकी के मध्कू दादा इस सड़क को 'काड़ीया नागिन' कहते हैं, वह कहते हैं कि इसी से सरकार अपना जहर गांव म. लाती है, लेकिन ये सीता को कोई नागिन नहीं, मैडम की काली लहराती सुंदर चोटी लगती है, चोटी म. बंधने वाला सुंदर सा काला फीता लगती है।

सीता को उसकी मैडमजी बहुत सुंदर लगती हैं। मैडमजी कभी महुए के पीले फूलों जैसे रंग की साड़ी पहनती हैं तो कभी सेम्हल के लाल फूल जैसी तो कभी ढ़ाक के तो कभी साल के फूल जैसे रंग की। मैडमजी ऐसी सुंदर-सुंदर साड़ी पहन के, अपनी गाड़ी चला के आती है। सीता को बड़ा अच्छा लगता है, मैडम को दोपहिया गाड़ी चलाकर आते देखना। वो भी बड़े होकर मैडम बनना चाहती है। उसकी बिनकी भी मैडम बनना चाहती थी, लेकिन अब वो नहीं पढ़ती। जाने कहां-कहां घूमती है। आया से पूछने पर आया कहती है कि बिनकी अब साल बीज बीनने जाती है, लेकिन सीता को जाने क्यों ऐसा नहीं लगता। कभी जब बिनकी घर भी आती है तो सीता से पहले जैसे बात

भी नहीं करती। बस इतना कहती है कि सीता मैं नहीं पढ़ पाई लेकिन तू-खूब पढ़ना। खूब पढ़ती है अब सीता।

सीता को स्कूल जाना बहुत अच्छा लगता है। वह स्कूल म. भी सबसे पहले पहुंच जाती है। मैडमजी के कहने पर वह अपने से छोटी क्लास की उपस्थिति भी ले लेती है। मैडमजी कितने प्यार से उसे शाबाशी देते हुए कहती हैं-

'नीम अच्छा आंदी। नीम अच्छा मुने आन।'

सीता के मुख म. शहद घुल जाता है, मैडमजी के मुंह से यह सुनकर। कई बार अकेले म. वह ये शब्द दुहराती भी है। इसके लिए ही वह जल्दी स्कूल आकर स्कूल खोल देती है, वो और उसकी सहेलियां मिलकर झाडू लगा लेती हैं। बारिश के दिन म. तो स्कूल के छप्पर से पानी टपकता है। सारा फर्श गीला हो जाता है। वे सब मिलकर झाडू लगाकर पानी बाहर कर देती हैं और फिर उस गीले फर्श म. खेलने लगती हैं। एक लड़की उकडू बैठ जाती है और दूसरी उसका हाथ पकड़ खींचने लगती है ऐसे उनकी तीन चार हाथगाड़ी कक्षा म. चलने लगती है और फर्श जल्दी ही सूख जाता है।

मैडमजी जो कुछ भी पढ़ाती हैं वह ध्यान से सुनती है और घर जाकर ढिबरी की रोशनी म. पढ़ते हुए उसे दुहरा भी लेती है। वह आया से कहती है कि उसे भी दादावाले स्कूल म. भेज द. लेकिन आया उसे दूर भेजना नहीं चाहती। जब वह ज्यादा जिद करती है तो कहतीं है कि ठीक है भेज द.गे, लेकिन पहले गांव के स्कूल की पढ़ाई तो वह पूरी कर ले। सीता दूर गांव वाले स्कूल म. पढ़कर मैडम बनना चाहती है लेकिन आया उसे यह बात कहने ही नहीं देती, कहती है कि ज्यादा स्कूल-स्कूल करेगी तो वो लोग तुझे भी भेज द.गे साल बीनने। सीता पूछती है- बिनकी जैसे? तो आया चुप हो जाती है।

सुबह से जाने क्यों सीता का मन उसन रहा है। शायद इसलिए कि उसे स्कूल नहीं जाना है। आया की तबियत खराब होने से उसे ही दिन का खाना बनाने से लेकर शाम के लिए खाना बनाने तक के सारे काम करने पड़.गे। बकरी को दाना-पानी भी देना पड़ेगा। नहीं तो रोज सुबह उसकी आया लकड़ी बटोरकर चूल्हे म. माड़िया पेज चढ़ा देती है या भुट्टा उबाल देती है। कभी सीता के बटोर लाए अमिया से चटनी बना देती है तो कभी जंगल से भाजी लाकर उसे निमार की कुचरी बना देती है। सीता यहीं कुछ खा-पीकर स्कूल चली आती है, आज तो इन सबके साथ उसे आया की जगह साल बीज बीनने भी जाना होगा।

सीता सुबह की कुचरी के लिए घुम्मट की भाजी तोड़ने लगी। भाजी तोड़ते हुए सोचती रही कि अब बिनकी को पढ़ाई छोड़कर साल बीनने म. कैसा लगता होगा। जाने क्यों सीता को आया की इस बात पर यकीन होता ही नहीं कि बिनकी साल बीनने जाती है। वह कई-कई दिन नहीं आती, एक दिन तो उसने आधी रात को बहार तरफ जाने से देखा था कि हाथ म. एक बंदूक सी कोई चीज लेकर बिनकी अपने घर आ रही थी लेकिन बाद म. बिनकी से पूछने पर उसने बात टाल दी कि वह लकड़ी को बंदूक समझ ली है कहकर। उसके बाद से वह घर भी नहीं आई है या क्या पता यूं आधी रात को आती होगी? कहीं वह मध्कू दादा की तरह दादा तो नहीं बन गई है... बस इसके बाद सीता ने सिहरकर सोच का साथ छोड़ दिया। ऐसा होने पर अकसर सीता यादों म. एक डुबकी लगाकर बिनकी के साथ स्कूल जाने वाले दिनों में निकल आती है। सिहरन दूर होती जाती

है बिनकी के साथ की याद से। अब तो बहुत दिन हो गए हैं, बिनकी से मिले, अब तो याद. भी कम होने लगी हैं।

बिनकी का मध्कू दादा भी सीता के दादा तिनकू के साथ ही पढ़ता था, बाद म. तिनकू बड़े स्कूल म. पढ़ने दूर बड़े गांव चला गया जबकि मध्कू ने पढ़ाई छोड़ दी। सीता ने सुना है कि किसी ने मध्कू की अंकसूची फाड़ दी थी। तब से वह जंगल-जंगल घूमता है बंदूक पकड़ के। पहले मध्कू बहुत प्यार करता था- बिनकी और सीता को। गांव से लगे जंगल म. दोनों जब कूद-कूद के एक-दो आंवला पाने के लिए पत्थर मारते तो मध्कू उनके हाथ से पत्थर लेकर ऐसा निशाना साधकर मारता कि आंवले पटापट गिरते। आंवले खाकर बिनकी और सीता दोनों आंवला पेड़ के पास के हैंडपंप म. भरपेट पानी पीते। ठंडा पानी आंवला खाने के बाद और ठंडा और मीठा हो जाता लेकिन जब से मध्कू जंगल चला गया है तब से सीता को मध्कू से बहुत डर लगता है। अब तो वो उसे इधर-उधर घूमते देख लेने पर बहुत डांटता है, कहता है कि ज्यादा घूमी तो तुझे भी ले जाऊंगा-जंगल।

बहुत पहले एक दिन बिनकी और सीता दोनों आंवला खाने जा रहे थे, तभी उन लोगों ने देखा कि कुछ पुलिस के जवान आंवले के पास वाले हैंडपंप से पानी पी रहे थे। वे दोनों दो पल ठिठकीं फिर झाड़ियों के पीछे छुप गईं कि वे पुलिस की नजरों से बच जाएं तभी उन्ह. झाड़ी म. छुपकर पुलिस वालों को देखते मध्कू और उसके कुछ दोस्त दिखे। बहुत खुश दिख रहे थे वे। कुछ देर म. पुलिस के जवानों हैंडपंप से पानी पीकर आगे बढ़ गए। मध्कू लोगों ने अपना सर पीट लिया और बहुत नाराज हो गए। पुलिस जवानों के चले जाने के बाद जब सीता और बिनकी दोनों आंवले के पेड़ की ओर जाने लगे तो मध्कू ने उन्ह. कितने जोर का डांटा था कि अब यदि कभी इस हैंडपंप के आस-पास भी दिखे तो दोनों को इसी बंदूक से मार दूंगा। उस दिन सीता पहली बार मध्कू के हाथ म. बंदूक देखी थी, बिलकुल दादा लोगों जैसी बंदूक। कितना सहम गई थी वह और कई दिनों तक मध्कू से बात ही करना बंद कर दिया था। उसे सामने देखते ही कंपकंपी सी आने लगती थी। उसे समझ नहीं आया था कि हैंडपंप के पास जाने म. इतनी नाराजगी की क्या बात हो गई। क्या हैंडपंप की जमीन के नीचे कोई राक्षस छुपकर बैठा है जो उन्ह. वहां आते ही खा जाएगा? वैसे भी नादान बचपन को कहां पता होता कि प्यास बुझाने वाले हैंडपंप के आसपास और तपती सड़क के किनारे पेड़ों की घनी छांह बारूदी सुरंग बिछाने की सबसे मुफीद जगह. हुआ करती हैं...

उस दिन सीता और बिनकी ने कुछ सालों पहले के मध्कू और तिनकू को बहुत याद किया था। कहा था कि मध्कू दादा एकदम गंदे हो गए हैं जबकि तिनकू दादा अभी भी कितना अच्छा है। दोनों ने तिनकू के स्कूल म. ही पढ़ने का अपना प्रण भी कई बार दुहराया था उस दिन।

आज स्कूल नहीं जाने से सीता को स्कूल कुछ ज्यादा ही याद आ रहा है। एक बार सीता अपने आया-बुआ के साथ गई थी, तिनकू दादा के स्कूल। कितना बड़ा स्कूल है, कितनी सारी कक्षाएं हैं... कितने सारे बच्चे... कितनी सारी पुस्तक. हैं वहां। तिनकू बता रहा था कि जब जी चाहे, वहां से पुस्तक ले के पढ़ सकते हैं। खेल के समय म. खेल सकते हैं। बढ़िया खाना भी मिलता है लेकिन हां... माडिया पेज नहीं मिलता। आया-बुआ जब तिनकू दादा से मिलने जाते हैं तो बटलोई भर माडिया पेज ले के जाते हैं। वह भी जाएगी उसी स्कूल म. कुछ साल बाद, जब वह गांव के स्कूल की पूरी कक्षा पढ़ लेगी। भाजी तोड़ते हुए वह गिनती है कि अभी उसे कितने साल लग.गे गांव के

स्कूल म. पढ़ने म.... एक... दो...तीन... धड़ाम... सीता कांप गई। इतनी तेज आवाज तो उसने कभी नहीं सुनी थी। बंदूक की आवाज. उसने जरूर सुनी थी लेकिन वो तो इस आवाज के सामने कुछ भी नहीं। बंदूक की आवाज आंवला तो ये आवाज थी कुंहड़ा। सीता अंदर से हिल गई। कुछ तो बहुत ही बुरा हुआ है। कहीं पुलिस तो नहीं आ गई। वह भाजी तोड़ना छोड़कर, आया को पुकारती घर म. घुस गई। दूर स्कूल के आसमान म. काला धुआँ उठ रहा था। सीता को पता नहीं चला कि उसका स्कूल ही धुआँ हो गया है।

जब धीरे-धीरे सब कुछ पता चला तो उसकी दुनिया काले धुएं सी काली हो गई, कि वह पढ़ना चाहती है, आगे बढ़ना चाहती है, लेकिन कैसे? अब वह कैसे पढ़ पाएगी... स्कूल भवन उड़ाने के बाद और गांव से बाहर के किसी को भी गांव म. आने से मार देने की धमकी के बाद तो अब कोई सर, मैडम भी नहीं आने वाले किसे अपनी जान प्यारी नहीं होगी।

इस काले धुएं म. दम घुटने से बेचैन सीता आंगन म. घूमने लगी। ऊपर एक तेज आवाज करती हुई चील चक्कर काट रही है। एक नन्हीं चिड़िया उससे बचने की कोशिश म. है। सीता माथा पकड़ के बैठ गई। आखिर जान तो एक छोटी सी चिड़िया को भी प्यारी होती है।

अंदर घर म. मां-बाबा के बीच भी स्कूल को लेकर ही बात हो रही है। बात हो रही है कि तिनकू को छुट्टियों म. भी वापस आने के लिए मना कर दिया जाए। तिनकू तो अब तक बचा हुआ है, कहीं कुछ बड़े होते ही सीता को भी मध्कू और बिनकी के जैसे जंगल म. जाना न पड़ जाए। बेचारे दोनों की तो अंकसूची भी उन लोगों ने जला दी है। बिनकी कितना पढ़ना चाहती थी अब तो वह चाहे तो भी पढ़ भी नहीं सकती।

अब सीता के सामने साल बीनने जाने से पहले बिनकी का रोना घूम गया। पतझड़ म. जैसे लगातार पत्ते झड़ते हैं वैसे ही बिनकी लगातार रो रही थी लेकिन अब उसे पता चला कि इस पतझड़ का कारण सिर्फ मौसम का बदलना नहीं था बल्कि पेड़ की जड़ों म. दीमक लग जाना था। बिनकी नहीं पढ़ पाई क्योंकि वे उसे उठा ले गए, अपने दल म. शामिल करने और अब सीता भी नहीं पढ़ पाएगी क्योंकि उन लोगों ने स्कूल ही उड़ा दिया बारूद से। उसे अपनी अंकसूची भी जलती दिखाई देने लगी। इस की लपटों म. प्रश्नों की चिंगारियां भड़क रही थीं कि क्या अब उसे भी बिनकी जैसे, मध्कू दादा के जैसे ही बनना होगा... क्या उसकी भी अंकसूची जला दी जाएगी... क्या वह भी जंगल म. बंदूक लेकर घूमने लगेगी... क्या वह भी पुलिस को मारेगी और एक दिन खुद भी मर जाएगी। लेकिन सीता ऐसे जिंदगी तो नहीं चाहती है। वह तो चाहती है कि वह भी एक दिन मैडम के सामान बने। मैडम के सामान गाड़ी चलाए। स्कूल म. बच्चों को पढ़ाए। अब क्या होगा। आसमान म. चील की जोरदार चीत्कार सुनाई आई। उसने झटके से ऊपर देखा। चील ने झपट्टा मारकर उस नन्हीं चिड़िया को अपने पंजों म. पकड़ लिया है। उसके दिल कुछ में दरक सा गया। तभी आया ने उसे घबराई हुई आवाज म. अंदर आने के लिए कहा। वह थके- घबराए कदमों से वापस घर म. घुस गई।

स्कूल अब नहीं है। आया अकेले कहीं जाने नहीं देती है। वह दिन भर अब आया के साथ ही रहती, कुछ दिन महुआ बीनती, कुछ दिन इडुम बीनती, कुछ दिन साल बीज बीनती। एक सपना था उसके आँखों म. जो अब टूटकर उसे ही चुभने लगा था। उस चुभन के दर्द से वह हरदम उदास रहती। कभी मां की नजर बचाकर स्कूल के खंडहर म. चली जाती।

महुआ, इडुम, साल बीज... फिर महुआ, इडुम, साल बीज... समय बीत गया, वह कुछ और बड़ी हो गई... लेकिन अब जाने क्यों माँ-बाबा के चेहरों म. डर की कालिमा उभरने लगी है। अब वह बड़ी हो गई है। कुछ-कुछ समझ आने लगा है। अब बिनकी के समान उसके भी जंगल जाने के लिए आया-बुआ पर दबाव पड़ रहा है।

एक दिन रात देर तक ढिबरी जलती रही, आया-बुआ बहुत धीरे-धीरे कुछ बात. करते रहे। सीता को झींगुरों पर नाराजगी होने लगी कि ये इतनी तेज आवाज क्यों करते हैं, हवा ऐसे क्यों सनसनाती है, पेड़ों की पत्तियां इतना क्यों चिल्लाती हैं कि कुछ सुनाई न आए, यूं झल्लाते-झल्लाते ही उसकी नींद पड़ गई। सुबह डर की कालिमा पर निर्णय का उजियारा छाया हुआ लगा। सीता को बताया गया कि उसे भी अब जल्दी ही तिनकू के स्कूल म. भेज द.गे। उसका मन मयूर ऐसा नाच उठा जैसे पहले उसकी मां घोटुल म. नाचती थी। अब तो घोटुल म. नाच भी नहीं होता।

सीता के मानो छोटे-छोटे पंख निकल आए। वह चहकने लगी, फुदकने लगी, लेकिन खुशी उसकी इतनी है कि सिर्फ चहकना फुदकना उसे पर्याप्त नहीं लग रहा। वह किसी अपने से यह सब कुछ बांटना चाहती है, कह देना चाहती है कि वो इसी साल बड़े स्कूल जाएगी... भैया के स्कूल... वहां खूब पढ़ाई होती है, खूब सारे सर, मैडम हैं... अब वो भी मैडम बन सकती है... मैडम बन के वो इसी स्कूल म. पढ़ाएगी...काश कि बिनकी यहां होती लेकिन बिनकी जाने कहां होगी... सीता के लिए बिनकी एक टीस है। किसे बताए सीता? हां कोसी तो है।

सीता से रहा न गया वह दौड़ती गई, कोसी के घर की ओर। आज काली नदी उसे बहुत लंबी लग रही है। यह पूरे गांव का एक चक्कर काटकर कोसी के घर तक पहुंचती है। सीता सड़क छोड़ पुरानी पगडंडी पर उतर आई। वह दौड़ती रही, दरख्तों को पार करते हुए... झाड़ियों से सरसराते हुए... पगडंडी को रौंदते हुए... कुछ ही देर म. सामने वही आंवला का पेड़ है, उसके आगे हैंडपंप दिख रहा है... वही हैंडपंप जिसका पानी पीने से मध्कू ने मना किया था। जहां से दाहिने मुड़ते ही कुछ आगे जाकर कोसी का घर है। वह हांफ रही है... पर दौड़ रही है... अभी उसे दरख्तों, झाड़ियों का अहसास नहीं... कदम कहां पड़ रहे हैं कोई होश नहीं... वह हैंडपंप के पास से दाहिने मुड़ी और धड़ाम.....

एक पल को उसे लगा वह उड़ रही है, उसने खुद को साल के पेड़ की ऊंचाइयों म. पाया। स्कूल भवन के उड़ने के साथ उसका एक सपना टूटा था, अब इस धमाके के साथ उसके सारे सपने किरच-किरच हो बिखर गए, जैसे उसका एक पैर बिखर गया, जाने कितने कतरों म., जाने कितने लोथड़ों म.। एक तितली के पंख चिंदी-चिंदी कर दिए गए, उसके उड़ने के सपने चिंदी-चिंदी हो बिखर गए, वह खुद चिंदी-चिंदी हो बिखर गई। सीता हादसे और दर्द की भीषणता से निस्पंद जमीन पर पड़ी हुई थी। उस समय जबकि इस दुनिया म. सीता के पैर के चिथड़ों से बहता लहू अपना घेरा बढ़ाता जा रहा था। सीता के बिखरे सपने दुनिया से कह रहे थे-

ये लहू का घेरा क्यों बढ़ रहा है... बढ़ना तो हम. था। हवा म. चिथड़े क्यों उड़ रहे हैं उड़ना तो हम. था, पेड़ की ऊंचाइयों तक छिटककर ये क्यों पहुंचे हैं ऊंचाइयों तक पहुंचना तो हम. था।

जब सपने चीख-चीख कर अपने जवाब मांग रहे थे तब सीता खो चुकी थी-बेहोशी की दुनिया म.? नहीं किसी अलग ही दुनिया म.... जहां कोई दर्द ही नहीं है, न ही सपने हैं। ●

कविता

रामकुमार कृषक

मुश्किलें और कुछ

(एक)

मुश्किल से चिड़ियाएं उड़कर अपने घर तक आती हैं
पंख लगे थे इस घर में ही मुझको याद दिलाती हैं।

देख-भालकर महल-दुमहले छोटा-सा घर ठीक किया
अब उसके ही घर-आंगन को सबसे बड़ा बताती हैं।

बारहखड़ी-किताबें-कापी आँख-मिचोली रंग से
कभी-कभी मन के फागुन में अब भी रंग जमाती हैं।

दाना-दुनका चना-चबैना चिंताओं पर चिंताएं
कई बार गुमसुम मम्मी के सपनों में बतियाती हैं।

इधर जमाना बदल रहा है मौसम है आजादी का
छोड़ घोसला कई बार तो बेपर ही उड़ जाती हैं।

(दो)

इक्कीस से ज्यादा क्या होगा इक्कीस से क्या कम होगा
जो भी होगा जितना होगा अपना ही दमखम होगा

किसका चेहरा देख लिया है किसको अपशगुनी मानूं
दर्द मेरा हमसाया होगा दर्द मेरा हमदम होगा।

बिन पानी सब सून कहा है इसीलिए यह भी सच है
पत्थरदिल के दिल का भी तो कोई कोना नम होगा।
दौड़ रहे हैं लोग कहें क्या कैसी आपाधापी है

सांप और रस्सी से बढ़कर कोई नया भरम होगा।
सत्यवान तो सत्य सभी का भीतर हो या बाहर हो
सावित्री के आगे-पीछे जो भी होगा यम होगा।

यह कोई इनसाफ नहीं है जिद है ऊपरवाले की
मरना होगा पहले पीछे सबका नया जन्म होगा।

जर्रे-जर्रे में उसका ही नूर चलो यह भी माना
फिर तो काबा-काशी में भी हिरफिर वही सनम होगा।

(तीन)
मैंने अपने शेर उठाए गलियों से फुटपाथों से
और सभी के मुँह धोए हैं अपने ही इन हाथों से।

टाट-पट्टियां तख्ती-बुदके अब भी सपनों में आते
दूर निकल आया हूं बेशक कल की कलम-दवातों से।

सुबह सुहानी सोंधी संध्या रात चांदनी भाती है
अकसर ही बचकर निकला हूं फूलों सजी कनातों से।

दौर नया हैरां करता है सच पूछो डरता भी हूं
कौन बचाएगा अपनों को अपनों के आघातों से।

गीतों से लेकर गजलों तक कई बीहड़ों से गुजरा
थाम मशालें भी गुजरा हूं घोर अँधेरी रातों से।

(चार)
बंधुवा ने बुधवा से पूछा हम क्यों दीन हुए
बुधवा जी क्या कहते सुनकर कलाविहीन हुए।

जब भी जिसने पूछा उनसे क्या कुछ लिखते हो
अर्थबोध में डूबे गहरे और महीन हुए।

संवेदन का शोध-बोध से रिश्ता खोज रहे
कंप्यूटर पर जा बैठे खुद घिसी मशीन हुए।

कौन कहे ऐसे लोगों को लोग कहेंगे क्या
बाहर अर्वाचीन मगर भीतर प्राचीन हुए।

क्या कहिए उनके पौरुष को उलट-फेर भारी
ज्यों-ज्यों पौरुष-ग्रंथि बढ़ी वे पौरुषहीन हुए।

(पांच)
कौन जाने जिंदगानी कब तलक
घूमना-फिरना रहेगा जब तलक।

घूमना-फिरना रहेगा कब तलक
जिंदगी जिंदादिली है जब तलक।

जिंदगी जिंदादिली है कब तलक
दूसरों से प्यार दिल में जब तलक।

दूसरों से प्यार दिल में कब तलक
दिल में खुदगर्जी न होगी जब तलक।

दिल में खुदगर्जी न होगी कब तलक
दोस्त, खुदगर्जी न होगी जब तलक।

●

जाबिर हुसैन

ताकि तुम देख सको

बीती रात
डरते डरते, मैंने
खाब में आए
बाबा बुल्ले शाह से कहा

सरहद पार से आया हूं बाबा
कंटीले तारों को पार करके
रास्ते में, इस पार उस पार
सैकड़ों सर कटी
लाशों को लांघ कर
उनके लहू से
अपनी पोशाक भिगोकर
बंकरों में, यहां-वहां
खुली कब्रों में सोए पड़े
जवानों के बीच
अपने सूखे आँसू बहाते
झाड़ियों में छिपे
जिंदा कंकालों के झुंड देखते
यहां तक आया हूं, बाबा

हाथों में मेरे, ये जो
काली राख देख रहे हो, बाबा
कुछ जली हुई लाशों, मकानों
स्कूलों, अस्पतालों से
इकट्ठा की है, मैंने

तुम्हारे लिए
सिर्फ तुम्हारे लिए
ताकि तुम देख सको
कितनी लहूलुहान हो गई है
तुम्हारे खाबों की वो दुनिया
जिसे तुम अपने गीतों से
हमेशा चाहते थे संवारना

हमारे, और तुम्हारे
एक जैसे थे, खाब
पुरखे भी, एक ही थे
हमारे, बाबा
इसीलिए तो लाया हूं
बड़े जतन से
अपनी मुट्ठी में
ये राख!

विराम

धरती बचाने की फिकर में
ज्यादा ही कुछ
बेचैन हैं वो, इन दिनों
इस कदर कि अकसर उन्हें
अपने आसपास
व्याप रही बदबुओं का
एहसास तक नहीं होता

दिन-रात, उन्हें
चिंता रहती है
उन विचारों की
जो अजन्मे हैं

उन लिपियों की
जो मिट चुकी हैं

उन किताबों की
जिन्हें लिखा जाना
अभी बाकी है

उन फूलों की
जो अभी खिले नहीं
उन पौधों की
जिनके बीज
मिट्टी में पड़े नहीं
उन पेड़ों की
जिनकी कोंपलें
अभी फूटीं नहीं

वो कांपते रहते हैं
अपने भीतर
किसी संभावना से, जो
कभी भी
दे सकती है उनकी
लीलाओं को विराम

वो व्याकुल हैं
उस संभावना से
जो कभी भी
कर सकती है
उनकी क्रीड़ाओं का
अंत!

बच्चों का डर

फेसबुक पर
निलय की एक पोस्ट देखकर
बच्चों ने मेरी शांति
भंग करते हुए पूछा
तस्वीरों में गंगा
समुद्र की तरह अंतहीन

क्यों दिखती हैं, पापा
समुद्र से उसकी कोई
स्पर्धा है क्या

इसकी लहरें भी
समुद्र की तरह
कभी शांत, कभी अशांत
होती रहती हैं
मछुआरे अपनी नावों से
कभी मशीन कभी पतवार
के सहारे गंगा की
लहरों पर, उसी तरह
तैरते हैं, जैसे समुद्र में
फिर नदी और समुद्र में
फरक क्या है, पापा

(अजीब-अजीब सवाल पूछकर
बच्चे मुझे
आफत में डालते रहते हैं)

कुछ देर सोचकर मैंने
एक गंभीर तर्क गढ़ा
गंगा लंबी यात्रा करके
समुद्र में ही मिलती है
वही दरअसल
उसका घर है

बच्चों ने टोका, लेकिन समुद्र
क्यों नहीं आता कभी
नदी के पास, उससे मिलने

समुद्र आया तो
गांव के गांव पानी में
डूब जाएंगी
खेतों में खड़ी फसलें

तबाह हो जाएंगी
फिर हमें खाने को
अन्न कहां से मिलेगा?
मेरा तर्क
बच्चों की समझ में आ गया
उस दिन उन्होंने मुझसे फिर
कोई प्रश्न नहीं पूछा
बच्चे अन्न की बात सुनकर
डर गए थे!

डब्बू की चिंता
काफी देर से
पांच साल का डब्बू
रो रहा था
रोए जा रहा था
किसी के रोके
नहीं रुक रहा था
मना मना कर, सब
के सब, थक गए
आखिर में, पिता आए
बच्चे के रोने की रफ्तार
कुछ और तेज हो गई
पिता ने बच्चे से
रोने की वजह पूछी
आँसूओं के बीच
सिसकते, सुबकते डब्बू ने
टी वी पर चल रही
खबर का हवाला देते हुए
रुआंसी आवाज में कहा
बापू, खुदरा बाजार
बंद करने जा रही है, सरकार
तुम अब कहां
लगाओगे अपना
खोमचा!

●

आसंग घोष

पाथरूट
तीन पत्थरों की जुगाड़ से
तिपाया चूल्हा बना उस पर
एक पतला पत्थर धर
तवा बनाती हैं
हमारी औरत.
उस पर स.कती हुई रोटियां
काम पर जाने को वे अधीर हैं
मजूरी कटने का भय बैठा
हुलार. मार रहा है
कहीं मन की गहराई म. उनके

दोपहरी की छुट्टी म. दफोरी कर
बीनती हैं वे लकड़ियां
तिपाहे पत्थर के चूल्हे म. आग बार कर
पेट की आग बुझाने
बनाती हैं लोई
उसे थेपती हैं
अपने खुरदरे हाथों की
हथेलियों के बीच
उंगलियों से
बेलती हैं रोटियां,
उनके पास नहीं है थाली
कि उसम. गूंथती आराम से आटा
इसके लिए वहां बिछी हुई
फर्शी पर
वह गूंथ लेती हैं आटा

वैसे ही जैसे कि गूंथ रही हो परात म.
बर्तन के नाम पर
उनके पास एक पिचका हुआ
लोटा है
किंतु यह लोटा
जहां पेट की आग नहीं
केवल मुख की
प्यास बुझाता है
वहीं आटे म. पानी मिलाने के
काम भी आता है

पत्थरों का तिपाया चूल्हा ही
उनका हवनकुंड है
जिसम. देती हैं वे नियमित
अपने हाथों बीनी हुई लकड़ियों की आहुति
तुम्हारी तरह अन्न
घी-धूप नैवेद्य वगैरह-वगैरह
जलाना नहीं जानती
वैसे अन्न को छोड़
बाकी सब विलासिता की चीज.
उन्ह. मयस्सर है नहीं
जैसे-तैसे इस हवनकुंड म. स.क रोटी
भरती हैं वह
परिवार का पेट
जानती हैं पेट की क्षुधा शांत किए बगैर
वांछित खखरी नहीं बन पाएंगी!
और यदि नहीं बनेगी खखरी
तो वह मजूरी कहां से पाएंगी!
जंगल को आग से
आवारा जानवरों से बचाने
एक पर दूसरा फिर तीसरा
पत्थरों की ऐसी कई तहें जमा कर
बनाती हैं खखरी
तब जाकर पाती हैं वे मजूरी
पाथरूटों के पेट की आग को

बुझाने का रास्ता
पत्थरों की तपन से
हाथों को जलाते हुए
तिपाहे चूल्हे के बीच से होकर
उन्ह. झुलसाता हुआ गुजरता है।

प्रतिबंधों की नींव

हम पर लादी हुई
प्रतिबंधों की नींव म.
डाला गया
बंधनों का पहला पत्थर
शिक्षा रूपी सीढ़ी से उतर
मैं ही
निकाल फेकूंगा
नींव से बाहर

तुझे भरभरा कर
जमींदोज करने
मेरा इतना ही प्रयास
काफी होगा।

तेरा थूक

तू
आसमान पर
थूकते हुए
हम. गाली देता है
जबकि आसमान म.
नहीं है कहीं पर हम
वहां बादल हैं
बादलों के बाद कहीं होगा
तेरा तथाकथित भगवान
बस
तू आसमान पर
थूकता रह
किसी दिन

पहुंच जाएगा
तेरा थूक
आसमान म. बैठे
तेरे भगवान तक।

देशभक्ति का ठेका

खून सने हाथों म.
शराब का गिलास थामे
वो गर्मागर्म गोश्त की बोटियां
अपने नुकीले दांतों से नोचता हुआ
दाढ़ों म. चाभ रहा है
नरमांस!
नोचने और चाभने के बीच की अवधि म.
वह जोर-जोर से चिल्ला रहा है
इसे मारो!
उसे मारो!
ये देशद्रोही है!
जयघोष करता हुआ
वह हाथ भी खोल देता है
रसीदता है एकाधिक थप्पड़
अपने विरोधी के गालों पर
जिसे कई लोगों ने
मुश्कों से पकड़े, जकड़े रखा है
उस आदमी को
देशद्रोही होने का
सर्टिफिकेट भी
यही नुकीले दांतों वाला नरभक्षी
बांटता है
उसे इस वहशीपने का ठेका
आखिर दिया किसने?

●

अनंत मिश्र

बुढ़ापे का आगमन

जब कुर्सी से उठाते हुए
दोनों हत्थों पर
हाथ लगाकर उठना पड़े
तो समझो बुढ़ापा आ गया
जब देर तक खड़े रहने पर
हिलना-डुलना पड़े तो
समझो बुढ़ापा आ गया
जब चीजें भूलने लगें
आँखों से दवाओं के बावजूद
पानी आए
दर्द कहीं भी उठता रहे
तो समझो बुढ़ापा आ गया
जब लोग साथ संकोच से ले जाएं
सानंद नहीं
तो समझो बुढ़ापा आ गया
जब बच्चे यह सोचने लगें
कि इनका आदर किया जाए
और इनकी बातों का आदर न किया जाए
तो समझो बुढ़ापा आ गया
जब यह चिंता सताए कि
नहीं टहले सुबह तो
सेहत ठीक नहीं रहेगी
जब कोई भी आदमी
योग और ध्यान
पेट को ठीक रखने का नुस्खा सुझाए
और उम्रदराज उसको

पवित्र वचन की तरह सुनने लगें
तो समझो बुढ़ापा आ गया
जब स्वास्थ्य और पैसों को
बचाने का प्रयत्न
आत्मा से शुरू हो जाए
तो समझो बढ़ापा आ गया।

हत्यारे

टहलते हुए जा रहा था
एक आदमी सड़क के किनारे
पेड़ की डालियां काट रहा था
मेरा तो भीतर से कुछ घायल हो रहा था
वह आदमी अत्यंत प्रसन्न था कि
वह अपना काटने का काम
बखूबी कर रहा था
कई बार गुजरा हूं
कसाइयों की दुकानों के सामने से
वे लटकाए रहते हैं
गला रेतकर उलटा बकरा
और चमड़ी उतारते रहते हैं
साथ-साथ हांक भी लगाते हैं
आइए, आइए
ताजा है गोश्त!
मैं गुजरता हूं सड़क पर देखते
गाड़ियों में भेजे जाते हैं
पशु और मुर्गे
मुर्गियां, चूजे, बकरियां, बकरे
उनका जो होगा
सोचकर दुःखी होता हूं
अब क्या कहूं
हत्यारे कविताओं पर भारी हैं
और मेरा मन
मुझ पर भारी।

खबर बनने के लिए

एक दिन यह कोढ़ी भी मर जाएगा
जैसे मर गए अटल बिहारी वाजपेयी
मर गए गांधी और नेहरू
मर गए सुभाष चंद्र बोस
और मर गए बुद्ध, ईसा, मूसा
पैगंबर, बड़े-बड़े तथाकथित लोग
फर्क यह है कि यह कोढ़ी भीख मांगकर
जीते हुए मरेगा
वे दुनिया को तथाकथित ज्ञान
और उपदेश
प्रशासन और व्यवस्था
हिंसा या अहिंसा देकर मरे
मरना है इसलिए जीना है
चाहे भीख मांगो
चाहे वोट, बात बराबर है
हां मरने के बाद समाजवाद नहीं है
यह कोढ़ी जलाया जाएगा
या दफनाया जाएगा
कोई खबर नहीं बनेगी
आदमी का सारा इंतजाम
मौत के बाद
खबर बनने के लिए है।

चिड़िया की चिंता

चिड़ियों को चिंता नहीं है
घरों की घोसलों की
जो बुनती हैं
गिर जाने पर बहुत पछताती नहीं
न जताती हैं खेद
मनाती नहीं शोक
चिड़िया को चिंता है तो
पर की
क्योंकि आसमान में उड़ने की
उनकी सबसे बड़ी गरिमा

छिन जाने का डर है।

गजल

कुछ किताबों को पढ़ लिया मैंने
जिंदगी व्यर्थ कर लिया मैंने
व्यर्थ के शब्द मुझे घेरे हैं
उन्हें ईश्वर समझ लिया मैंने।
जिंदगी में अनेक चीजें थीं
उन्हें समझा कभी नहीं मैंने।
जहां आँखें गईं वहीं देखा
खूबसूरती को पी लिया मैंने।
जिंदगी की उदास आँखों में
शाम को स्याह कर लिया मैंने।

●

सुधीर सक्सेना

ब्रह्मपुत्र

(एक)

पुलिन पर खड़ा कवि
निहारता है नदी को
नदी निहारती है
कवि को
दोनों अनझप अवाक
कवि के सीने म. उमड़ता है प्यार
नदी म. भी उमड़ता है प्यार
प्रतिपल, अहर्निश, अपार
कवि मुग्ध
अहा, कितना चौड़ा है नदी का पाट
ब्रह्मपुत्र म. झिलमिलाता है कवि का चेहरा
ब्रह्मपुत्र के सीने म. धड़कता है कवि का हृदय
कवि के हृदय म. बहती है नदी
सोचती है नदी
अहा! कितना चौड़ा है कवि के हृदय का पाट

(दो)

ब्रह्मपुत्र के तटों पर आज भी
चहलकदमी करता है चुकफा
ब्रह्मपुत्र की स्मृति म. संचित है चुकफा का शौर्य
चुकफा पर निसार है ब्रह्मपुत्र
आशीबती है चुकफा को ब्रह्मपुत्र
वह जो ब्रह्मपुत्र का पानी

कभी-कभी दिखाई देता है लाल
वह कुछ और नहीं
विस्मय कदापि नहीं
ब्रह्मपुत्र की लहरों म. कभी-कभार
धोने चला आता है चुकफा
अपना रक्त स्नान खड्ग।

(तीन)
गूगल पर तलाश कर.
यानी नक्शे म.
कहीं नहीं मिलेगा पलाशबाड़ी
कि कोई भी चिट्ठीरसां नहीं जानता पलाशबाड़ी
कोई भी कूरियर बुक नहीं करता पलाशबाड़ी का पार्सल
विदा के पहले ही मोर्स प्रणाली के लिए
बेमानी हो गए थे तार
पलाशबाड़ी म. अब उतरती नहीं
नमक की बोरियां, बारदाने और सुपाड़ियों की खेप
नौकाएं और पोत भी भूल गये पलाशबाड़ी
विदा हो गयी यकबयक अंडी-रेशम की सरसर
व्यर्थ रहा अर्घ्य, निरर्थक मन्नत.
पलाशबाड़ी म. बजती नहीं शहनाई
पलाशबाड़ी म. गूंजती नहीं उलूक-ध्वनि
और तो और, पलाशबाड़ी म. सुनाई नहीं देता
स्त्रियों का विलाप।

(चार)
नहीं, नहीं
आप आभासी दुनिया म. गिन नहीं सकते
पलाशबाड़ी को
कल्पनालोक से कोई वास्ता नहीं पलाशबाड़ी का
वास्तव था पलाशबाड़ी, वास्तव पलाशबाड़ी का वैभव
विकासनगर म. सयानों की स्मृति म.
अभी भी स्पंदित है निस्पंद हुआ पलाशबाड़ी

पलाशबाड़ी द्वारका नहीं था
और न पलाशबाड़ी का रिश्ता था
किसी कान्हा से
कि लिखा जाता उसका आख्यान
जिस ब्रह्मपुत्र ने रचा था पलाशबाड़ी का सौभाग्य
उसी ब्रह्मपुत्र म. एकदा समा गई पलाशबाड़ी
मत खोजो!
लहरों म. जनमी, लहरों म. मिटी पलाशबाड़ी को
ब्रह्मपुत्र की लहरों के सिवाय
कोई नहीं जानता सृष्टि म.
पलाशबाड़ी का पता-ठिकाना।

●

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा से प्रकाशित

पुस्तक समीक्षा केंद्रित द्वैमासिक पत्रिका

पुस्तक वार्ता

वार्षिक सदस्यता शुल्क- 300/ (व्यक्तिगत) एवं 370/ (संस्थागत)

संपादक - अशोक मिश्र

सहायक-संपादक - अमित कुमार विश्वास

कुमार अनुपम

यात्रा

हम चले
तो घास न हटकर हमें रास्ता दिया
हमारे कदमों से
छोटी पड़ जाती थीं पगडंडियां
हम घूमते रहे
घूमती हुई पगडंडियों के साथ
हमारी लगभग थकान के आगे
हाजी नूरुल्ला का खेत मिलता था
जिसके गन्नों ने
हमें
निराश नहीं किया कभी
यह उन दिनों की बात है जब
हमारी राह देखती रहती थी
एक नदी
हमने नदी से कुछ नहीं छुपाया
नदी पर चलाए हाथ-पांव
जरूरी एक लड़ाई-सी लड़ी
नदी ने
धारा के खिलाफ
हमें तैरना सिखाया।

और फिर आत्महत्या के विरूद्ध

यह जो समय है
सूदखोर कलूटा सफेद दाग से चितकबरे जिस्मवाला
रात-दिन तकादा करता है
भीड़ ही भीड़

लगाती है ठहाका
कि गायबाना जिस्म हवा का और पिसता है
छोड़ता हूं उच्छवास...
उच्छवास...
कि कठिनतम पलों में
जिसमें की ही आक्सीजन
अंततः जिजीविषा का विश्वास...
कहता हूं कि जीवन जो एक विडंबना है
गो कि कहना मना है
कहता हूं
कि सोचना ही पड़ रहा है
कुछ और करने के बारे में
क्योंकि कम लग रहा है
अब तो मरना भी।

इतवार की इस दोपहर

ख्वाब और खालिश
से भरी हैं मेरी ख्वाहिशें
इस निचाट दोपहर
जब प्रचंड है धूप
एक कबूतर
दीवार की संध में
'सेह' रहा है अपना अंडा
शुभेच्छा का करते हुए उद्घोष
कुछ लोग
सड़क साफ करने निकल आए हैं अप्रत्याशित
कुछ लोग हैं जो अचंभित
झांक रहे हैं अपने परकोटों से
एक फूल
की और उज्ज्वल हो गई है हँसी
इतवार की इस दोपहर
जब बाहर धूप है चटख
एक बच्ची
अपनी आर्ट-कॉपी में
पैदा कर रही है एक नई नदी

साफ-सुथरा जल बना रही है
इतवार की इस दोपहर
जब धूप और धूल है अथाह
मैं याद करता हूं
अब तक की यात्रा में
कितनी-कितनी भटकनों ने काटा मेरा रास्ता
ठिठक रहा
कितने शब्दों के समक्ष विनम्रता से
उनके भीतर से फूटती हुई
पुरखा-कंठों की
ध्वनियों से मांगता हुआ अर्थ
एक स्वाद
याद आ रहा है अपरिचित स्नेह का
और एक महानगरीय मित्र
की महिमामयी मीटिंग की व्यस्तता
इतवार की इस दोपहर
जब धूप और धूल बेपनाह
और भूख है
कि धैर्य नहीं धरती है...।

छियो राम छियो

राप्ती के जल में
चेहरे तिरते हैं पुरखों के
जैसे बर्फ में दबी
एक नदी की गति
पहाड़
इच्छा से ऊंचे कभी नहीं रहे
जानते हैं यह
मैदान के बनजारे
उनके मौसमों के चोगे
धुले जाते हैं अब भी आठों याम
गाते हुए
छियो राम छियो
छियो राम छियो...!

●

शंकरानंद

खेत में

इन दिनों खेत बदल रहे हैं
उसकी मिट्टी का रंग नया है
उससे उड़ती धूल हवा को रंगीन बना देती है

मैं अकसर खेतों की तसवीर खींच लेता हूं
फिर मिलाता हूं एक को दूसरे से
इससे पता चलता है कि खेत कितना बदल गए
मिट्टी भी बदल गई मौसम के साथ

जो खेत बंजर हैं एक तस्वीर में
धरती फट गई है
सूख गई है जिसकी घास

उसी खेत की दूसरी तस्वीर अलग है
वहां लहलहा रहे हैं पौधे
झूल रहे हैं दाने हवा की दिशा के साथ

ये हर बार बताते हैं कि हमारे बंजर होने पर मत जाओ
आज उजाड़ है
लेकिन
अभी बसंत का आना बाकी है

रंग के लिए

वे बच्चे रंग रहे हैं खिलौने
अलग-अलग भाग के लिए रंग अलग
उसकी गहराई अलग

बहुत नाजुक हैं उनके हाथ
रंग करते कांपते नहीं लेकिन
इतनी बारीकी से सजाते हैं वे खिलौने
कि देखते ही वाह!!

न जाने इस काम के लिए
कितना अभ्यास किया होगा उन बच्चों ने
कितनी थाप खाई होगी
तब जाकर ये कला इतना निखर गई
कि मिट्टी को भी रंगों से तैयार कर जिंदा कर रहे हैं वे

और खुद मर रहे हैं चुपचाप।

रोने का समय

जब विदा हो रही है लड़की
उसके साथ सब रो रहे हैं
हर आँख उदास है

हर चेहरा नम
हर आवाज कमजोर
इससे कठिन पल कोई नहीं
ये एक रोने का समय है
चलती घड़ी की सूई की तरह जिसे बीत जाना चाहिए
पर नहीं हुआ अकसर

वे लड़कियां जो एक बार रोईं विदा होते
फिर कभी खत्म नहीं हुआ उनका रोना
कभी धीमी तो कभी तेज
अकसर सिसकी गूंजती है
उसे सुनने वाला कोई नहीं
जो पोंछ दे आँख
और कहे कि मत रो मैं हूं न तुम्हारे पास
न वे किसी से कुछ नहीं कहती हैं

न जाने कितनी लड़कियां इस उम्मीद में मर जाती हैं

जो बचती है वह एक घरेलू स्त्री है
जिसके पास अपना नाम भी नहीं!

चाभी
यह एक उपाय है अब
यदि आप कुछ छिपाकर रखना चाहते हैं तो
अब यह एक अन्याय भी है
कि आप हर चीज ताले में बंद कर रखें
हर चीज पर सिर्फ आपका ही हक हो ये जरूरी तो नहीं
पर यही अब ज्यादा है

कोई दानों को बंद कर ताला मार देता है
कोई पानी
कोई रास्ता बंद कर देता है
कोई आवाज पर ही लगा देता है ताला
हर चीज इसके दायरे में ले ली गई है
और चाभी उनकी जेब में है।

पहचान
अगर बात करने की इच्छा हो तो
बहुत दिन बाद मिला आदमी भी पहचान में आ जाता है
फिर आवाज देते हैं
बताते हैं पहली मुलाकात के संस्मरण
कि कुछ याद आ जाए
इच्छा न हुई तो फिर कोई बात नहीं
मुँह फेरना काफी है अब
जैसे मुझे पहचानते ही नहीं। ●

प्रांजल धर

दरवाजे

उनके पीछे जनता का बल है
वे जब चमचमाती बत्ती वाली कार से उतरते हैं
तो आगे बढ़ती है दर-दर भटकने वाली जनता
दरवाजा खोलने के लिए
लेकिन जनता को नहीं नसीब है घर
घर के दरवाजों की तो बात ही दूर है
बचपन म. कभी-कभी सुनते थे
'खुला खेल फर्रुक्खाबादी'
अब इसका मतलब यही जाना है
कि ऐसा खेल, जहां मैदान म. दरवाजे ही न हों
या फिर ऐसा खेल, जिसे बचते हुए एकांत म. खेला जाए
या ऐसा, जहां खुद खेल को ही इतना वैध बना दिया जाए
कि उसे छिपाने की या किसी दरवाजे की कोई जरूरत ही न पड़े
या फिर कोई घुसे अगले दरवाजे से और निकले पिछले वाले से
सुरक्षा देने वाले दरवाजे सुरक्षा का विलोम हो जाते

बड़े दरवाजों म. छोटे-छोटे दरवाजे हैं
प्रतिष्ठा और लाभ की काया देखकर
उचित आकार के दरवाजे खोल दिए जाते
पार्श्व म. एक गीत बजाते हुए
'जोगी जब से तू आया मेरे द्वारे'

दीवार, दस्तक, आहट, मन और दरवाजा
एक ही परिवार के सदस्य रहे लेकिन
बहुतों के मन पर दी दस्तक पर पसीजा नहीं मन उनका
मन का दरवाजा ऐसा होता गया
जिसकी सांकल खोलते आशंकाएं फैलतीं हवाओं म.
जहां कम ही लोग दे पाते दस्तक शहरों म.

किवाड़ खोलूं तो दहशत पसर जाती भीतर एक विकराल
सारे दरवाजों को तोड़ सकने वाली बारूदी एक दहशत

दहशत म. दरवाजे हैं, घर भी और घरवाले भी
आधा ही दरवाजा खोल बच्चा लेता डाकिये से चिट्ठियां
दरवाजे से रोकी जाती दहशत
दरवाजे तोड़कर लूटी जाती आबरू
दरवाजे खोलकर दिए जाते दान
दरवाजे लगाकर होता घर का बंटवारा
अपने दरवाजे से ज्यादा फिक्र इस बात की होती
कि कौन आया सामने वाले दरवाजे पर
सुना कि सौभाग्य दरवाजा खटखटाता है सिर्फ एक बार
और दुर्भाग्य तब तक, जब तक दरवाजा खुल नहीं जाता
मोटे कांच के दरवाजों के पीछे परदे हैं रेशमी
रंगीन परदों के पीछे गिलास हैं पारदर्शी
उसम. तरल भी पारदर्शी
गोलमेज पर चल रहीं चर्चाएं पारदर्शी
इन सारे खुले दरवाजों के लिए
परदा काम करता एक अपारदर्शी दरवाजे का
परदे के पीछे नाटक पारदर्शिता का
किसी बड़े कवि को नीचा दिखाने का
किसी अदने कहानीकार को प्रेमचंद बताने का
खुले हैं हाथ और फैली हैं बांह.
दसों दिाओं तक अपनी बारीक अनुभूतियां पसारते हुए
गिद्धों को कौआ, और कौओं को हंस बताते हुए
बंद दरवाजों म. पूरी धौ-धौ मारी है
क्या कर., लाचारी है, इसलिए कौओं को ही हँस मानना पड़ता
नहीं तो सत्ता से टपकती पारदर्शी द्रव की रसीली बूंद.
खत्म कर दी जाएंगी इस जिंदगी से
नहीं तो बौद्धिकता और ईमानदारी विलाप करने लग.गी
हम नहीं सुन पाएंगे इन बंद दरवाजों म. उनकी चीख.
समय जटिल है, जटिल इसे समझना
और भी जटिल समय के साथ चलना
इसलिए ईमानदारी के भूत को कुछ दशकों के लिए
सुला लो विलासिता की लोरी सुनाकर

दरवाजे के बाहर हर प्रबंधन का नकार करो
और भीतर हर नकार का प्रबंधन

या फिर ये उम्मीद मत करो
कि दौड़े जनता आपकी कार का दरवाजा खोलने
चमचमाती बत्ती वाली कार का
कई लोग तो दरवाजे पर ही पड़े रहे तब तक
जब तक उनका काम नहीं सिद्ध हो गया
बाद म. वे तराई के गादुर हो गए

चाकू
लोहे से बना एक चाकू मेरे घर म.
बाबा के लोहार दोस्त का बनाया हुआ
बेकार-से लोहे को पीट-पीटकर गढ़ा हुआ
बुआ, बहन, मां और पत्नी काटतीं सब्जियां इससे
धार कुंद है अब सब्जी भी नहीं कटती इससे
कोई पारस पत्थर नहीं मिला इस चाकू को
और वधिकों के घर रखे चाकुओं का रंग सुनहला होता गया
'सो दुविधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरौ'
चाकू प्रतीक बन जाता एक कटार की शक्ल म.
जब सिख रखते इसे बहुत इज्जत के साथ

रामपुरी चाकू से तो खैर डरते सभी लोग
खाली कर देते अपनी जेब. पूरी तरह
जैसे स्खलित हो गया हो समुद्र
अंग्रेजों ने बनाए प्लास्टिक के चाकू
जन्मदिन पर केक काटने के लिए
चाकू पर शान देने वाले तमाम फेरीवाले बेरोजगार
प्लास्टिक के चाकुओं से फल नहीं कटता
कटहल नहीं कटता
पहले लोहे के पुराने सामान कबाड़ी वाले को देकर
बदले म. मिलता था लोहे का चाकू एक नया
बाद म. पैसे से खुले बाजार म. मिलने लगा चाकू
फिर पैसा ही चाकू हो गया
जो काटता दिन-रात तमाम बंधनों को

और आत्मतोष के लिए कहा जाता
कि बंधनों से मुक्ति जरूरी है।

संदेह की बांह.

उन्हीं पंक्तियों को बहुत बार पढ़ा गया
रात म. और दिन म.
शब्दों का अर्थ समझने के कयास लगाए गए
लालटेन की जगह टेबल लैंप आया
कलम की जगह की-बोर्ड
दिमाग की जगह कंप्यूटर
और पत्रों की जगह ईमेल और इंटरनेट
उन्हीं पंक्तियों को फिर पढ़ा गया
निकाले गए मायने मनमाफिक
और निश्चितता को संदिग्ध कर दिया गया
संदेह की बांह. फैलायी गयीं।

सर्वसम्मति वाले फैसले

सर्वसम्मति से लिए गए सारे फैसलों पर
सबसे पहले सवाल उठाता यह मन
गरीब की जोरू, सबकी भौजाई वाला हाल
जिन्ह. मत देना था बैठक म.
उन्हीं की मति मारी गयी सबसे पहले
सफेदपोश हत्यारों की मौजूदगी म.
पूरे उठते हाथ आधे ही उठे, बाकी मौन
और मौन को अर्द्ध-स्वीकृति मानकर
गढ़ी गयी एक रिरियाती हुई सर्वसम्मति
तय किये गए किसी देश म.
न्यूनतम समर्थन मूल्य और
तय की गयीं फसल-बीमा की दर.,
विदेशी भाषा म. लिखी होने के कारण
नहीं पढ़ सके किसान उत्पादन की नए तरीके
सोते हैं अब वे बच्चों के साथ अपने
कांटों की शय्या पर मरने तक
जबकि फैसले सर्वसम्मति से लिए गए थे। ●

कला की गतिशीलता

प्रयाग शुक्ल

कला गतिशील है। हर क्षण। हर समय। उसके पहिए घूम रहे हैं, या घूमने लग सकते हैं, एक संकेत मात्र से। एक छुअन से। एक पुकार से। एक स्मरण से। इस गतिशीलता को कलाकार, वह कलाकार, अच्छी तरह अनुभव करता है, जानता है, जिसने उसे कभी 'पुकारा' है, चाहा है, कि वह रचे, कुछ बनाए, कुछ व्यक्त करे, और रचने के औजार उठाते ही, वह पाता है कि कुछ चलने लगा है, उसके भीतर, उसके बाहर, उसके सामने उसके दाएं-बाएं। उसकी पीठ के पीछे भी। वह अनुभव करता है कि कला-अनुभव, कला-क्षण, सो नहीं रहा था, उसके भीतर-बाहर, सब तरफ वह था, स्थिर, और चंचल। हां, दोनों ही। बस उसे, उसके दोनों रूपों को, स्थिर और चंचल रूपों को, उसने छू भर दिया है, और वे गतिशील हो उठे हैं, सरक रहे हैं, धीरे-धीरे, या तेज-गति से। वे सो नहीं रहे थे। नींद म. कलाकार भी नहीं था, या सो रहा था तो वही सो रहा था, कला के पहिए सो नहीं रहे थे। सो रहे होते तो एकदम से नहीं चल पड़ सकते थे। और कोई भी कलाकार, संवेदनशील कलाकार यह अच्छी तरह जानता-मानता है कि किसी सोए हुए को उठाना अच्छी बात नहीं होती है। वह कला-अनुभव को, कला-सर्जना को, छूता, और पुकारता है, तो यही मानकर कि वह जाग रहा है। और उसने जागे हुए ही तो, जागृति अवस्था म. ही तो, अनुभव किए हैं, एकत्र किए हैं, संजोए हैं, वे अनुभव, वे मर्म जो अब किसी रूप म., व्यक्त होने को व्यग्र हो उठे हैं!

आधुनिक कला म. हमने अपने यहां वी.एस. गायतोंडे को (वासुदेव एस. गायतोंडे) ऐसे ही एक कलाकार के रूप म. तो देखा और जाना है, जो घंटों, दिनों, महीनों, हां संभवत : महीनों, एक खाली कैनवास को देखता रहता था, ईजल पर रखा हुआ और सामान्य रूप से अपने दैनंदिन कामकाज किया करता था, फिर वह क्षण आता था, मानों पहले से ही जागा हुआ क्षण, स्थिर और गतिशील क्षण, और उस खाली कैनवास पर आकार, संकेत-चिह्न, सब उभरने लगते थे। वही आकार, वही बिंब, वही संकेत-चिह्न, जो आज दुनिया भर म. सराहे जा रहे हैं, उनकी प्रदर्शनियां हो रही हैं, और अगर बाजार-मूल्य से भी कला को आंकना हो तो उनकी बिक्री से इकट्ठा होने वाली राशि कुछ भी हो सकती है, करोड़ों म.

पर, अभी उसकी चर्चा और नहीं कर.गे। उसकी जरूरत भी नहीं है। सिवाय इतना कहकर बाजार-अध्याय को बंद कर द.गे कि समाजों म., कला के भावकों म., कला-प्रेमियों म. सामान्य जनों म. कला के गतिशील होने का एक प्रमाण तो है ही यह भी, यह बाजार भाव, जो आज के मीडियाशील

समाजों म. कला की गतिशीलता के नगाड़े इस रूप म., पीट रहा होता है कि कला का असली मर्म ही छिप जाए, दब जाए!

पर, भला वह मर्म कभी दबता है, कभी दबाया जा सकता है, प्रमाण है, इंगिति है, वॉन गाग की कृतियांऔर उनकी, उनके जीवन की सच्चाइयां और किंवदंतियां! कला की गतिशीलता, उसकी ऊर्जामय गतिशीलता ही तो प्रकट है, वॉन गाग की कृतियों म.। न जाने कितने थपेड़े, कितनी कड़ी मार. झेलकर भी वॉन गाग ने यह विश्वास नहीं खोया था कि एक कला-मर्म होता है, जो जीवन के, प्रकृति के, कई रूप उजागर कर सकता है, और वह गतिशील बना रह सकता है। कितना गहरा था यह विश्वास, जो उसके भाई थियो को लिखे गए उसके पत्रों से प्रकट होता है, और हम पाते हैं कि सिर्फ चित्रों म. ही नहीं, कला की गतिशीलता उसके शब्दों म. भी प्रकट हो रही है, कितनी सुंदरता से। ये पत्र अब राजुला शाह के अनुवाद म.बड़े प्रखर और सुलझे हुए अनुवाद म.'मुझ पर भरोसा रखना' नामक पुस्तक म. हिंदी म. भी उपलब्ध हैं! अप्रतिम कवि और हां, चित्रकार भी, शमशेर बहादुर सिंह की वॉन गाग पर लिखी कविता, जो पूरी की पूरी ही यहां उद्धृत है-

शमशेर बहादुर सिंह
फ़ान गॉन का एक चित्र
(जो अज्ञेयजी के ड्राइंगरूम म. कभी देखा था)
सोने का एक ज्वार उठा----
औ
गहरे नीले अनगिन पंखों से
नीले अनगिन फेनिल पंखों से
उसे ढांप लेने को
व्यर्थ व्यर्थ---
उड्डा बवंडर,
जिधर देखो उधर वह
गहरी सुनहरी मौज
मौज म. है
दूर-दूर तक---
और एक नन्हीं बटिया-सा मैं
उसी म.
खो गया
चिड़ियों की डार जैसे
तीर-सी उड़ती आए
-और घने झुरमुटों म. कहीं
खो जाए
ज्या-दूर-दूर दिशाओं म.
हर-हर करता

ऊपर-नीचे
चारों ओर
इसलिए तमसा-से काले काग
झुंड-के-झुंड गहरे नीले-काले
काक-रोर करते
ढक लेने उसे
मानो छा ही ल.गे उसे
लील ही जाएंगे वे ज्वार को
ऐसे
उमंगे-उमंगे
लीन हुए
बार-बार आते वो
बार-बार!
व्यर्थ
व्यर्थ!

वॉन गाग का नाम शमशेरजी ने जिस रूप म. दिया है, उसी रूप म. यहां अंकित है, प्रसंगवश याद कर सकते हैं कि विसेंट वॉन गो नाम की वर्तनी कई रूपों म. लिखी जाती रही है। इसके अतिरिक्त शमशेरजी की 'पिकासोई कला' शीर्षक से दो पृष्ठों की एक और कविता है : उसकी ये पंक्तियां भी दृष्टव्य है -

कसा हुआ मंच/सिरजन और संयमन/
होने-होने को जो क्षण-क्षण/उसी अनागत का/
स्वागत निरंतर/पिकासोई कला।

यहीं यह भी याद कर सकते हैं कि यह भी कला की गतिशीलता ही है जो दूसरी विधाओं म. पूरी ऊर्जा के साथ प्रवेश कर जाती है, उन दूसरी विधाओं के रचनाकार इस हद तक उस ऊर्जा से आप्लावित हो उठते हैं कि अपनी-अपनी विधाओं म. उस ऊर्जा को एक प्रणति द.। शमशेरजी की यह एक कविता, वान गो को, उनकी कला को, एक प्रणति ही तो है।

कला की यह गतिशीलता यह ऊर्जा उनको भी स्पर्श करती है, जो उस कला की संस्कृति और समाज से भिन्न होते हैं, जहां वह रची गयी है। आज से कोई पंद्रह-वर्ष पहले, 2001 के आसपास से, मैं पांच-छह बरस तक अजंता-एलोरा जाया करता था दिसंबर के महीने म.। इन यात्राओं का एक प्रसंग यह भी था कि तब मैं 'रंग प्रसंग' पत्रिका के संपादक के रूप म. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से जुड़ा हुआ था, और प्रथम वर्ष के छात्र-छात्राओं की एक टोली मेरे साथ हुआ करती थी। उनके साथ एक-दो फेरे लगाकर, वहाँ की कलाकृतियों की चर्चा करके, अपने किसी प्रिय कोने, या चित्र-शिल्प की छाया म. बैठ जाया करता था। अजंता की मेरी प्रिय जगह वह है, जहां आकाश म. उड़ती हुई अप्सरा अंकित है। यह बहुत प्रसारित हुई है, पोस्टरों, छायाचित्रों में, प्रिंट्स म.। तो मैं वहां बैठ जाया करता था, एक ओर फर्श पर, आधा घंटा, पंद्रह मिनट और अप्सरा की ओर देखा करता था। अच्छा लगता

था। कुछ है उस उड़ान म., उसकी सुंदरता म., जिससे आप सम्मोहित होते हैं। कला का, रचाव का भी एक बोध वह छवि आप तक पहुंचाती है। एक बार क्या हुआ कि मेरी ही उम्र की एक विदेशी महिला को मैंने उस अप्सरा की ओर सम्मोहित-की सी अवस्था म. ताकते हुए पाया। थोड़ी देर बाद कुछ आग्रहपूर्वक, संकोच से, उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या यह अप्सरा-चित्र मुझे बहुत पसंद है? मैंने 'हां' म. उत्तर दिया। सवाल उन्होंने खड़े-खड़े ही पूछा था, फिर बोलीं, क्या मैं भी फर्श पर बैठ सकती हूं? मैंने उत्तर दिया, 'क्यों नहीं?' फर्श पर बैठकर मुझसे मुखातिब होकर, उन्होंने कहा, 'मैं साल-दो साल म. यहां आती हूं। इसकी ओर जरूर देखती हूं। अच्छा लगता है।'

थोड़ी बहुत चर्चा के बाद फिर हम दोनों अप्सरा की ओर देखते हुए कुछ देर बैठे रहे! कोई हमसे पूछे या पूछता कि ऐसा करने से मुझे और उन महिला को क्या मिल रहा है, तो भला हम क्या बताते या बता सकते हैं। कुछ चर्चा जरूर कर सकते हैं। पर, उस कला-बोध को तो बस हम गहरे म. अनुभव भर करते रहे हैं, कर सकते हैं! कोई अच्छी कृति हम. गति ही तो देती है, विचारों-भावों-मनः स्थितियों आदि की एक गति। और वह हमारे भीतर जारी रह सकती है, यही महत्वपूर्ण है। तो कला की गतिशीलता के अनेक पहलू हैं। जाहिर है, जैसा कि पहले भी जिक्र कर चुके हैं, हम फिलहाल रूपंकर कला की बात कर रहे हैं, वैसे तो कला के दायरे म. कई कलाएं आ जाती हैं, जिनसे रुपंकर कला संवाद करती हैः कविता से, संगीत से, नृत्य से, रंगमंच से, फिल्म से। इस संवाद धरातल की चर्चा हम आगे और कर.गे। कुछ अभी। दरअसल कला की इस प्रकार की गतिशीलता से यह नतीजा निकाल लेना गलत नहीं होगा कि कोई भी कला होती तो स्वायत्त भी है, तभी हम चित्रकला को अलग से गिनाते हैं, रंगकर्म को अलग से, नृत्य, संगीत, फिल्म को अलग से पर साथ ही यह भी देखते हैं कि कोई भी कला और कलाकार, अन्य कला रूपों के प्रति जितना संवेदित होगा, जितना प्रभाव और स्पर्श दूसरे कला-रूपों से उस तक आएगा उतना ही उसकी कला के लिए अच्छा होगा, और उसका सिरजा हुआ अधिक मर्म भरा, अपने रूप, और सूक्ष्म अनुभव, के साथ ही विस्तारित होगा। अकेली चित्रकला की दुनिया म. देख., और फिर याद कर. तो अन्य कला-रूपों से उसके संस्पर्श के उदाहरण सदियों से मिलते आए हैं, पूर्व और पश्चिम, दोनों की ही चित्रकला म.। हमारे मिनियेचर चित्र, बहुतेरे; साहित्य और संगीत के स्पर्श से सुवासित हैं, फिर रवींद्रनाथ ठाकुर से लेकर, मकबूल फिदा हुसैन, स्वामीनाथन, रामकुमार, गणेश पाइन, जोगेन चौधरी, अर्पिता सिंह आदि की कृतियों म. अन्य कला-रूपों की भी एक उपस्थिति, किसी न किसी रूप म., हम. मिलती या झलकती है।

पश्चिम के कलाकारों म. पाब्लो पिकासो, बरॉक, डाली जैसे नाम हैं, जिनका साहित्य, संगीत, नृत्य आदि से भी गहरा रिश्ता रहा है। पूरा का पूरा सररियलिस्ट मूवम.ट तो इसका एक बड़ा प्रमाण है ही, जिसम. कवि-चिंतक आंद्रे ब्रेतां, फिल्मकार बुनुएल, चित्रकार डाली आदि जुड़े, और साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार विजेता मेक्सिकी कवि और कला चिंतक ओक्तावियो पॉज भी तो एक समय इस मंडली के साथ रहे थे। और यही पॉज जब दिल्ली म. मेक्सिको के राजदूत बनकर आए तो उनकी मैत्री स्वामीनाथन से हुई। दोनों, एक-दूसरे के व्यक्तित्व और कामकाज से प्रभावित हुए और पॉज ने 'ग्रुप 1890' की प्रदर्शनी का कैटलॉग लिखा। 1963 म. इस प्रदर्शनी का उद्घाटन किया था तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने। इस मंडली के अंबादास, जेराम पटेल, ज्योति भट्ट, हिम्मत शाह, गुलाम मोहम्मद शेख, ने निश्चय ही नए रूपों की, अपनी कला म. अवतारणा की। स्वामीनाथन का

योगदान तो इस रूप म. भी अविस्मरणीय है कि जब वे भारत भवन के रूपंकर संग्रहालय के निदेशक बनकर भोपाल पहुंचे तो उन्होंने लगभग समूचे अविभाजित मध्यप्रदेश के आदिवासी अंचलों की यात्रा की, और लोक आदिवासी कलाकारों के काम को उतना ही महत्व देने की बात कही, जितना हम आधुनिक, समकालीन नागर कला के कलाकारों को देते हैं। रूपंकर के एक साथ दो विंग उन्होंने बनाएएक ही परिसर म. एक तो आधुनिक कलाकारों के काम का, और एक आदिवासी लोक कलाकारों की कृतियों का। इस प्रयत्न के कितने दूरगामी परिणाम हुए, और किस प्रकार जनगढ़ सिंह श्याम जैसे कलाकारों ने देश-दुनिया के आधुनिकों को चमत्कृत किया, इसे हम अब अच्छी तरह जानते हैं। आदिवासी कला (ओं) ने, हमारे आधुनिकों को एक नया संस्पर्श दिया तो, पलटकर कुछ आदिवासी कलाकारों को, अपनी कला के रूप-रंगों से बाहर आकर, कुछ नया करने के लिए प्रेरित किया। आज जनगढ़ का बेटा मयंक जिस तरह का काम कर रहा है, वह जनगढ़ के काम से भिन्न है एक और ही दिशा म. गतिशील है।

कला की गतिशीलता, कला-संबंधी चिंतन और सोच-विचार पर भी बहुत कुछ निर्भर करती है और यह भी सच है कि कला से, कलाकृतियों से, जो उभरकर सामने आता है, उससे स्वयं चिंतन और विचार की दुनिया (भी) गतिशील होती है। इस तरह कला-विचारों की, कला-आलोचना की, कला-विमर्श की एक बड़ी भूमिका, चित्रकला और मूर्तिशिल्प की दुनिया म. सक्रिय रही है और कई बार स्वयं कलाकारों ने इस प्रकार की पहल की है कि विमर्श द्वारा भी वे कला के पहिए को और तीव्र कर.। उदाहरण के लिए कलाकार जे. स्वामीनाथन ने एक पत्रिका शुरू की‘कांट्रा’ नाम से, और प्रत्येक अंक म. कला-विचारों से संपन्न लेख प्रकाशित किए। बहस. चलाईं। इसम. स्वयं कलाकार भी लिखते थे, मसलन सूजा और कृष्ण खन्ना। समीक्षक भी लिखते थे और ओक्ताविओ पॉज जैसे कवि-कला चिंतक ने भी इसम. लिखा। स्वयं स्वामी ने तो इसम. लिखा ही। उनका एक लेख 'Reality of the Image' पर था जिसम. आग्रहपूर्वक उन्होंने लिखा कि अगर किसी कलाकृति की इमेज, अपने आप म. भरी-पूरी है। उसका अपना रूप, अपनी संवेदना, अपना यथार्थ, है, तो उस ‘यथार्थ’ को ही पर्याप्त मानकर देखा जाना चाहिए, और इसी तरह उसकी विवेचना करनी चाहिए, क्योंकि जब वह अपने आप म. ‘यथार्थ’ है, या एक ‘यथार्थ’ का दर्जा अख्तियार कर लेती है, तो फिर यह प्रश्न नहीं रह जाता कि वह किस चीज का प्रतिनिधित्व कर रही है, या उसम. किस चीज को अंकित किया गया है। उनके इस विचार के पीछे कहीं यह भी था कि जो कलाकृतियां इस उस चीज की प्रतिनिधि होने का दावा करती हैं, अगर उसका प्रतिनिधित्व वे अंकन के स्तर पर, एक पुष्ट इमेज के रूप म. नहीं कर पातीं, तो फिर वे कलाकृति कैसे हुईं। जाहिर है कि इस विचार का स्वयं उनके साथी कलाकारों पर जाने-अनजाने, प्रत्यक्ष-रूप से गहरा असर हुआ। आप जेराम पटेल या हिम्मत शाह की कृतियों को देखिए तो सहसा ही, या अंत तक यह नहीं कह पाएंगे कि देखिए, इसम. अमुक-अमुक चीज जो कृति म. आप देख रहे हैं वह आप तक विचारों की, बिंबों की एक श्रृंखला सी ही तो गतिमान कर देती है। यह अकारण नहीं है कि दुनिया भर म., और अब हमारे यहां भी आधुनिक-समकालीन कलाकृतियों पर, कलाकारों पर, एक बड़ी संख्या म. विचारपूर्ण लेखों-टिप्पणियों की तमाम सामग्री, पुस्तकों के रूप म. भी सामने आ गई है। कलाकार और कलापारखी के.जी. सुब्रमण्यन का योगदान तो इस दिशा म. अपूर्व है ही। शांतिनिकेतन के कला-आलोचक, कला इतिहासकार शिवकुमार ने

अवनींद्रनाथ ठाकुर, नंदलाल वसु, विनोद विहारी मुखर्जी, और अन्य कलाकारों पर जो सामग्री लिखी और संजोई है, वह ठीक ही बहुत महत्वपूर्ण मानी जा रही है।

जिस प्रकार पुस्तकों के लिए पुस्तकालयों की परिकल्पना की गई, उसी तरह कलाकृतियों के लिए संग्रहालयों की भी की गई है। बस दोनों म. एक फर्क है, जो फर्क मूलतः साहित्य और कला (कृति) का ही फर्क है। पुस्तकालय से लेकर, कोई पुस्तक दो-बार चार बार पढ़ी जा सकती है, पर, संभवतः इससे अधिक बार नहीं पढ़ी जाएगी, पर, कलाकृतियों को तो बीस बार, सौ बार देखा जा सकता है, और हर बार उनकी एक नई पढ़त की जा सकती है। अगर मैं आपसे कहूं कि राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय जा कर मैंने अमृता शेरगिल और रवींद्रनाथ की कलाकृतियां अनगिनत बार देखी हैं, और हर बार उनसे 'कुछ और' निकालकर लाया हूं, तो इसे अतिरंजना मत मान लीजिएगा। कला इस अर्थ म. निश्चय ही गतिशील रहती है कि सारवान, चुंबकीय प्रभाव वाली कृतियां बार-बार आपको अपनी ओर बुलाती हैं, और हर बार कुछ नया सौंपती हैं। इसका कारण यही है कि जो पहला प्रभाव किसी चित्रकृति या शिल्प का हमारे ऊपर पड़ता है, वह तो एक बोध की तरह हमारे भीतर समा ही जाता है, पर, उसे दूसरी-तीसरी-चौथी-पांचवीं बार देखते हुए हम उसके रंग-रेशों, रेखाओं और अन्य विवरणों म. भी कुछ न कुछ पाने लगते हैं। वॉन गाग की कृति 'सूर्यमुखी' को आप जितनी बार देखिए उसका एक नया सौंदर्य, नया सार, नया रूप प्रकट होता हुआ मिलेगा जबकि यह बता दिया गया है कि वह 'सनफ्लावर' है, सूर्यमुखी है। पर, धीरे-धीरे हम पहचानते हैं कि वह सूर्यमुखी है भी और नहीं भी है उस इमेज का अपना 'यथार्थ' है, और वह यथार्थ अपने को कई तरह से उद्घाटित करता है, कभी सौंदर्य के स्तर पर, कभी एक आकार के स्तर पर, जिसके भीतर कुछ और भरा है, जो ढका हुआ है, ठीक उसी तरह, जैसे अनार के भीतर, दाने भरे होते हैं, और बिना छीले हुए, बिना छिलका उतारे हुए वे दिखते नहीं हैं, उसी तरह इस सूर्यमुखी के भीतर कुछ और है, पर, उसके तो छिलके उतारने की भी सुविधा नहीं है, फिर हम कैसे कर. उसके भीतर के यथार्थ म. प्रवेश। लेकिन हम करते हैं, और जितनी बार हम उसे देखते हैं, किसी प्रिंट म., छाया-प्रतिकृति म., कोई जीवन-मर्म, कोई सार, कोई 'पराग' हमारे हाथ लगता है यानी ऐसी कोई चित्रकृति हम. हर बार, हमारे मानस को हर बार, हमारे सोच को हर बार, एक नई तरह से गतिशील करती है।

कला म. अब आकृतिमूलकता और अमूर्तन के झगड़े को मानों इमेज के अपने एक यथार्थ के कारण सुलझा लिया गया है- इमेज किसी आकृति का संकेत कर रही है, वस्तु-रूप या रूपों की है, उनसे संबद्ध मालूम पड़ती है, या फिर वह अमूर्त रूपाकारों से बनी हैइससे फर्क नहीं पड़ता है। उन दोनों को अपने एक मौलिक यथार्थ के स्तर पर ही हम उन्ह. देखते हैं। अमृता शेरगिल की 'तीन पहाड़ी युवतियां' वाली चित्रकृति सिर्फ तीन पहाड़ी चेहरों की कृति नहीं है उसम. निहित भावों का कोई एक मापक नहीं है, कि हम 'तराजू' के पलड़े म. उसे एक तरफ रख., और दूसरी ओर उससे मिलते-जुलते यथार्थ को, तो वह तुल जाएगी। नहीं वह किसी और तरह से नहीं तुलेगी। न किसी उपमा से, न किसी सादृश्य से वह तो अपने आप म. एक अतुलनीय कृति है उसका अपना ही एक यथार्थ रूप जो है। इसी तरह रामकुमार का वाराणसी सिरीज का कोई चित्र, जो अमूर्त हो, वह भी किसी और तरह से नहीं तुलेगा, न बनारस के किसी यथार्थ से, न ही किसी और सादृश्य से, क्योंकि वह अपने रंग-रूप म., अपने आप म. एक यथार्थ है, उसका अपना एक अस्तित्व है।

तो यह जो कलाकृतियों का अपना अस्तित्व है, उसकी बुनावट-बनावट जितनी खरी होगी, जितनी सारवान, जितनी अपने ही एक संचार से संचारित होगी, वह संचार हम. अपनी ओर खींचेगा। उसके प्रवाह के साथ हम बह.गे। कुछ-कुछ उसी तरह जैसे एक प्रवहमान नदी के सामने, उसके किनारे खड़े होकर, हम उसके साथ उसे अपनी दृष्टि परिधि म. भरते हुए, बहते हैं।

अब यह जो कलाकृति का प्रवहमान होना है, वह कुछ अचंभे की-सी बात है न, क्योंकि एक बार पूरी हो जाने पर, चित्रकृतियाँ और मूर्तिशिल्प, किसी फेर-बदल की संभावना से परे हो जाते हैं; पर, उनका वह स्थिर रूप प्रवहमान होता है, तो इसीलिए कि उसम. एकत्र हुई ऊर्जा, भाव-संपदा, रूप संपदा, विचार-संपदा, हमारे सोचने-देखने के साथ सचमुच गतिशील हो उठती है और स्वयं तो वह गतिशील तभी हो गई थी जब उसके सर्जक ने अनुभवों-रूपाकारों-स्मृतियों- और किन्हीं भाव-संप्रदायों को सहेजना शुरू किया था, और किन्हीं विधियों की मदद से, उन्ह. बांधा था और फिर गतिशील कर दिया था। चोल शैली के 'नटराज' से लेकर ब्रांकुसी के मूर्तिशिल्प इसी का तो प्रमाण है। इसी का प्रमाण है 'दीदारगंज की यक्षिणी' भी, जो पटना संग्रहालय म. है।

बीसवीं शती म. कला म. एक नया दृश्य उपस्थित हुआः कला के कुछ स्वीकृत नियम-आचार-व्यवहार-विधियां सब 'स्वतंत्र' हो गए। कोई बंधन न रहा। बंधन रहा तो बस एक कि किसी कलाकृति को, किसी ऐसे यथार्थ रूप म. ढाला जाए, जहां वह हमसे एक कला-संवाद, एक जीवन-संवाद संभव कर ले। सो, यह सुविधा हुई कि आप चाह. तो कैनवास को फाड़ द., उसम. ऊपर से कुछ चिपका द., चित्र और कोलाज को एक कर द.। एक समय जेराम भाई ने काठ को जलाकर कुछ अप्रतिम कृतियां हमारे यहां भी रचीं। और मूर्तिशिल्प की दुनिया म. भी केवल काठ, लोहा, पत्थर, कांस्य ही स्वीकृत सामग्रियां नहीं रह गईंधागे, सुतलियां, तार, फिंकी हुई चीज., पत्तियां, घास, कौड़ियां, सब शामिल हो गईं। मृणालिनी मुखर्जी ने रस्सियों से मूर्तिशिल्प बुने। जहां, तक इंस्टलेशंस संस्थापनों का सवाल है, वहां तो दुनिया म. उपलब्ध किसी भी सामग्री को बरतने की सुविधा है। शिकागो म. अनीस कपूर का 'क्लाउड गेट' एक प्रकार का संस्थापन ही है, जिसे उन्होंने अब Vantablack से ढक दिया है। कृति अब संपूर्ण काली हो चुकी है यानी सामग्री परिवर्तन की सुविधा भी अब कलाकृतियों को प्राप्त है, रूप परिवर्तन की भी। उच्च स्तरीय टेक्नालॉजी भी अब कला म. वर्जित नहीं रही है। कला मानों जीवन के हर कोने को तलाश रही है। अनंत छवियां पसर गई हैं, प्रसारित हो रही हैं, कलाकृतियों की; नेट पर, संग्रहालयों म., दीर्घाओं म., सार्वजनिक स्थलों म.। कलाकृतियां बहस-तलब हो सकती हैं पर, कला की ऊर्जा, उसकी अंतर्दृष्टि और उसकी गतिशीलता बहस-तलब नहीं हो सकती है, क्योंकि इसी गतिशीलता ने तो सार्थक, कालजयी कृतियों के लिए नए द्वार खोले हैं। ●

संवाद

‘दलित-मुक्ति का सवाल आज भी संक्रमण के दौर से गुजर रहा है’

*1965 म. बिहार के बक्सर जिले के एक गांव म. जन्म. देव.द्र चौबे हिंदी के चर्चित आलोचक और शिक्षाविद् हैं। 2010 ई. म. मॉरीशस के महात्मा गांधी संस्थान म. (यूजीसी, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के विजीटिंग स्कॉलर रह चुके हैं एवं दलित साहित्य पर काम करने के लिए उन्ह. संस्कृति मंत्रालय) भारत सरकार द्वारा 2000 ई. म. लेखकों को दी जाने वाली राष्ट्रीय फेलोशिप भी प्राप्त हो चुकी है। इसके अतिरिक्त लेखकों और शिक्षाविदों के साथ 2007 म. जापान एवं 2010 म. उज्बेकिस्तान की यात्रा भी कर चुके हैं। 2015 म. उन्ह. सार्क कल्चर स.टर, कोलंबो द्वारा आयोजित सार्क साहित्य उत्सव म. एक लेखक के रूप म. शामिल होने का अवसर मिला। उनकी प्रकाशित पुस्तकों म. कहानी-संग्रह ‘कुछ समय बाद’ के अलावा आलोचनात्मक पुस्तकों म. ‘आलोचना का जनतंत्र’, ‘आधुनिक साहित्य म. दलित विमर्श’, ‘समकालीन कहानी का समाजशास्त्र’ और ‘कथाकार अमृतलाल नागर’, ‘हाशिए का वृत्तांत’ प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने ‘1857, भारत का पहला मुक्ति संघर्ष’, ‘विश्व साहित्य : चुनिंदा रचनाएं’, ‘साहित्य का नया सौंदर्यशास्त्र’, ‘चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य’, ‘समकालीन चीनी कहानियां’, दस्तक आदि के साथ ही पल प्रतिपल के समकालीन फ्रांसीसी साहित्य विशेषांक का संपादन भी किया है। उनकी आने वाली पुस्तकों म. आधुनिक भारत के इतिहास लेखन के कुछ साहित्यिक स्रोत (इतिहासकार रश्मि चौधरी के साथ) एवं हमारे समय का साहित्य (सं.) आदि प्रमुख हैं। फिलहाल वह भारतीय भाषा क.द्र; भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान; जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली म. प्रोफेसर हैं। यहां प्रस्तुत है, उनसे **इकरार अहमद और मीनाक्षी** की बातचीत के प्रमुख अंश।*

दलित-मुक्ति के प्रयास म. दलित आंदोलन कहां तक सफल हुआ है?

दलित-मुक्ति का प्रयास बहुत पुराना है। ज्योतिबा फुले ने 1855 ई. से लेकर 1873 ई. म. ‘गुलामगिरी’ के प्रकाशन एवं ‘सत्यशोधक समाज’ की स्थापना से इस प्रयास को ठोस जमीन प्रदान की थी लेकिन सही मायने म. दलित-मुक्ति को आंदोलन तक ले जाने का कार्य बाबा साहब अंबेडकर ने किया। उन्होंने दलित-मुक्ति के सवाल को राष्ट्रीय मुक्ति के साथ जोड़कर इसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया का हिस्सा बनाया। 1961 ई. म. ‘अस्मितादर्श’ के प्रकाशन और 1972 ई. म. ‘दलित पैंथर’ की स्थापना से इसे ताकत मिली। यद्यपि 1912 ई. म. आदि हिंदू आंदोलन के प्रवर्तक स्वामी अछूतानंद के आंदोलनों से दलित-मुक्ति को ताकत मिली; लेकिन

90 के दशक म. 'बसपा' एवं 'मंडल कमीशन' के कारण इसकी सामाजिक स्तर पर स्वीकृति-अस्वीकृति की जो प्रक्रियाएं शरू हुई, वह आज भी जारी हैं। आज दलित आंदोलन, राजनीतिक स्तर पर ताकतवर हुआ है; आर्थिक दृष्टि से इसका 'डिक्की' के जरिए विस्तार हुआ है; परंतु मुझे लगता है, सामाजिक स्तर पर दलित- मुक्ति का सवाल आज भी संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। यह सवाल, सफलता-असफलता का नहीं है; भारतीय समाज की मानसिकता को बदलने का है। शायद आज भी यह आंदोलन उस बदलाव को पूरा नहीं कर पा रहा है।

अति दलितों की सामाजिक चेतना का स्तर उठाने म. दलित आंदोलन सार्थक सिद्ध हुआ है अथवा नहीं?

दलित, दलित है। इसे 'अति दलित' अथवा 'महादलित' म. बांटना ठीक नहीं है। हम जिसे 'दलित आंदोलन' कह रहे हैं, वह आज सिर्फ दलित समूहों द्वारा चलाए जा रहे आंदोलन के रूप म. सिमट गया है। पूर्व म. इसे अन्य सामाजिक समूहों से भी स्वीकृति और सक्रिय समर्थन मिला हुआ था; एक सीमा तक आज भी है; परंतु राजनीतिक ताकत ने दलित-मुक्ति को सिर्फ 'आरक्षण' एवं संसाधनों म. हिस्सेदारी तक सीमित कर रखा है, मुझे लगता है, जब तक यह सामाजिक संरचना का हिस्सा नहीं बनता है, तब तक इस तरह के आंदोलनों का कोई अर्थ नहीं है।

क्या दलितों और पिछड़े वर्ग के सामाजिक आंदोलन एक जाति विशेष तक सिमट कर नहीं रह गए हैं? जनवादी आंदोलनों की सक्रिय भूमिका के पश्चात् भी दलितों ने अपने लिए अलग से दलित आंदोलन की आवश्यकता क्यों महसूस की?

हां, एक मायने म. यह सही है कि दलित और पिछड़े वर्ग के आंदोलन दलित-पिछड़े वर्ग द्वारा, दलित-पिछड़े वर्ग की मुक्ति के लिए हो रहे आंदोलनों तक सिमटता जा रहा है। हां, बीच-बीच म. 'आर्थिक' स्तरीकरण की बातचीत शुरू होती है; एक हद तक स्तरीकरण सफल भी हुआ है, परंतु पुनः मैं यही कहूंगा कि अन्य सामाजिक वर्गों का समर्थन हाल के वर्षों म. कम हुआ है। इसका एक कारण वामपंथी आंदोलनों का कमजोर होना भी है। वामपंथी आंदोलनों से अलग होकर दलित-पिछड़े वर्ग की ताकत कमजोर होगी। बिना उन्ह. साथ लिए मुझे लगता है, इस आंदोलन का विस्तार संभव नहीं है। यह एक सामूहिक प्रयास से ही संभव होगा। सिर्फ 'जातीय अधिकारों' के आधार पर कोई भी समाज पूर्णतः मुक्त नहीं हो सकता है। इस प्रकार की मुक्ति के कोई मायने ही नहीं हैं।

दलित राजनीतिज्ञों और उनके दलों का अंतिम पड़ाव दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी सांप्रदायिक शक्तियां क्यों होती हैं?

यह गलत है। कुछ खास स्थितियों म. ऐसा संभव है, जैसा कि मैंने कहा अगर प्रयास सिर्फ राजनीतिक ताकत प्राप्त कर संसाधनों म. भागीदारी का होगा तो उसके अंतिम पड़ाव के रूप म. आप 'दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी सांप्रदायिक' शक्तियों तक मान सकते हैं लेकिन यह सवाल मूलतः सामाजिक मुक्ति का है जैसे- जैसे धर्म सत्ताएं कमजोर होंगी-हम जातीय जकड़नों से मुक्त होंगे। 'धर्म' यदि जीवन शैली के रूप म. मानव समाज का हिस्सा बने तो ठीक है; पर यदि वह 'सत्ता' का नियंत्रणकारी तत्त्व बन जाए-तब वह काफी जटिल हो जाता है। उससे मुक्ति संभव नहीं है। उससे भ्रम की स्थिति पैदा होती है तथा व्यक्ति या समाज 'व्यामोह' का हिस्सा बन जाता है।

साहित्य राजनीति से प्रभावित अवश्य होता है लेकिन क्या दलित साहित्य राजनीति से अधिक प्रभावित नहीं है?

साहित्य मूलतः मनुष्य के भावों, विचारों और अनुभवों का संचय है। कोई भी लेखक इनसे जुड़ी प्रक्रियाओं का ऐतिहासिक दृष्टि से दस्तावेजीकरण करता है। जहां, इतिहास होगा; वहां राजनीति भी होगी और अर्थशास्त्र भी होगा इसलिए यथार्थवादी साहित्य पर राजनीति और उससे जुड़ी संरचनाओं का गहरा प्रभाव होता है। कई बार रचनाएं इसलिए भी राजनीति से प्रभावित लगती है कि उनका उदय किन्हीं खास ऐतिहासिक कारणों से होता है। उदाहरण के लिए, 1857 के बाद का हिंदी साहित्य हो या भारतीय साहित्य-उसम. आपको ब्रिटिश उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की बुराईयों अथवा असंगतियों से लड़ने की चेतना दिखलाई पड़ती है इसलिए इस दौर के साहित्य म. 'प्रतिरोध' (Protest) की उपस्थिति सबसे अधिक हो तो क्या यह राजनीति है?

चूंकि दलित साहित्य भारतीय समाज की हिंदू बहुल सामाजिक व्यवस्था की बुराइयों से लड़ते हुए उदित हुआ है; इसलिए यहां भी 'प्रतिरोध' की चेतना दिखलाई देती है। इस स्थिति म. दलित साहित्य को राजनीति से अधिक प्रभावित माना जा सकता है। कारण, 'प्रतिरोध' शब्द अपने आप म. 'राजनीतिक' है। ठीक उसी प्रकार, जैसे मार्क्सवादी प्रभाव म. रचित हिंदी का 'प्रगतिशील' साहित्य।

भारत की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां धर्म द्वारा संचालित हैं। ऐसी स्थिति म. आपकी दृष्टि म. दलितों को धर्म का कौन-सा मार्ग अपनाना चाहिए?

'धर्म' की समाज म. एक क.द्रीय भूमिका रही है। सिर्फ, भारत ही नहीं, विश्व की अनेक संस्कृतियां इससे नियंत्रित और संचालित होती हैं। प्राचीन और मध्यकाल तक तो यह बात समझ म. आती है, परंतु आधुनिकता के उदय के बाद इसकी नियंत्रणकारी उपस्थिति तर्कपूर्ण नहीं लगती है। यद्यपि लोगों को यह अधिकार है कि अपने जीवन को व्यवस्थित और संचालित करने के लिए किसी भी धर्म या पंथ का अनुसरण कर., मार्ग अपनाएं लेकिन उसे अन्य समाज, सामाजिक समूहों अथवा व्यक्तियों पर न थोप.। इसका भी खयाल रखा जाना चाहिए। यही बात., दलित संदर्भ म. भी लागू होती हैं। अगर दलित समाज कोई एक धर्म अपनाना चाहता है; चाहे वह 'हिंदू' हो या 'बौद्ध' तो यह उसका अधिकार है; परंतु इसी के समानांतर दलित समाज का अगर एक तबका किसी 'धर्म' का हिस्सा नहीं बनना चाहता है तो इसकी उसे आजादी मिलनी चाहिए। जरूरी नहीं है कि समाज का व्यक्ति कोई-न-कोई धर्म अपनाए ही।

अति दलितों और दलित स्त्रियों को दलित आंदोलन और साहित्य ने उचित स्थान नहीं दिया है। क्या दलित स्त्रियों और अति दलितों को अलग साहित्यिक मंच नहीं बनाना चाहिए? इसी प्रकार, क्या साहित्य म. 'स्वानुभूति' पर बल देना उचित है? 'स्वानुभूति' का आधार होने पर क्या साहित्य सीमाओं म. नहीं बंध जाएगा?

दलित स्त्रियों की भागीदारी का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। दलित क्या, 'स्त्रियां' भारतीय और वैश्विक समाज म. कभी क.द्र म. रही ही नहीं है। कहने को उन्ह. 'आदर' का विषय बनाया गया; परंतु वास्तव म. पितृसत्ता ने उन्ह. उतनी ही आजादी दी कि वे 'परिवार' चलाने का भार वहन कर पाएं और संततियों का प्रजनन कर उत्तराधिकारी दे सक.। सवाल है, जब समाज म. ही स्त्रियों को किन्हीं खास कारणों से महत्त्व दिया गया, तब फिर उन्ह. साहित्य म. उचित स्थान कैसे मिलता? यद्यपि कालिदास, भारत.दु,

प्रेमचंद, यशपाल, जैन.द्र जैसे लेखकों ने स्त्रियों को सामाजिक भागीदारी म. 'समान' अवसर प्रदान करने का प्रयास किया; परंतु जिस स्तर पर स्त्री के 'मन', 'शरीर', 'व्यवहार' आदि को समझने का प्रयास स्त्री सवालों से जुड़ी लेखिकाओं ने किया-वह स्त्री क्या, मानवीय सभ्यता के इतिहास म. एक बड़ा हस्तक्षेप था। मीरांबाई, महादेवी वर्मा आदि के लेखन म. इसे महसूस किया जा सकता है।

ठीक इसी प्रकार की स्थिति दलित समाज म. 'अति दलित' की रही जिसे कभी बिहार म. 'महादलित' के रूप म. समाजवादी नेताओं ने रेखांकित करने का प्रयास किया। सवाल है, लेखन म. 'सहानुभूति' और 'स्वानुभूति' की बहस चली, उस दृष्टि से माने तो अति दलितों, दलित स्त्रियों और अन्य सामाजिक समूहों के उत्पीड़ितों को समाज म. उचित स्थान नहीं मिला। इन्ह. जगह मिलनी चाहिए- लेकिन साहित्य म., इनके सवाल लेखन का हिस्सा बनकर आए। राजनीतिज्ञों की तरह यदि इन्ह. 'मंच' देकर स्थापित करने का प्रयास किया जाएगा तो ये कभी भी व्यावहारिक स्तर पर सामाजिक हिस्सेदारी का अंश नहीं बन पाएंगे। साहित्य को मंच मिलना चाहिए, लेखन के कारणों को स्थापित किए जाने की जरूरत है; क्योंकि इनसे 'समय' को भी स्थायीत्व मिलता है और 'समाज' को भी। 'मंचीय हिस्सेदारी' से न तो साहित्य को स्थायीत्व मिलता है, और न ही उसके कर्त्ता लेखक को। लेखक के तो शब्द ही जिंदा रहते हैं, लेखक कहां कहीं दीखता है? फ्रांसीसी विचारक रोला बार्थ की बात माने तो 'पाठ' (साहित्य) रचने के बाद, तो उसका 'कर्त्ता' (लेखक) कहीं खो जाता है। पाठक से बातचीत तो लेखक के 'शब्द' करते हैं जिन्ह. संदर्भ मिलने के बाद स्थायीत्व मिल जाता है।

जहां जाति और वर्ण के आधार पर आर्थिक संसाधन उपलब्ध हों और इस व्यवस्था को धार्मिक संरक्षण प्राप्त हो। वहाँ पर जाति प्रथा को तोड़े बगैर आर्थिक समानता का लक्ष्य कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

सही है। भारतीय सामाजिक संरचना म. दलित अथवा आदिवासी समाज का उत्पीड़न उनकी जातीय संरचनाओं और भौगोलिक उपस्थिति के कारण हुआ; और उन्ह. उचित प्रतिनिधित्व और आर्थिक संरक्षण भी, उन्हीं कारणों से मिल रहा है। हमारी राजनीतिक व्यवस्था का अब चरित्र भी वैसा नहीं रह गया है कि वह इसका स्थायी हल ढूंढ़.। अपितु वे व्यवस्थाएँ तो अब भी चाहती हैं कि भारतीय समाज म. 'वर्ण और जाति' की उपस्थिति बनी रही। जाति प्रथा को समाप्त करना अब संभव नहीं लग रहा। व्यक्तिगत स्तर पर वैवाहिक प्रसंगों म. यह टूटती दीखती है; परंतु ज्योंही उसकी दूसरी पीढ़ी तैयार होती है, वह उसका हिस्सा बन जाती है। आरक्षण को भी अब न तो राजनीतिक पार्टियां समाप्त करना चाहती हैं और न ही वह समाज। अब तो इसके नए-नए रूप सामने आ रहे हैं। बुद्ध, कबीर, फुले, गांधी, अंबेडकर, पेरियार जैसे मनीषियों एवं चिंतकों ने जो सपना देखा था, अब उसका भविष्य 'आरक्षण' तक आकर ठहर गया है। सामाजिक न्याय का सवाल भी अब राजनीतिक हिस्सेदारी म. ही अपना भविष्य देखता है। आर्थिक समानता का सपना देखना बेमानी है। कारण, अब इसे भी राजनीतिक बना दिया गया है। अब प्रत्येक संदर्भ 'राजनीति' म. आकर अपना 'अर्थ' पाते हैं। विकल्प के सारे रास्ते एक-एक कर समाप्त होते जा रहे हैं। ज्ञान के क.द्र भी राजनीतिक संप्रदायों के अखाड़े बने गए हैं। राजनीति विज्ञानी मणींद्रनाथ ठाकुर, इतिहासकार हित.द्र पटेल, रश्मि चौधरी और साहित्य चिंतक अखलाक अहमद आहन जैसे युवा अकादमिशयन जब यह कहने लगे कि अब विश्वविद्यालय भी 'स्वतंत्र चिंतन' का क.द्र नहीं रह गए हैं अथवा आने वाले एक-दो दशकों

म. अब चिंतन के नए स्थानों का निर्माण करना पड़ेगा, तब भावी पीढ़ी को तो और अधिक विषय परिस्थितियों के लिए तैयार रहना पड़ेगा।

और यह भी क्या जरूरी है कि हम सिर्फ आर्थिक समानता की बात कर.? हिंदी दलित कविता के सामाजिक मूल्य परंपरागत हिंदी कविता से किस प्रकार भिन्न हैं?

सामाजिक मूल्यों म. 'समानता' का भाव सबसे महत्वपूर्ण है। यह महत्वपूर्ण बात है कि साहित्य 'समानता' की बात करता है। इस 'समानता' का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह मानव समाज की गरिमा और उसके स्वाभिमान को बनाए रखने और बचाए रखने के पक्ष म. खड़ा होता है। बिना साहित्य के मानव समाज के 'आत्मसम्मान' के इतिहास को नहीं जाना जा सकता। यह महत्वपूर्ण बात है कि परंपरागत हिंदी कविता की तरह, दलित कविता भी मानव समाज के 'आत्मसम्मान' को बचाए रखने के पक्ष म. खड़ी है। साहित्य की भूमिका भी यही है कि वह व्यवस्था की बुराइयों के पक्ष म. खड़ी होती है और मनुष्य के अच्छे भावों और विचारों को विस्तार देने वाली ताकतों का समर्थन करती है ताकि मानवीय गरिमा बनी रहे। ●

श्रद्धांजलि...

★ कवि श्याम कश्यप

★ कथाकार गिरीशचंद्र श्रीवास्तव

★ कथाकार रोहिताश्व

इन सभी दिवंगतजनों को 'बहुवचन' की ओर से श्रद्धांजलि...

आलोचना

अँधेरे में छुपी रोशनी की तलाश

(संदर्भ : और पसीना बहता रहा)

शंभु गुप्त

'और पसीना बहता रहा' मॉरीशस के प्रवासी भारतीयों के प्रारंभ से लेकर अब तक के जीवन-संघर्ष तथा स्थिति-परिस्थितियों पर अभिमन्यु अनत की ऐतिहासिक उपन्यास-त्रयी की 'लाल पसीना' तथा 'गांधीजी बोलते थे' के बाद अगली और अंतिम कड़ी है, जिसम. मजदूर-नेता पं. रामनारायण द्वारा सन् 1917 के आस-पास चलाए गए आंदोलन की विस्तृत और व्यापक कहानी है।

मॉरीशस म. मजदूरों द्वारा अपने अधिकारों तथा राष्ट्र-निर्माण म. अपनी हिस्सेदारी सुनिश्चित करने के लिए चलाए गए जनोन्मुख आंदोलनों का अपना ही इतिहास है जो किसन सिंह से शुरू होकर पंडित हरिप्रसाद नारायण तक आता हुआ निरंतर जारी रहता है। किसन सिंह, उसका बेटा मदन, फिर प्रकाश और अब हरि। हरि-यानी कि पं. हरिप्रसाद रामनारायण। किसन सिंह से लेकर प्रकाश तक मॉरीशस के मजदूर-आंदोलन ने टूटन, असफलता और निराशा का ही मुंह देखा पर हरि के कमान संभालते ही पिछली कमियों से निजात पाते हुए धीरे-धीरे यह कामयाबियां हासिल करता चलता है और अंततः केंद्रीय राजनीति की मुख्यधारा म. अपना सम्मानजनक स्थान बना लेता है। इस मजदूर-आंदोलन को इस कामयाबी तक पहुंचाने म. हरि तथा उसके साथियों द्वारा स्थापित श्रमिक-संघ- जो कि आगे चलकर एक शक्तिशाली और दृष्टि संपंन क्रांतिकारी ट्रेड-यूनियन का रूप लेता है- की जबर्दस्त भूमिका होती है। इस श्रमिक-संघ म. मॉरीशस के प्रायः समस्त मजदूर धीरे-धीरे सम्मिलित होते हैं और आगे चलकर यह राष्ट्रीय महत्व प्राप्त करता है।

देश का तत्कालीन पूंजीपति-जमींदार वर्ग जाति, धर्म, प्रांत इत्यादि के आधार पर मजदूरों को आपस म. बांटने तथा लड़ाने का अनेक बार षड्यंत्र करता है किंतु हरि की सूझ-बूझ, जनोन्मुख मानवीय चेतना, प्रगतिशील-जनवादी जीवन-दृष्टि, समर्थ नेतृत्व क्षमता तथा सतर्क रणनीति हर बार उन्ह. विफल करती चलती है। तत्कालीन गोरी सरकार पूंजीपति-जमींदार वर्ग का ही साथ देती है अतः श्रमिक-संघ उसके खिलाफ भी मोर्चा खोल देता है। इस मजदूर संघ की धीरे-धीरे बढ़ती हुई ताकत और महत्व का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि मॉरीशस के उस समय के बड़े-बड़े राजनेता भी चुनाव जीतने म. इसकी मदद लेते हैं तथा इसके पदाधिकारियों को अपनी-अपनी पार्टी का

उम्मीदवार बनाने के लिए मनाने आते हैं। इन राजनेताओं म. आगे चलकर मॉरीशस के राष्ट्रपति बनने वाले सर डॉ.शिवसागर रामगुलाम भी शामिल थे, जो खुद चलकर हरि से बार-बार मिलने आते उपन्यास म. दिखाए गए हैं। उपन्यास म. डॉ. शिवसागर रामगुलाम को एक ऐसे अंग्रेज परस्त स्वदेशी राजनीतिक के रूप म. चित्रित किया गया है जो जनता की भलाई के स्थान पर अपनी भलाई को ही राजनीति मानते हैं। हरि और श्रमिक-संघ के भारी सहयोग से रामगुलाम को चुनावों म. भारी सफलता मिलती है, किन्तु चुनाव जीतते ही रामगुलाम मजदूरों के साथ किए गए वादों को भूल जाते हैं। अंततः हरि उनके खिलाफ भी मोर्चा खोलता है और सुखदेव विष्णुदयाल की नव-गठित पार्टी इंडीप.ड.ट फारवर्ड ब्लॉक से चुनाव जीत विधान-सभा तक पहुंचता है। मॉरीशस के वर्तमान प्रधानमंत्री अनिरूद्ध जगन्नाथ भी तब इसी फारवर्ड ब्लाक से जुड़े थे। (और पसीना बहता रहा; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पृ0 306-07, 16)।

इस उपन्यास म. महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस जैसे भारतीय स्वतंत्रता-सेनानियों का बहुत ही आदरपूर्वक उल्लेख किया गया है। इसम. गांधीजी की 1901 की मॉरीशस यात्रा का जिक्र भी है। यहां तक कि हरि अपने आंदोलन म. गांधीजी के तौर-तरीकों- सत्याग्रह, असहयोग आदि-का इस्तेमाल करता भी दिखाया गया है। यह उपन्यास बताता है कि मॉरीशस के मजदूर-आंदोलन तथा उनके नेताओं पर महात्मा गांधी का अत्यधिक प्रभाव था। अंतर यही है कि मॉरीशस का श्रमिक- आंदोलन गांधीवाद से अपनी यात्रा शुरू कर अंततः दुनिया-भर की ट्रेड-यूनियनों की गतिविधियों तथा उनके नेताओं के संपर्क म. आता है तथा अपने देश म. एक समाजवादी समाज की स्थापना के काम म. लग जाता है। उपन्यास म. कहीं मार्क्सवाद-लेनिनवाद या कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो का उल्लेख नहीं है किंतु पं. रामनारायण के आंदोलन की दिशा और 'लाइन ऑफ एक्शन' लगभग वही है।

हरि अपने आंदोलन म. मंदिरों की बैठकाओं का सहारा लेता है किंतु धर्म उसके लिए मात्र एक व्यक्तिगत आस्था का विषय है। मॉरीशस के प्रवासी भारतीयों की पहचान स्वभावतः स्वधर्म से जुड़ी है किंतु उपन्यास म. कहीं भी धर्म संप्रदायवाद का रूप नहीं लेता बल्कि धर्म के आधार पर लोगों को बांटने वालों की यहां अच्छी खबर ली गई है। उल्लेखनीय है कि हरि और मूसा इस श्रमिक संघ के संस्थापक मंत्री और प्रधान हैं। इस संघ म. सभी जातियों, धर्मों, प्रांतों के मजदूर एक होकर अपने हित की लड़ाई लड़ते हैं। मजदूर यहां एक वर्ग है। मजदूर-चेतना यहां वर्ग-चेतना है। और वर्ग दो ही हैं- पूंजीपति वर्ग और श्रमिक (सर्वहारा)-वर्ग यानी कि अमीर और गरीब। गरीब आदमी चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, मूल, प्रांत का हो, वह शोषित-दमित-उत्पीड़ित है। पूंजीपति-वर्ग इनका खुले-आम शोषण करता है। इसी पूंजीपति-वर्ग के खिलाफ मॉरीशस के मजदूर एकजुट होकर इस उपन्यास म. आवाज उठाते दिखाए गए हैं। मजदूरों का यह संघर्ष अपने आंतरिक चरित्र और प्रवृत्तियों म. साम्यवाद के अत्यधिक निकट है।

इस उपन्यास की कथा की एक अन्यतम विशेषता है- प्रगतिशील- जनवादी जीवन- दृष्टि की एक अन्यतम जीवन-मूल्य के रूप म. स्थापना। प्रगतिशील-जनवादी जीवन-दृष्टि हमारे समूचे जीवन-आचरण और सोच को आमूल-चूल रूप से बदल देती है। यह प्रगतिशीलता और जनोन्मुखता किसी किताबी सिद्धांत या अमूर्त वैचारिक बहस के तहत नहीं है, बल्कि इसके पीछे जन-समूह का घोर उत्पीड़न, अत्याचार, शोषण, अन्याय, अभाव, अपमान इत्यादि का सैकड़ों साल का लंबा जातीय

अनुभव है। मजदूर-आंदोलन के प्रथम नेता किशनसिंह की हस्तलिखित पुस्तक का इस उपन्यास म. बार-बार उल्लेख है। इस पुस्तक का कोई नाम नहीं है पर यह मजदूरों के दस्तावेज के रूप म. प्रसिद्ध है तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी मजदूरों के बीच रामायण और आल्हा की तरह इसका वाचन होता आ रहा होता है। इस पुस्तक म. अपने हकों के लिए लड़ने वाले मजदूरों पर पूंजीपतियों, कोठी- मालिकों, जमींदारों आदि द्वारा ढाए गए जुल्मों की करुण- गाथाएं लोक- भाषा (भोजपुरी) म. लिखी हुई हैं जिसके मुख्य पात्र सोमा-संतू हैं। इस पुस्तक के अतिरिक्त परकाश का विस्तृत-व्यापक अनुभव-संसार हरि और उसके इस आंदोलन की पृष्ठभूमि म. है। हरि स्वयं एक मजदूर है तथा मजदूरों पर होने वाले अन्याय, अत्याचार, शोषण, दमन, अभाव, गरीबी आदि का स्वयं उसे गंभीर अनुभव है। उसने सालों तक स्वयं अपनी आँखों से मजदूरों पर ढाए जाने वाले जुल्मों का प्रत्यक्ष दर्शन-अनुभव किया है। अतः हरि की वर्गीय-चेतना उसके जीवनानुभव और अपने सामूहिक जातीय अनुभव की देन है। सिद्धांत के नाम पर यहाँ केवल एक पात्र हैः डॉ. मारिस क्यूरे किंतु डॉ. मारिस क्यूरे भी मजदूरों के प्रति समर्पित एक ऐसे डि-क्लास्ड आंदोलन-संगठनकर्ता हैं जो हरि के आंदोलन म. एक ईमानदार केटलिक एज.ट की महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हरि बार-बार उनसे दिशा-निर्देश एवं सलाह-मशविरे के लिए उनके पास शहर जाता है।

इस उपन्यास म. ट्रेड-यूनियन मूवम.ट को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य म. चित्रित किया गया है। ट्रेड-यूनियनों का केवल यह काम नहीं है कि वे मजदूरों की नौकरी, उनकी दशा म. सुधार तथा तनख्वाह बढ़ाने इत्यादि की ही बात कर. बल्कि इसके साथ-साथ वे मजदूरों म. एक स्वस्थ जीवन-शैली और आचार-व्यवहार की संस्कृति के विकास के लिए भी योजनाबद्ध कार्य कर.। मजदूरों को जीवन जीने की सीख देना भी ट्रेड-यूनियन का काम है। ट्रेड-यूनियन का यह नया कार्यभार इस उपन्यास की एक मौलिक प्रस्तावना मानी जा सकती है। हरि का शराब-बंदी का आंदोलन इसकी मिसाल है। (वही, पृष्ठ 267)।

एक क्रांतिकारी-परिवर्तनकारी जनान्दोलन किस तरह इसम. शरीक व्यक्तियों एवं समाज का समग्र जनोन्मुख कायापलट करता है, यह इस उपन्यास का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है। व्यक्ति- इकाई से लेकर परिवार तथा समूचे समाज तक यह कायापलट संपन्न होता है। घनघोर निराशा और असहायता की विपरीत परिस्थितियों म. भी व्यक्ति का उत्साह, जिजीविषा, संभावनाशीलता की प्रवृत्ति आदि जीवित रहती है तो दरअसल यह इसी आंदोलन की प्रेरणा से होता है। व्यक्ति म. पहल करने, जोखिम उठाने, दूरगामी और बड़े लक्ष्य के लिए छोटे-छोटे तात्कालिक व्यक्तिगत हितों (स्वार्थों) की बलि चढ़ाने की ताकत और आत्मविश्वास का आना और इसका निरंतर बने रहना इसी का कमाल होता है। इस उपन्यास के अंजलि, महादेव, तांबी, मूनसामी, नूर मुहम्मद, नंदू, मार्देमूतू, ब्रज गोविंद आदि तथा और बहुत सारे मजदूर-पात्र इसके प्रमाण हैं। यह उपन्यास अंजलि तथा ऐसे ही मजदूर-शहीदों को समर्पित किया गया है। हरि तथा प्रभा इसके अन्य उदाहरण हैं।

हरि घनघोर निराशा की स्थितियों म. मजदूर- संघ की नींव डालता है और उसे निरंतर विस्तार देता चलता है। वह परेशानियों और बाधाओं से घबराकर हाथ पर हाथ धर कर कभी नहीं बैठता। प्रभा भी विवाह के चंद दिनों बाद ही अपने शराबी पति द्वारा घर से निकाले जाने पर घूरने, रोने-चिल्लाने या गिड़गिड़ाने की बजाय अपने व्यक्तिगत दुःख को तिलांजलि दे मजदूर-आंदोलन म.

कूद पड़ती है और आंदोलनकारियों की रिहाई के लिए आमरण अनशन पर बैठ जाती है। यह क्रांतिकारी चेतना उसे एक ऐसे स्त्री-व्यक्तित्व के रूप म. उभारकर सामने लाती है जो समाज के सामंतवादी ढांचे को तोड़ता हुआ एक नए समाजवादी समाज की स्थापना म. अपना महत्वपूर्ण योग देता है। यह क्रांतिकारी चेतना स्त्री-पुरुष (दांपत्य)-संबंधों को एक नया आयाम देती है। इस चेतना से लैस पति-पत्नी एक-दूसरे के सहयात्री और साथी (कम्यून) बनकर संघर्ष और आंदोलन म. बराबर की हिस्सेदारी निभाते हैं। (पृष्ठ 289)। स्त्री यहां केवल पत्नी या भार्या नहीं रह जाती।

इस उपन्यास म. पुरुष-प्रधान सामंतवादी समाज म. स्त्री की दयनीय स्थिति पर प्रसंगवश कई जगह विचार किया गया है। कामगार स्त्रियों की स्थिति तो और भी बदतर होती है। वे दुहरे शोषण का शिकार होती हैं। हरि इस समस्या का भी कोई समाधान ढूंढ़ना चाहता है। इसके लिए जरूरी है कि समाज का मौजूदा पुरुष-प्रधानतावाला ढांचा बदले। हरि समस्याओं से दूर भागने या उन्ह. टालने के बजाय उनसे रू-ब-रू टकराने के उदाहरण शुरू से आखिर तक पेश करता चलता है। यही उसके क्रांतिकारी व्यक्तित्व की पहचान है। उपन्यास म. आया प्रकाश का यह वाक्य उसके चरित्र पर एकदम सटीक बैठता है- 'हर अँधेरे के भीतर एक अदृश्य रोशनी होती है और दुःख के भीतर सुख को ढूंढ़ निकालने म. ही जीवन की सार्थकता है।' (पृष्ठ 265)।

यह उपन्यास इसी अँधेरे म. छुपी रोशनी को तलाशने की प्रक्रिया म. पूरा होता है। यह उपन्यास न केवल मजदूरों के बहते पसीने का यथार्थवादी इतिवृत्त है बल्कि इसी के साथ यह भी कि यह मजदूरों को उनके अपने पसीने की कीमत बताने, उन्ह. अपनी खुद की पहचान कराने वाला एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। आज चाहे समय कितना भी बदल गया हो, यह इतिहास मॉरीशस के निवासियों की स्मृति म. स्थायी रूप से आज भी दर्ज है। ●

आत्मप्रकटीकरण की नई दिशाएं-संभावनाएं

कुबेर कुमावत

हिंदी म. प्रारंभ से ही दैनंदिनी अर्थात डायरी विधा के प्रति घोर उदासीनता एवं उपेक्षा का भाव रहा है। हिंदी के आलोचकों, विद्वानों तथा लेखकों की मानसिकता एवं धारणा डायरी के प्रति प्रायः बहुत गंभीर नहीं रही। डायरी को कभी उन्होंने एक साहित्य रूप या विधा के स्तर की मान्यता नहीं दी। इस तरह की धारणा के उपरांत हिंदी और विशेषकर भारत की अन्य भाषाओं म. विश्वस्तरीय डायरियां लिखी गई और प्रकाशित हुई हैं। इन भाषाओं म. तमिल, गुजराती मराठी, बांग्ला आदि भाषाओं म. लिखित डायरियों का स्थान और महत्व अधिक है। भारत म. विशेषकर हिंदी म. जब भी दैनंदिनी के बारे म. बहस और चर्चा होती है तो महात्मा गांधी का नाम और उल्लेख अवश्य किया जाता है। उनके समय म. बड़े ही श्रेष्ठ दर्जे की डायरियां हिंदी और गुजराती म. लिखी गईं। यह भी विशेष है कि महात्मा गांधी ने स्वयं अपनी कोई डायरी नहीं लिखी परंतु अपने सहकर्मियों, सहयोगियों, कार्यकर्ताओं और अनुयायिओं को डायरी लिखने की प्रेरणा दी। उन्होंने यह भी बताया कि डायरी क्यों और किसलिए लिखनी चाहिए? पश्चिम म. उपजी और कालांतर म. भारत पहुंची इस विधा को उन्होंने एक नई भारतीय पहचान देने का प्रयत्न किया। ऐसा नहीं है कि भारत म. और विशेषकर हिंदी म. गांधीजी के लोकप्रिय होने से पूर्व डायरियां न लिखी गई हो और प्रकाशित न हुई हो। गांधी पूर्व काल की डायरियों म. पं. नैन सिंह रावत, बालमुकुंद गुप्त, श्रीराधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक, राजा अजीत सिंह का दैनिक रोजनामचा, सत्यदेव परिव्राजक की डायरियां उल्लेखनीय हैं। तमिल म. 'आनंदा रंगा डायरी' मिलती है। यह डायरी पहले तमिल म. लिखी गई थी और बाद म. यह 11 खंडों म. अंग्रेजी म. अनुदित होकर प्रकाशित भी हुई। यह संपादित डायरी है जिसका कालखंड ईस्वी.1936 से ईस्वी. 1761के बीच का है।

भारत म. श्रेष्ठ एवं विश्वस्तरीय डायरियां लिखी गई हैं। इनम. नवजागरण काल से लेकर अब तक की कुछ डायरियों को स्थान दिया जा सकता है। यह डायरियां व्यक्तिगत अर्थात निजी होकर भी तत्कालीन राजनितिक, सामाजिक परिवेश का महत्वपूर्ण इतिहास है। इसे दस्तावेज कहना अधिक तर्कसंगत होगा। गांधीयुगीन डायरियों म. मनुबहन गांधी, महादेवभाई देसाई, सुशीला नैय्यर, जमनालाल बजाज, घनश्यामदास बिड़ला, सीताराम सेकसरिया आदि की डायरियां उल्लेखनीय हैं। इन डायरियों की मुख्य विषयवस्तु गांधीजी और उनकी जीवनशैली, उनकी कार्यशैली, उनका दूसरों के प्रति व्यवहार, निर्णय पद्धति के अतिरिक्त तत्कालीन स्वतंत्रता आंदोलन और उसकी सफलता- असफलताओं, जेल

तथा जेल के बाहर की स्थितियों, संघर्षों आदि के अत्यंत मार्मिक और सजीव अंकन हैं। ये डायरियां ऐसा दस्तावेज हैं जो तत्कालीन अनेक ऐतिहासिक घटनाओं, प्रसंगों और उनके परिणामों पर पुनश्च प्रकाश डालने म. सहायक हैं। यह डायरियां ऐतिहासिक- साहित्यिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण और भारत की अमूल्य धरोहर है। महात्मा गांधी के व्यक्तित्व एवं कार्य को समझने के लिए भी यह डायरियां उपयुक्त हैं। इनके अतिरिक्त हिंदी म. लिखित एवं प्रकाशित डायरियों म. डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पं. नरदेव शास्त्री वेद तीर्थ, सुंदर-लाल त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, श्रीरामकुमार विद्यार्थी 'रावी' की डायरियां उल्लेखनीय हैं। डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने अपने विद्यार्थी जीवन की दशा को क.द्र म. रखकर डायरी लिखी जबकि इसके बाद उन्होंने अन्य कोई डायरी लिखी हो इसका प्रमाण नहीं है। राहुल सांकृत्यायन की डायरी मूलतः यात्रावृत्तात्मक है। यात्रावृत्त लेखन के लिए डायरी शैली अधिक उपयुक्त समझी जाती है। रामकुमार विद्यार्थी की डायरी 'बुकसेलर की डायरी' के नाम से प्रकाशित है। इसम. उन्होंने घर-घर तथा विद्यालयों म. जाकर पुस्तक. बेचने के कड़वे-मीठे संघर्षमय जीवन के अनुभवों का अत्यंत मार्मिक शैली म. शब्दांकन किया है। सियारामशरण गुप्त की डायरी 'दैनिकी' के नाम से प्रकाशित है। पं.नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ की डायरी को हिंदी की मौलिक, कलात्मक एवं श्रेष्ठ डायरी माना गया है। इसम. वर्ष 1930 के पूर्व का कालखंड है। इसम. डायरीकार की गहन अनुभूतियों से युक्त प्रविष्टियां तथा तत्कालीन अनेक सच्ची घटनाओं का विवरण है। विजयकुमार बासु की डायरी मूल बांग्ला से हिंदी म. अनुदित हुई है। यह डायरी उन्होंने अपनी चीन यात्रा के कार्यकाल को क.द्र म. रखकर लिखी है। इसम. दर्ज कालानुक्रम सन 1938 से 1943 के बीच का है. डॉ. बासु अपने चार डॉक्टर मित्र सदस्यों के साथ चीन म. एक मेडिकल मिशन पर गए थे। इस मिशन म. उनके साथ महाराष्ट्र के डॉ. कोटनिस भी थे। युद्ध के दौरान घायलों, बीमारों, बच्चों, बूढों को बचाने, उनका इलाज करने जैसी कर्तव्यपरायणता एवं सेवाभाव का दैनिक विवरण इस डायरी म. मिलता है। डॉ. बासु की यह दैनंदिनी भारत-चीन मित्रता के संदर्भ म. एक महत्वपूर्ण दस्तावेज के रूप म. स्थापित है। यह डायरी लिखते समय भारत-चीन म. उतनी कड़वाहट नहीं थी जितनी सन 1962 के युद्ध के बाद पैदा हुई। अपनी आखिरी सांस तक घायलों की देखभाल का बड़ा ही साहसी एवं खतरों से भरा विवरण इस दैनंदिनी म. मिलता है।

हिंदी की अन्य कुछ विशिष्ट एवं असाधारण डायरियों म. जिनम. हिंदी के कुछ विख्यात साहित्यकार भी हैं, बच्चन की 'प्रवास की डायरी', दिनकर की डायरी, मोहन राकेश की डायरी, चंद्रशेखर की' मेरी जेल डायरी', रामेश्वर टांटिया की' क्या खोया क्या पाया' शिवपूजन सहाय की' जीवन दर्पण' और'आत्मनंदिनी', पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की 'मेरी डायरी', बिशन टंडन की 'आपातकालः एक डायरी', प्रशांत कुमार की' आपातकाल के उन्नीस महीने' आशा सान की डायरी, मीना कुमारी की' चालीस मील लंबी मौत' आदि डायरियों को स्थान दिया जा सकता है। कुछ डायरियां डायरीकार के निजी जीवन के साथ उसे प्रभावित करनेवाली घटनाओं, प्रसंगों को क.द्र म. रखकर लिखी गई हैं। इन डायरियों को पढ़ते समय ही पता चलता है कि एक बेचैनी है जो डायरीकार से यह सब लिखवा रही है। यह डायरियां हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। आपातकाल को क.द्र म. रखकर लिखी गई डायरियां तत्कालीन राजनीतिक इतिहास का महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। इन डायरीकारों के परिवेश एवं व्यक्तित्व को देखा जाए तो पता चलता है कि हर कोई परस्पर भिन्न क्षेत्रों एवं कार्यों से

संबद्ध है। कोई साहित्यकार है, कोई अभिनेता, कोई राजनेता, कोई सरकारी अफसर तो कोई सामान्य कार्यकर्त्ता या शिक्षक। आश सान तो मात्र 18-19 वर्ष की एक युवती है जो सिंगापुर म. रहती है। आशा सान का संपूर्ण परिवार आजाद हिंद सेना के क्रांतिकारियों के निकटस्थ है। आशा सान नेताजी सुभाषचंद्र बोस के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं और बहुत ही कम आयु म. नेताजी के फौज म. भर्ती हो जाती हैं। सान की यह डायरी 'सुभाष डायरी' नाम से भी परिचित है। इसम. आशा की निर्भीकता, साहस एवं सक्रियता का तथा नेताजी के उन पर पड़े विलक्षण व्यक्तित्व के प्रभावों का सजीव अंकन मिलता है। 19 जून,1943 के आशा के डायरी की यह प्रविष्टि देख-आज, तेईकोकु होटल म. चाय पार्टी पर सभी प्रवासी भारतीय जमा हुए थे। इतने भारतीयों के बीच एक नेताजी ही जिनके प्रति श्रद्धा की भावना जगी। पार्टी म. केवल भारतीय ही थे। एक भी जापानी नहीं। अतः हिंदुस्तानी म. ही बातें करनी पड़ी, अंग्रेजी म., जापानी म. बात. करने की अनुमति नहीं थी। हमारे बार-बार कहने पर मां ने नेताजी से अनुरोध किया कि हम दो बहनों को भी बैंकॉक ले जाएं तथा रानी झांसी रेजिम.ट म. भर्ती कर लें। नेताजी थोड़ा मुस्कुराकर बोले,' ये लोग लड़ाई लड़ सक.गी? इतनी नाजुक। 'हम लोगों को लगा जैसे शरीर म. आग लग गई हो। तमतमाकर बीच म. ही बोल पड़ी, हम लोग लड़ सकते हैं, देश के लिए मर सकते हैं आपको मालूम।'

डायरी की यह प्रविष्टि अत्यंत सामान्य है तथा सहज एवं सरलता से लिखी गई है। डायरी म. कलात्मकता या वर्णनात्मकता नहीं होती। जैसा अनुभव किया वैसा ही लिख दिया। डायरी लेखन है तो पूर्णतः जीवनपरक परंतु कथात्मक नहीं। यही कारण है कि डायरी प्रायः कथेतर गद्य की विधा मानी जाती है। प्रतिदिन अर्थात 'डे टू डे' की तरह हर दिन की घटनाओं, प्रसंगों, गतिविधियों, अनुभवों, विचारों को पूरी निष्ठा एवं तन्मयता से लिखने पर डायरी बनती है। गांधीजी ने तो डायरी लिखने की एक विशिष्ट संहिता बनाई थी और उसे जीवन साधना का एक अंग माना था। उन्होंने यह भी कहा था कि डायरी जीवन म. अनुशासन पैदा करती है। प्रतिदिन इस तरह अपने आपको लिखना या अपने जीवन परिवेश को व्यक्त करना सामान्य बात नहीं है। जीवन की साधारण से साधारण दिखनेवाली घटनाएं और कार्य भी डायरी का विषय बनते है। कुछ लोगों के लिए डायरी लिखना एक नशे की तरह है। राजस्थान के जोधपुर के निवासी लीलाधर लखपति एक ऐसे ही विरल डायरीकार हैं जो सन 1949 से प्रतिदिन डायरी लिखते रहे हैं। उनका यह डायरी संसार अब 55 वर्षो की 55 डायरियों के रूप म. एक अनूठी धरोहर बन चुका है। उनकी डायरी म. घर-मोहल्लों की छोटी-बड़ी घटनाओं-प्रसंगों के अतिरिक्त विश्व भर की घटनाओं का विवरण और रोचक किस्से, किस देश म. कब कौन प्रधानमंत्री या अध्यक्ष बना, किस देश ने किस देश पर कब हमला किया, कब-कब कहां-कहां भूकंप आए और रेल या अन्य दुर्घटनाएं हुई आदि तमाम तरह की राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय हलचलों एवं बदलावों का लेखाजोखा मिलता है। शादी-ब्याह, जन्म-मरण, पति-पत्नी के झगडे, तलाक, दंगे- फसाद आदि तमाम तरह की उठापठक का क्रमिक विवरण मिलता है। इसे आप उनका डायरी लिखने का शौक या सनकीपन भी कह सकते है परंतु आज कालांतर म. यह सब एक महत्वपूर्ण कार्य के रूप म. स्थापित हो चुका है और लगभग गैजेटीयर का स्थान प्राप्त कर चुका है। इस विषय में एक रोचक तथ्य यह है कि जब जिले के कलेक्टर को कोई महत्वपूर्ण जानकारी जो सरकारी रिकॉर्ड म. नहीं मिली वह लीलाधर की डायरी म. मिल गई। यह डायरी लिखने का एक असाधारण फल कहा जा सकता

है। डायरी लेखन निजी होते हुए भी अत्यंत सूचनात्मक, इतिहासपरक, रोचक और उपयुक्त भी होना चाहिए।

हिंदी के विख्यात साहित्यकार शिवपूजन सहाय अपने जीवनकाल म. नियमित डायरी लिखते रहे हैं। उनके डायरी लेखन का सूत्र वाक्य है,- मनुष्य के जीवन का दर्पण है दैनंदिनी। 'दर्पण से आशय है जिसम. ईमानदारी से जिया गया जीवन प्रतिबिंबित हुआ हो। अर्थात जिसम. डायरीकार ने मात्र सत्य और सत्य ही लिखा हो। इस प्रकार डायरी लेखन की पहली कसौटी होती है डायरीकार का प्रामाणिक और सच्चा होना। डायरी म. असत्य या कल्पना का कोई स्थान नहीं है। वास्तविक जीवन म. प्रामाणिक व्यवहार और सत्यपूर्ण आचरण ही डायरी लिखने का पथ प्रशस्त कर देता है। इसका परिणाम यह होता है कि डायरीकार स्वयं ही पापपूर्ण आचरण से, गुनाह करने से बचा रहता है क्योंकि डायरी उसे देख रही है। डायरी अंतरात्मा की तरह है। डायरी लिखते समय ईमानदारी से समझौता नहीं किया जा सकता। शिवजी ने जीवन के अंतिम समय तक डायरी लिखी। वे प्रतिदिन समानांतर रूप से दो डायरियां लिखते थे। एक डायरी म. वे अपनी निजी जीवन की घटनाओं, कार्यों, सरोकारों, सामान्य बातों एवं दिनचर्या का विवरण देते थे। दूसरी डायरी म. मनुष्य समाज, जीवन, धर्म, राष्ट्र, राजनीति, साहित्य, कला ,शिक्षा आदि विषयों के साथ व्यक्तिपरक संस्मरणों को स्थान देते थे। शिवजी के हिंदी डायरी साहित्य के उत्कर्ष एवं विकास म. योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। उनकी यह डायरियां जीवन दर्पण भाग-1 एवं भाग-2 तथा आत्मनंदिनी (विचार डायरी) के नाम से प्रकाशित हैं और मूल पांडुलिपि नेहरू स्मारक संग्रहालय म. सुरक्षित हैं।

वस्तुतः डायरी लिखने के पीछे कई तरह के मनोविज्ञानिक कारण होते हैं। डायरी लिखने का नशा या सनकीपन अलग चीज है। अकेलेपन म. मन बहलाव हेतु डायरी लिखना दूसरी बात है। साहित्यकारों का तर्क यह है कि जीवन का बहुत कुछ अनुभव ऐसा होता है जिसे वे कविता, कहानी, उपन्यास आदि के माध्यम से नहीं कह सकते। ऐसी स्थिति म. डायरी ही उनके लिए सहायक होती है। डायरी जहां जीवन म. पहरेदार का काम करती है वहीं अकेलेपन का सहारा भी होती है। कई डायरीकारों ने डायरी म. अपने पारिवारिक जीवन की समस्याओं, परेशानियों, चिंताओं, जिम्मेदारियों, चुनौतियों के अतिरिक्त अपनी अक्षमताओं, अकिंचनताओं, मान-अपमान, सुख-दुःख का मार्मिक एवं भावुकता से भरा अंकन किया है। आचार्य शिवजी ने पत्नी के देहांत के बाद के अपने अकेलेपन से भरी जिंदगी का, पत्नी वियोग की त्रासदी का, बच्चों की देखभाल और अनेक परेशानियों का बड़ा ही संवेदनशील विवरण प्रस्तुत किया है। पत्नी की मधुर स्मृतियाँ उन्ह. क्षण-क्षण उद्वेलित करती हैं पर वे इसे राम की इच्छा मानकर स्वीकार कर लेते हैं। केवल इतना ही नहीं बल्कि बिन मां के बच्चों को देखकर उनका संवेदनशील पिता हृदय डायरी म. स्थान-स्थान पर कराह उठता है।

बच्चन की 'प्रवास की डायरी' म. उनकी अपने शोधकार्य के प्रति निष्ठा, स्वाध्याय, चिंतन- मनन, चिकित्सक दृष्टि, जिज्ञासु वृत्ति, विषय की गहराई म. जाने की ललक, अध्यापकीय सरोकार, दिनचर्या, परिवार की चिंता तथा अनेक विषयों से संबधित स्पष्ट प्रतिक्रियाओं का निःसंकोच एवं सरल विवरण मिलता है। केंब्रिज एवं ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों के शैक्षिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का जीवंत चित्रण मिलता है। पाश्चात्य जीवनशैली, धर्म, कला, संस्कृति, भाषा, साहित्य, शिक्षा, अध्यात्म, वहां का समाज, रीती-रिवाज, परस्पर सरोकार, राजनीति, विज्ञान,भारत के बारे म. उनकी दृष्टि, बहुआयामीय

परिवेश आदि के संबंध म. बच्चन के सूक्ष्म निरीक्षण, प्रतिक्रियाएं तथा भारतीय संस्कृति एवं परिवेश को लेकर उनकी तुलनात्मक चिंतन की वीथियां इस दैनंदिनी को अत्यंत स्तरीय और विशेष बनाती है। यह डायरी काफी रोचक एवं पठनीय है। इसी के साथ रामधारी सिंह 'दिनकर' की डायरी भारत के साहित्यिक एवं राजनीतिक दस्तावेज के रूप म. हिंदी की एक अनूठी एवं महत्वपूर्ण डायरी मानी जाती है। इसम. दिनकर ने अपने तमाम निजी अंतर्बाह्य जीवन का बेबाक अंकन किया है। इस डायरी म. प्रस्तुत कालखंड लगभग ग्यारह वर्षों का है जिसमें निजी पारिवारिक जीवन के अतिरिक्त अपने रचनाकर्म, साहित्यिक सरोकारों एवं गोष्ठियों, राजनीतिक कार्यों एवं सरोकारों, देश-विदेश की यात्राओं, दैनिक चिंतन-मनन, पठन, निजी जीवन के उतार-चढ़ाव, परिवारिक जिम्मेदारियों, चिंताओं, परेशानियों, बेचैनियों, कलह, व्यग्रताओं का प्रामाणिक एवं भावुकतापूर्ण अंकन किया है। यह डायरी संपादित है और मूल डायरी से बहुत सी बातें, प्रसंग, ब्योरे उन्होंने स्वयं निकल दिए हैं। इस बारे म. दिनकर दलील देते हैं कि 'मैं न गांधी हूं न रवींद्र, जिनका उठना-बैठना, बोलना-चलना,सब कुछ महत्व रखता हो' बहुत सी चीजें तो इस दृष्टि से छांट दी गई हैं। कुछ ऐसी बातों को भी पुस्तक म. जाने से मैंने रोक लिया है, जिन्ह. प्रकाशित करने के साहस का मुझम. अभाव है। ऐसी जो थोड़ी-सी बात. धर्मयुग म. छप गईं, उनको लेकर ही च.-चें-पें-प. मच गई लेकिन उन अंशों को तो मैंने ज्यादातर रोक लिया है जो मेरी पारिवारिक विपत्ति से संबधित है और जिनका संबंध मेरे रोने-कांदने और सर पीटने से है।

डायरी म. तमाम तरह के भावुक प्रसंग जिसम. डायरीकार रोता है, तड़पता है, सर पीटता है, झल्लाता है, झुंझलाता है डायरी के विषय बनते हैं। यह लिखित प्रविष्टियां जब कभी वह एक-दो वर्ष बाद पढ़ता है तो उसे स्वयं इस पर अनायास आपत्ति होती है। प्रकाशित करते समय वह इन बातों को स.सर करना चाहता है। यद्यपि कुछ डायरीकार 'जस के तस' का जोखिम उठाते है। मोहन राकेश ने ऐसा किया परंतु प्रायः ऐसा नहीं होता। डायरी म. डायरीकार बोल्डनेस उसे ठोस और उम्दा बनाता है। इसके लिए कमलेश्वर ने पोस्टमार्टम शब्द का प्रयोग किया है। वे लिखते हैं- 'डायरियां, लेखक का अपने हाथ से किया गया पोस्टमार्टम है। एक लेखक कैसे तिल-तिलकर जीता और मरता है, अपने समय को सार्थक बनाते हुए खुद को कितना निरर्थक पाता है और अपनी निरर्थकता म. कैसे वह अर्थ पैदा करता है। इसी रचनात्मक संघर्ष को डायरियां उजागर करती हैं।' डायरी केवल आत्मसंघर्ष के अंकन का साधन नहीं है। वह आत्मालोचना एवं आत्मावलोकन की भी चीज है। इस संबंध म. मोहन राकेश की डायरी किसी हिंदी साहित्यकार की सबसे अधिक निजी एवं आतंरिक बातों को उद्घाटित करने वाली पहली डायरी मानी जा सकती है। उन्होंने अत्यंत साहस एवं बेलौसपन के साथ स्वयं को व्यक्त किया है। मोहन राकेश, दिनकर बच्चन, शिवपूजन सहाय, मलयज की डायरियां स्वतंत्रयोत्तर हिंदी डायरी साहित्य की प्रतिनिधि डायरियां है। इन डायरीकारों ने हिंदी डायरी का वर्तमान और भविष्य को दिशा देने का काम किया परंतु जैसे ही 20वीं शताब्दी का अंत और 21वीं का प्रारंभ होता है तो साहित्यकारों की डायरियों के प्रकाशन म. तेजी मिलती है पर यह भी दिखता है कि डायरी लेखन की पूर्व परंपरा तो लगभग ध्वस्त होने की स्थिति म. है। 21वीं सदी म. हिंदी डायरियों के प्रकाशन का लंबा क्रम शुरू होता है। इन प्रकाशित डायरियों म. 20वीं सदी का उत्तरार्द्ध भी प्रस्तुत है और 21वीं सदी का प्रारंभिक डेढ़ दशक भी। यह समय भूमंडलीकरण, निजीकरण और संचार साधनों के अत्यधिक उत्कर्ष का समय है। दूरदर्शन, मोबाइल, इंटरनेट, स्मार्टफोन, सीसीटीवी आदि ने मनुष्य जीवन का

अंतर्बाह्य परिवेश,संरचना और परस्पर संबंधों म. काफी परिवर्तन लाया। पत्र- साहित्य की जगह ईमेल ने ले ली। डायरी की जगह ब्लॉग और ट्वीटर काम कर रहा है। कई तरह के व्यक्तिगत ब्लॉग खुल गए है। फिर भी पुस्तकाकार डायरी लिखने का चलन कम नहीं हुआ है। हिंदी के अनेक छोटे-बड़े साहित्यकार डायरी लिखने लगे हैं और प्रकाशित भी करा रहे हैं। प्रकाशन समूहों की रूचि डायरियों के प्रकाशन म. बढ़ी है। पत्र-पत्रिकाओं म. डायरियों के अंश प्रकाशित हो रहे हैं। भिन्न- भिन्न क्षेत्रों से अनेक डायरी लेखक सामने आ रहे है। अध्यापक, लेखक, कवि, राजनेता, डॉक्टर, सामाजिक कार्यकर्ता, पत्रकार, कैदी, सरकार कर्मचारी, अधिकारी, छात्र, कलाकार, वकील, घरेलु एवं कामकाजी महिलाएं आदि। डायरी लिखने एवं प्रकाशित करने वालों म. हिंदी के साहित्यकार अग्रणी हैं। हिंदी के समकालीन डायरीकारों म. रमेशचंद्र शाह, नरेंद्र मोहन, रामदरश मिश्र, विज.द्र, कृष्ण बलदेव वैद, बालकवि बैरागी, जाबिर हुसैन, अजीत कुमार, जयनारायण कौशिक, माधव नागदा, साधना अग्रवाल, जितेंद्र कुमार, मालचंद तिवाड़ी, आग्नेय, देवेंद्र मेवाड़ी, सियाराम तिवारी, जवाहरलाल शास्त्री, गोविंद प्रसाद, संगीता सेठी, दामोदरदत्त दीक्षित, शोभनाथ यादव, सत्यनारायण, चमेली जुगरान, क्षमा कौल, सुधीर विद्यार्थी, रमेशचंद्र द्विवेदी, गोपाल शर्मा, कृष्णदत्त पालीवाल, लीलाधर लखपति, कुमुदिनी दुबे, परमानंद श्रीवास्तव, गिरिराज किशोर, लीलाधर मंडलोई, आर.अनुराधा. विश्वनाथ शुक्ल, तेजिंदर, महेश भट्ट, आस्था नवल, ऋचा नागर, ऋचा सिंह, एकांत श्रीवास्तव, ओम नागर, राहुल राजेश, हेमंत द्विवेदी, नीलाभ अश्क, निदा निवाज, द्रोणवीर कोहली, कुमार अंबुज, वेदप्रकाश बटुक, प्रताप सहगल, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, राजेश जोशी, कुंवर नारायण, सत्यकाम, रमानाथ त्रिपाठी, इला रमेश भट्ट, विद्यासागर नौटीयाल, हरिंदर बवेजा, विष्णुचंद्र शर्मा, चंद्रेश्वर कर्ण, सत्येंद्र श्रीवास्तव, शिवरतन थानवी आदि उल्लेखनीय हैं। यह सभी हिंदी की नई पीढ़ी के डायरीकार हैं।

हिंदी डायरी के विकासक्रम म. किताबघर प्रकाशन ने महत्वपूर्ण पहल की। उन्होंने दिसंबर, 2006 म. हिमांशु जोशी के संपादन म. 'डायरीः अंर्तजीवन के साक्ष्य' शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की। इसम. दस डायरी लेखकों के डायरियों के अंश प्रकाशित हैं। पुस्तक की भूमिका म. कमलेश्वर, हिमांशु जोशी, अरूण प्रकाश, ममता कालिया, कन्हैयालाल नंदन, कमलेश्वर के वक्तव्य प्रकाशित हैं। यह वक्तव्य हिंदी डायरी इतिहास, वर्त्तमान भविष्य के अतिरिक्त उसके वर्तमान स्वरूप एवं संभावनाओं पर प्रकाश डालते हैं। वस्तुतः डायरी एक खुली विधा है। उसकी संरचना और स्वरूप स्पष्ट है। केवल नियमित डायरी लिखना ही डायरीकार की सबसे बड़ी कसौटी है। इसम. 'स्व' से 'पर' तक सब कुछ समा सकता है। डायरी जहां एक विधा है वहीं एक लेखन शैली भी है। इस शैली म. अनेक काल्पनिक उपन्यास एवं कहानियां भी लिखी गई हैं। इधर के कुछ वर्षों म. डायरी लिखने वालों ने उसकी रूप-संरचना म. कई तरह के प्रयोग किए हैं। डायरी की कालानुक्रम योजना को तो आघात पहुंचाया है ही पर उसकी विषयवस्तु को लेकर अनेक मनमाने हस्तक्षेप किए हैं। अब लोग सावधानी से डायरी लिखने लगे हैं। डायरी के लिए जीवन के समस्त अंगों को समग्रतः समाहित करने वाले जो विषय हो सकते है उनके अंकन म. सावधानी एवं सतर्कता बरती जा रही है उनम. व्यक्तित्व का खुलापन (बोल्डनेस) नहीं है। डायरीकार साहस या जोखिम नहीं उठा रहे हैं। एक प्रामाणिक, सच्ची और दम-दार डायरी के मायने बदल गए हैं। डायरी को डायरी जैसा ही होना चाहिए। केवल कालानुक्रम रख देने मात्र से डायरी-डायरी नहीं बनती उसम. व्यक्तिगत जीवन की चेतना प्रवाहित होनी चाहिए।

घटनाओं, प्रसंगों की उपस्थिति उसे जीवंत बनती है। वैसे डायरी के विषयवस्तु के अनुसार अनेक रूप एवं प्रकार होत. है। इस लेख का विषय जीवनपरक अथवा साहित्यिक डायरी है जिसका केंद्रीय विषय डायरीकार का निजी जीवन है। इस जीवन के मुख्यतः आंतरिक और बाह्य दो पक्ष हैं। डायरी म. निजी जीवन का वर्णन या अंकन कैसे हो? उसमे क्या और क्यों लिखा जाए? यह प्रारंभ से विवाद और विचार का विषय रहा है। इस संदर्भ म. कुछ डायरियों ने निश्चित ही डायरी लेखन के मानदंड स्थिर किए हैं परंतु सद्यः प्रकाशित अनेक डायरियों के अवलोकन करने पर निराश होती है। कुछ म. तो नितांत दिनचर्यात्मक बात. लिखी है जो नितांत नीरस एवं बेकार की हैं। कुछ डायरियों म. साहित्यिक यात्राओं, चिंतन-मनन, पुस्तकों के अध्ययन और टिप्पणियों की प्रमुखता है। कई डायरियों म. डायरीकार का जीवन, परिवार, परिवेश ही नदारद है। उसका आतंरिक भावजगत तो और भी दूर की कौड़ी है। डायरी को नियमित लिखने की भी आवश्यकता नहीं रही है। हिमांशु जोशी हिंदी डायरी साहित्य पर गंभीर आरोप करते हुए लिखते हैं- 'हिंदी म. डायरी लिखने की परंपरा नहीं के बराबर है। बहुत कम लेखक है जो नियमित रूप से कुछ लिखते है।' इनकी दृष्टि म. नियमित डायरी लिखना ही डायरी है। वे मोहन राकेश की डायरी पर भी आक्षेप करते है, 'कुछ वर्ष पूर्व मोहन राकेश की डायरी विशेष चर्चा का विषय बनी थी, मैंने भी पढ़ी, पर किसी हद तक तृप्ति नहीं मिली। किसी व्यक्ति के सरोकार क्या हैं, यह जानना चाहते हैं तो उसकी डायरी पढ़ना अनिवार्य है मोहन राकेश की डायरी म. व्यक्तिगत बात. बहुत थी,पर समय के सरोकार कहाँ थे? डायरी म. क्या हो इस बारे म. पाठकों की रूचियां भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। प्रायः पाठकों की दिलचस्पी डायरीकार के निजी जीवन की गोपनीय बातों को जानने की होती है। जोशीजी चाहते है कि डायरी म. पाठकों को तृप्त करने वाली बात होनी चाहिए। कोई पाठक डायरीकार के सामाजिक सरोकार जानना चाहता है। कोई उसकी जीवन दृष्टि तो कोई उसका रचनाकर्म जानना चाहता है। इस बारे म. परस्पर मत भिन्नता का होना स्वाभाविक है।

आजकल हिंदी म. रमेशचंद्र शाह, नर.द्र मोहन, रामदरश मिश्र, विज.द्र, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, लीलाधर मंडलोई, कृष्ण बलदेव वैद, जाबिर हुसैन, एकांत श्रीवास्तव, जयनारायण कौशिक, कुंवर नारायण आदि की डायरियां चर्चा का विषय है। इनम. से कुछ ने स्पष्ट कर दिया है कि वे नियमित डायरी नहीं लिखते। उनके जीवन म. जब किसी दिन ऐसा कुछ होता है जो डायरी म. लिखने योग्य है तो उसे डायरी म. नोट कर लेते हैं। रमेशचंद्र शाह की अब तक क्रमशः चार डायरियां प्रकाशित हो चुकी है 'अकेला मेला', इस खिड़की से','आज और अभी' और 'जंगल जूही' शाह की डायरियों म. उनका निजी या घरेलू जीवन लगभग न के बराबर व्यक्त हुआ है परंतु उनके सामाजिक एवं अकादमिक सरोकार, व्यक्तिगत चिंतन-मनन, विचार, अध्यापकीय चिंताएं, साहित्यिक यात्राएं, मेल-मुलाकात., पत्राचार, पुस्तकों के संदर्भ, संक्षेप म. विश्लेषण आदि उनकी डायरी की विषय-वस्तु है। डॉ. नामवर सिंह ने उनके इस लेखन को 'टेबुल टॉक' कहा है। इस तरह रमेशचंद्र शाह ने डायरी लिखने में एक नई पद्धति का सृजन किया है। उनसे पूर्व इस तरह की डायरियां हिंदी म. नहीं मिलती। शाह का व्यक्तित्व मुख्यतः एक कवि, आलोचक एवं कथाकार का है परंतु अपनी डायरी म. वे एक जिज्ञासु एवं अध्ययनशील पाठक, चिंतक, आलोचक और समर्पित अध्यापक के रूप म. प्रकट होते हैं। उनकी बहुत-सी प्रविष्टियां दुर्लभ पुस्तकों के परिचय एवं उनके उद्धरणों से प्रारंभ होती हैं। पुस्तकों की

चिकित्सा और समीक्षा करते हुए वे अपने पर पड़े प्रभावों को भी अंकित करते हैं। फिल्मों को देखने और उनके विश्लेषण की प्रविष्टियां यथास्थान मिलती हैं। आत्मसंवाद शैली के दर्शन डायरी म. होते हैं। 20 फरवरी, 2002 की यह प्रविष्टि देखें-'सपने म. कोई मुझसे मेरे कान म. कह गया अभी तक उस फुसफुसाहट की खुजली मची हुई है मेरे कान म.; 'क्रियेटिविटी-क्रियेटिविटी जो तुम जपते रहते हो आठों याम, वह तुम्हारा नहीं ,यूरोप का सरोकार है तुम्हे उससे क्या लेना! भारत आध्यात्मिक देश है तुम्हारी क्रियेटिविटी से कहीं बड़ी चीज' क्या मतलब है तुम्हारा? मैंने जोरों से प्रतिवाद किया।'

नर.द्र मोहन हिंदी म. कवि, नाटककार एवं आलोचक के रूप म. परिचित हैं परंतु एक डायरीकार के रूप म. भी उन्होंने अपनी विशिष्ट जगह बनाईं है। उनकी अब तक 'साथ-साथ मेरा साया' और 'साए से अलग' यह दो डायरियां प्रकाशित हैं और तीसरी 'साहस और डर के बीच' शीघ्र प्रकाश्य है। वे मानते है कि डायरी लिखने के लिए व्यक्ति का साहसी होना आवश्यक है। उनका स्पष्ट कहना है कि डरा हुआ आदमी डायरी नहीं लिख सकता। डर के अनुभव को बताने के लिए भी डर से मुक्ति जरूरी है। यद्यपि उन्होंने डायरी नियमित नहीं लिखी परंतु युवावस्था से वे डायरी लिखते रहे हैं। प्रकाशित डायरियों म. अपने आत्मजगत के अतिरिक्त तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक सरोकार, अनेक घटनाक्रम, गतिविधियों के साथ कई निजी घरेलू पारिवारिक प्रसंगों, मानसिक उधेड़बुनों, अंतर्द्वंद्वों का अत्यंत मार्मिक एवं यथार्थपरक अंकन है। हिंदी विभागों की राजनीति, साहित्यिक गुटबाजियां, साहित्यिक यात्राएं, सभा-संगोष्ठियों के अनुभव, आपातकाल का संघर्ष, देश के विभाजन की स्मृतियां आदि उनकी डायरियों को ऐतिहासिक महत्व प्रदान करती है। डायरी म. भयभीत 'निंदर' नहीं बल्कि साहसी निर्भीक नरेंद्र मिलता है। 2 अप्रैल, 2007 की यह प्रविष्टि देखें, 'मंच अँधेरे म.' लिखने के बाद मैंने काफी राहत महसूस की है, 'मिस्टर जिन्ना' नाटक के मंचन को लेकर जो हुआ उसका गम मुझे सालता रहा है। उन दिनों अभिनेताओं और निर्देशकों की अंतर्व्यथा को मैंने करीब से महसूस किया था। उनकी दुर्दशा को देखकर मुझे आपातकाल म. कलाकारों के साथ हुई ज्यादतियों की याद आ गई। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मुद्दा मुझे आपातकाल की तरफ ले गया और मैं सत्ता के खेल म. पिसते हुए कलाकार की जिंदगी की विसंगतियों पर आ टिका 'मंच अँधेरे म.' लिखते हुए।

रामदरश मिश्र कवि, कहानीकार एवं उपन्यासकार के साथ साथ डायरीकार के रूप म. भी अपनी पहचान बनाने म. सफल हुए हैं। उन्होंने हाल ही म. अपनी आत्मकथा भी लिखी है। डायरी लिखते हुए उन्होंने अपने साहित्यिक व्यक्तित्व को नया आयाम दिया है और हिंदी डायरी को साहित्यिक एवं रचनात्मक मूल्य प्रदान कर नई दिशा भी दी है। अपने डायरी लेखन के बारे म. वे कहते हैं 'कविता, कहानी, उपन्यास और आत्मकथा लिखने के बावजूद जीवन का कुछ ऐसा बचा रहता है जिसे बताने के लिए मैंने डायरी को चुना है। रामदरश मिश्र की अब तक दो डायरियां प्रकाशित हैं 'आते जाते दिन' और 'आस-पास'। इनम. भी डायरी प्रतिदिन और नियमित लिखने आग्रह नहीं है। डायरीकार ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध म. डायरी लिखना प्रारंभ किया। अतः विगत दिनों की कई घटनाएं, प्रसंग, अनुभव आदि को उन्होंने संस्मरण शैली म. डायरी म. दर्ज किया है। उनम. आत्माभिव्यक्ति की तड़प एवं तीव्रता मिलती है। पारिवारिक संबंध, सामाजिक एवं साहित्यिक सरोकार, साहित्यिक यात्राओं, सभा-सम्मेलनों, गोष्ठियों, कार्यशालाओं के विवरण डायरियों म. अनेक स्थलों पर हैं। समकालीन

साहित्यिक एवं साहित्येतर मित्रों के साथ अपने संबंधों को डायरीकार ने बहुत महत्व दिया है तथा कई ऐसी प्रतिक्रियाएं एवं टिप्पणियां की हैं जो उनके विनम्र, शालीन एवं सादगी भरे व्यक्तित्व की परिचायक है। डायरी म. उनकी चिंतन-मनन की सरणियां और चिंताएं भी प्रकट हुई हैं। समाज म. फैलती गुंडागर्दी, झूठ, फरेब, आतंक और दिखावेपन पर वे आक्रोश प्रकट करते हैं। साहित्यिक गुटबाजी और वर्गीय समीकरणों पर वे अपनी व्यथा को 1 फरवरी, 2006 को लिखते हैं- 'अन्य कवि इसलिए नहीं आए क्योंकि नीरज को बुलाया गया था और नीरज क्यों नहीं आए यह तो नीरज ही जानें। नीरज आते तो? नहीं आए तो मेरे लिए कोई फर्क नहीं पड़ता है। मैं साहित्य म. समीकरणवाद से अपने को कसकर नहीं चला। मेरे लिए न नीरज अछूत हैं न अशोक वाजपेयी। दोनों के साथ बैठने म. मुझे कोई अनौचित्य नहीं लगता।

हिंदी के वरिष्ठ कवि विज.द्र ने हाल ही म. अपनी काव्यालोचनात्मक डायरी को प्रकाशित कर हिंदी डायरी साहित्य के विकास म. महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी अब तक चार डायरियां प्रकाशित हो चुकी है 'अंतर्यात्रा के साए','धरती के अदृश्य-दृश्य', 'सतह के नीचे' और 'अनजानी पगडंडियां'। विज.द्र हिंदी की समकालीन डायरी परंपरा के प्रतिनिधि डायरीकार हैं। विज.द्र ने भी यदाकदा ही डायरी लिखी है जिसम. उनका कवि व्यक्तित्व ही प्रखरता से प्रकट हुआ है। कविता उनका प्राण है। उनकी अनेक प्रविष्टियां काव्य प्रेरणाओं एवं कव्यालोचानाओं से युक्त है। लोकधर्मी काव्य परंपरा के वे उन्नायक हैं। वे कहते है कि रोजमर्रा के बोलचाल के काम म. आने वाली भाषा ही कविता की असली भाषा है। कविता, कविता की भाषा, काव्यकला, चित्रकला, काव्य सौंदर्य,काव्य दर्शन और रचनाशीलता के विविध पक्ष से संबंधित उनकी टिप्पणियां डायरियों म. स्थान-स्थान पर देखी जा सकती है। इसी तरह जीवन के तमाम झाम-झमेलों, उधेड़बुनों और सपाटपन से उत्पन्न अनुभूतियां काफी अर्थवान है। 10 फरवरी, 2000 की प्रविष्टि म. समकालीन युगपरिवेश और रचनाधर्मिता पर लिखते हैं- 'मैं अपने कर्म को कितने संयम और अनुशासन से पूरा करता हूं यह बताने वाला समाज अब नहीं है। न तो लेखक, न तो श्रेष्ठ नागरिक जन न कोई आलोचक। मूर्धन्य और शीर्षस्थ कोई जोखिम को नहीं उठा रहा कि वो रचनाकार को गिरने से बचा सके। क्या कैसे बचाया जाए। बहुत फौरी और सनसनीखेज बातें कहना आसान है। हमारा जीवन ऊपर उठ सके ऐसी बातें कहना विरल है। आज यह कहने वालों की भरमार है कि लेखक का चरित्र या आचरण जैसा भी हो, पर रचना श्रेष्ठ हो।'

इधर के इन पंद्रह-बीस वर्षों म. हिंदी म. अनेक डायरियों का प्रकाशन हुआ। आज भी हो रहा है। कुछ साहित्यकारों की एक से अधिक डायरियां प्रकशित हुई हैं और होगी। यह हिंदी डायरी के भविष्य के लिए एक अच्छा संकेत है। अन्य डायरीकारों म. कृष्णदत्त पालीवाल की 'जापान म. कुछ दिन' विशुद्ध यात्रावृत्त है। जयनारायण कौशिक की डायरी दो भागों म. प्रकाशित है- 'शिक्षा के चलचित्र' और 'स्नातकोत्तर विद्यार्थी जीवन'। कौशिकजी ने 19 वर्ष की अवस्था म. डायरी लिखना आरंभ किया। इन डायरियों म. विद्यार्थी जीवन का सघर्ष, संकल्प एवं भविष्य की योजनाओं का अंकन है। कृष्ण बलदेव वैद की चार डायरियां प्रकाशित है- 'शम'अ रंग म.','डुबोया मुझको होने ने', 'ख्वाब दीवाने का','अब्र क्या चीज है? हवा क्या है?' इन डायरियों का कालानुक्रम सशक्त नहीं है बल्कि कल, आज, अभी आदि समय संकेतपरक शैली से प्रविष्टियों का प्रारंभ होता है। डायरी म. उनकी रचना

प्रक्रिया, तनाव, आतंरिक विवशताएं, उदासियां, संदेह, खुशियां और संकल्पों का महीन तानाबाना बुना मिलता है। यह डायरी पढ़ने म. रोचक है और हास्यपुट से युक्त है। निर्मल वर्मा की डायरी 'धुंध से उठती धुन' हिंदी की विशिष्ट डायरी है। यह बहुविधात्मक पुस्तक है। यह डायरी भी पठनीय है और वर्माजी के घुमक्कड़ व्यक्तित्व को उजागर करती है। बालकवि बैरागी की डायरी हिंदी म. 'बैरागी की डायरी' के नाम से प्रकाशित है। इसे पूरे एक वर्ष नियमित लिखा गया है।

एक डायरी के लिए जीवन का क्या अनिवार्य है और क्या नहीं इसकी सुंदर भूमिका डायरीकार ने लिखी है। डायरी म. अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि, राजनितिक-सामाजिक-साहित्यिक सरोकार, लोकसंपर्क, साहित्य सेवा एवं साहित्य के प्रतिनिष्ठा, जीवन के उतार-चढ़ाव, मान-अपमान, प्रताड़ना, तिरस्कार, पुरस्कार, सम्मान आदि का अत्यंत रोचक एवं अंतर्मुख करनेवाला विवरण मिलता है। इनके अतिरिक्त कुमुदिनी दुबे की 'अपने आप से बात.', आर. अनुराधा की 'इंद्रधनुष के पीछे पीछे', साधना अग्रवाल की 'बेतरतीब तिथियों म. कहीं मैं फिर मिलूं', परमानंद श्रीवास्तव की 'एक विस्थापित की डायरी', अजीतकुमार की 'कविवर बच्चन के साथ', क्षमा कौल की 'समय के बाद', विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की 'दिन रैन', लीलाधर मंडलोई की 'दिनन-दिनन के फेर' आदि अनेक हिंदी डायरी साहित्य के विकास क्रम को सूचित करनेवाली डायरियां हैं।

डायरी वस्तुतः आत्मप्रकटीकरण की विधा है। आत्मकथा और डायरी म. यह सबसे बड़ा फर्क है। आत्मकथा म. व्यक्ति अपने जीवन को लिखता है और फिर वह अनायास कथा का रूप धारण कर लेती है। डायरी म. व्यक्ति स्वयं को प्रकट या व्यक्त करता चलता है और वह भी दिन क्रम के अनुसार। आत्मकथा के लिए जीवन का पर्याप्त अनुभव होना आवश्यक है। डायरी छोटा बच्चा भी लिख सकता है यानी बच्चे को पर्याप्त जीवनानुभव होना आवश्यक नहीं है। डायरी म. केवल यह लिखना है कि आज मेरे जीवन म. क्या-क्या हुआ? वह क्यों, कैसे और कहां हुआ? मैंने आज क्या जिया आदि। डायरी म. यह सब क्रमवार पद्धति से लिखा जाता है। यानी जीवन म. जिस क्रम से घटनाएं घटी है उन्ह. उसी क्रम म. दर्ज किया जाता है। क्रम को तोड़ना डायरी की मौलिक संरचना को ही ध्वस्त करना है। आजकल हिंदी म. जो अधिकांश डायरियां प्रकाशित हो रही हैं वे कालानुक्रम के अनुसार प्रकाशित नहीं हैं। यह वर्तमान हिंदी डायरी लेखन के संदर्भ म. चिंता करने वाली बात है और यह भविष्य म. नहीं होना चाहिए। दूसरा इनमे जीवन कितना है? यह भी सोचने वाली बात है। आत्मप्रकटीकरण का भाव इनमे वास्तव म. है क्या? इसकी भी समीक्षा होना अनिवार्य है। डायरी का जो परंपरागत ढांचा है उसे तोड़ने का प्रयत्न करने से कुछ विशेष होने वाला नहीं है। इतना जरूर है कि इस हरकत से जो सहूलियत उठाने का काम हुआ है वह तात्कालिक है। डायरी तो कायदे से ही लिखी जानी चाहिए। डायरी के लिए दिनचर्या का विवरण भी आवश्यक है। बशर्ते वह कुछ विशेष महत्व रखता हो। सामान्य व्यक्ति की दिनचर्या कुछ खास महत्व नहीं रखती परंतु डायरी म. सर्वथा महान जीवन के अंकन की अपेक्षा रखना भी बेमानी है। गांधी डायरी की बात अलग है।

अब युग बदल गया है। वर्तमान डायरियों को पढ़ने से लगता है कि अधिकांश रची जा रही हैं यानी कांस्ट्रक्ट। हां, ऐसी डायरियों को एक भिन्न श्रेणी म. रखा जा सकता है। हिंदी डायरी का भविष्य इन डायरियों से निश्चित नहीं होता। हिंदी डायरी के विकास क्रम म. इन डायरियों की भूमिका अवश्य विचारणीय है। इन्ह. संक्षेप म. रचनात्मक डायरियां कहा जा सकता है। ●

भारतीय मिथक और हिंदी गजल

ज्ञानप्रकाश विवेक

वरिष्ठ आलोचक नामवर सिंह के अनुसार, 'मिथक समस्त साहित्यिक रचनात्मकता का आधारभूत तत्व है। मिथक से तात्पर्य उस लघु रूपक तक से है जो मूल संस्कृति में बहुत संश्लिष्ट गुंथा हो।'

अब देखना यह है कि हिंदी गजल में भारतीय मिथकों का निर्वाह किस रूप में हुआ है। इससे पूर्व निर्मल वर्मा के मिथकों के विषय में जानना लाजमी हैं। उनके अनुसार, 'हमारे साहित्य में मिथक या पौराणिक चेतना पर आज विचार करना इसलिए भी आवश्यक जान पड़ता है, क्योंकि इससे संबंधित भ्रांतियां आज की आधुनिक मानसिकता का इतना ज्यादा अभिन्न अंग बन गई हैं कि उन पर किसी तरह की शंका करना ही पुराणपंथी का लक्षण मान लिया जाता है। हम अकसर सोचते हैं कि केवल प्राचीन साहित्य की क्लासिक कृतियों में ही मिथक, माइथोलॉजी की चालक शक्ति, प्रमुख रूप से प्रकाशमान होती है। मैं शुरू से ही इस भ्रांति को दूर करना चाहूंगा। मिथक का संबंध, आधुनिक या प्राचीन से नहीं है। समय का ऐतिहासिक विभाजन उसके लिए बहुत कम महत्व रखता है। यदि कोई विभाजन मूल्यवान है तो वह अतीत और वर्तमान, प्राचीन और आधुनिक के बीच न होकर, स्वयं मनुष्य की अंतश्चेतना में विराजमान है जो निरंतर समय के सांसारिक पक्ष के बीच प्रवाहित होती है।' निर्मल वर्मा मिथकों के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए आगे लिखते हैं, 'मिथकीय चेतना वर्तमान और अतीत के ऐतिहासिक कटघरों से मुक्त होकर स्वयं समय का अतिक्रमण करती है। वह किसी एक कालखंड की बंदी न होकर हर मानवीय स्थिति में प्रकट हो सकती है।'... यदि क्लासिक समय के कालजयी महाकाव्य महाभारत, रामायण या ईलियड हो, हमारी आदिम आकांक्षाओं और तृष्णाओं को आलोड़ित करने में आज भी समर्थ हैं होते हैं तो इसलिए कि मिथक चेतना हमारे भीतर उतनी ही जीवंत और ज्वलंत रूप में विद्यमान है, जितनी पहले कभी थी। मिथक चेतना किसी स्मृति की तरह, किसी स्वप्न की तरह खोए हुए स्वर्गलोक के नॉस्टेल्जिया की तरह जीती है।'

हिंदी गजल में जहां एक ओर समकालीनता को केंद्र में रखकर गजलें लिखी जा रही हैं, वहीं गजलकार गजलों के अश्आर में कहीं-कहीं मिथकों तथा पौराणिक पात्रों के जरिए अपनी बात को अधिक सघन चिंतनपरक, तथा वर्तमानता में आख्यान को उपस्थित कर रहे हैं। मिथकीय पात्रों को हिंदी गजल में दो तरह से व्यक्त किया जा रहा है, एक, उन्हें स्मरण करते हुए शेर की रचना तथा

दूसरे, मिथकीय पात्रों को आधुनिक समय- संदर्भों से जोड़कर, विमर्श, चिंतन और वैचारिक उथल-पुथल पैदा करना। इसी संदर्भ में कमलेश द्विवेदी की गजल के कुछ शेर-

हर युग में बनवास राम को सहना पड़ता है
और सिया को भी पावक में दहना पड़ता है
वो चाहे दुर्योधन का हो या रावण का हो
अहंकार के पर्वत को भी ढहना पड़ता है
हरिश्चंद्र बन जाना इतना सरल नहीं होता
राजा को भी सेवक बनकर रहना पड़ता है।

गजल के प्रत्येक शेर में मिथकों का प्रयोग है जो बहुत सफलतापूर्वक हुआ है लेकिन गौरतलब बात यह है कि गजलकार ने तमाम मिथकीय पात्रों यथा-राम, सीता, रावण, दुर्योधन और राजा हरिश्चंद्र को यहां स्मरण किया है। यहां मिथकीय पात्र हैं और उनके साथ प्रतीक-कथाएं हैं। रावण के साथ अहंकार है। राम के साथ बनवास सीता के साथ दहन (अग्नि परीक्षा) गजल के अश्आर में यह मिथकीय पात्रों का दूसरा, पाठक को उनके चरित्र और घटनाओं से जोड़ देता है। शेर को सुनते हुए या पढ़ते हुए, पाठक-श्रोता महाकाव्यों के काल में जा पहुंचता है।

यही वजह है कि मिथक समय के मंच से भले ही तात्कालिक रूप से निष्कासित कर दिए गए हों, किंतु अपनी प्राणवत्ता में वे आज भी उतनी उर्जामय सशक्त, विस्फोटक और स्मृतियों में जीवित हैं।

राम-राम की करे बात पर दिल से राम नहीं निकला
रावण को ही खिला रही है बेर यहां शबरी चखकर।

अनिल करमेले ने मिथकीय पात्रों को मौजूद समय की विसंगतियों और नैतिक पतन से जोड़कर यथार्थ रचना की है। रामायण में शबरी बेर चखती है। मीठी बेर राम को खिलाती है। कडुवा बेर फेंक देती है। उसका बेर को चखना, प्रेम भावना और श्रद्धा का असीम रूप है। रामायण में यह घटना महान आख्यान में बदल जाती है जब राम शबरी के जूठे बेर को बड़े मनोभाव से खाते चले जाते हैं। वो रामायण काल था। नए समय की विडंबना यह है कि शबरी राम के लिए नहीं, रावण के लिए बेर चख रही है। नए समय का यह पतन, मूल्यों का पतन है और नैतिकता का क्षरण।

नए समय के पतनकाल की अनुभूति हिंदी के वरिष्ठ गजलकार सूर्यभानु गुप्त अपने एक शेर में इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

पहली दफा तो संग में सीता भी थी लखन भी
अबके न कोई होगा निकले जो राम जंगल।

रामायण में राम वनवास का दृश्य इस शेर को पढ़ते हुए ध्यान आता है। राम वन को प्रस्थान कर रहे हैं। भ्राता लक्ष्मण साथ हैं और पत्नी सीता! वो रामायण काल था लेकिन अब संबंधों का विखंडन इस कदर हो चुका है कि अगर राम को नए युग में वनवास मिलें तो उन्हें अकेले ही जाना होगा। शेर में मिथकों के जरिए दो कालखंड़ों को वातावरण है, दो समयों के मूल्यों का बोध भी इस शेर में हैं।

अशोक मिजाज भी नए समय की पड़ताल अपने शेर में जब मिथक के जरिए करते हैं तो शेर विमर्श तलब हो जाता है-

मेरे वनवास में सब ठीक है बस एक अड़चन है

न कश्ती है न केवट है न सीता है न लक्ष्मण है।

नए समय की संरचना अशोक मिजाज के शेर में भी है। यहां भी राम वनवास है। नए युग का राम। निहत्था और अकेला। दरअसल, राम वनवास के जरिए सूर्यभानु गुप्त और अशोक मिजाज, नए समय के मनुष्य के विस्थापन को व्यक्त करते हैं- मिथकीय पात्र (राम) और मिथकीय कथा-राम वनवास!

डॉ. रामजी तिवारी मिथकों के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं, 'मिथक जनमानस में पहले से बैठे होते हैं। उनका आधार लेने से रचना की संप्रेषणीयता ज्यादा हो जाती है।'

डॉ. तिवारी का कथन बिलकुल दुरूस्त है। मिथकों को केंद्र में रखकर व्यक्त अश्आर ज्यादा प्रभावी और चेतना को स्पर्श करनेवाले होते हैं। चूंकि मिथकीय पात्रों के साथ अनेक घटनाएं भी जुड़ी होती हैं और जब शेर में मिथक की उपस्थिति होती है तो अनेक घटनाएं एक साथ गूंजती हुई महसूस होती हैं। कुछ और शेर-

मुझे ये कलयुगी किस्सा बहुत बेचैन करता है

अयोध्या में ही रहकर राम का वनवास हो जाना। (ओमप्रकाश चतुर्वेदी पराग)

नए समय का राम अयोध्या में ही है। (यानी अपने घर में) और वो वनवास भोग रहा है। यह 'ऐलिएनेशन' ही है। समाज की यांत्रिकता और संबंधों का बिखराव लेकिन अपनी बात को एक अन्य शेर में वो दूसरे रूप में व्यक्त करते हैं। जैसे कवि अपने आपको दिलासा दे रहा हो-

मैं इतनी बात तो दावे के साथ कहता हूं

किसी भी राम से रावण बड़ा नहीं होता। (ओमप्रकाश चतुर्वेदी पराग)

उपरोक्त शेर में राम और रावण दो किरदार हैं मिथकीय पात्र। एक अच्छाई और विनम्रता का प्रतीक दूसरा बुराई और अहंकार का प्रतीक! लेकिन अहंकार टूटता है और बुराई कभी भी अच्छाई से बड़ी नहीं हो सकती। शेर को बेहद सादगी से कहा गया है। विषय बेशक आजमूद है लेकिन मिथकों के प्रयोग के कारण शेर प्रभावशाली हो गया है।

यह बात सही है कि कोई भी शक्तिमान मिथक हमारी सामूहिक संचेतना को झकझोर कर रख देता है और आधुनिक समय संदर्भों से जोड़कर गजल लेखक उस शक्तिमान मिथक को पुनर्नियोजित करते हुए, न केवल नए अर्थ प्रदान करते हैं, बल्कि चिंतन के स्तर पर भी अश्आर की पहुंच को विस्तार देते हैं।

हमारे समूचे अस्तित्व को हिला देनेवाले मिथक जब अश्आर में प्रयुक्त होते हैं तो वे काव्य क्षण न सिर्फ उद्देलित करते हैं बल्कि विराट अनुभूति का भी अहसास कराते हैं। कुछ शेर इसी सिलसिले में-

कहानी राम की वनवासियों पे फख्र करती है

उसूलों के लिए जो राजधानी छोड़ जाते हैं। (उदय प्रताप सिंह)

राम (मिथक) ने उसूलों के लिए ही तो राजधानी का त्याग किया था। उसूल यानी वचन का पालन। रामकथा का गर्व राम के राजतिलक से नहीं, वनवास से है। हिंदी-उर्दू गजल में राम जैसे मिथकीय पात्र को केंद्र में रखकर सबसे अधिक शेर लिखे गए हैं। राम यहां राजा रामचंद्र के रूप में कहीं नहीं हैं। वे हमेशा वनवासी राम के रूप में ही हैं। यहां इस शेर में एक नया अर्थ यह भी हो सकता है कि सुविधाभोगियों पर कभी गर्व नहीं किया गया। गर्व सदैव उन पर हुआ जिन्होंने कठिन समय से मुठभेड़ की। इसी भावबोध की अभिव्यक्ति कमल किशोर भावुक अपने शेर में इस प्रकार करते हैं-

राजसी सुख त्यागने का तो तभी औचित्य है
जी सके जब राम जैसी जिंदगी वनवास में।

राम मिथकीय रूप में महानायक और औदात्य चरित्र के रूप में स्मरण किए जाए। गजल लेखकों ने उनके इसी रूप को अपने अश्आर में व्यक्त किया। वे सदैव शाक्तिमान मिथक के रूप में उभरकर अश्आर में व्यक्त हुए लेकिन सीता? जिसे वनवास मिला और अग्नि परीक्षा से भी गुजरना पड़ा। उसे राम जैसा महानायक्तव कभी हासिल न हो सका।

राजेश रेड्डी का शेर वर्तमान की सीता (स्त्री-विमर्श) की इस विडंबना को व्यक्त करता है-

रावण के जुल्म सहके अदालत में राम की
सीता खड़ी हुई है गुनहगार की तरह।

सीता रामायण महाकाव्य का मिथकीय पात्र है-एक ऐसी स्त्री जिसे अग्नि-परीक्षा से गुजरना पड़ता है। मर्यादा रूपी लक्ष्मण रेखाएं उसके लिए हर युग में खींच दी जाती है। बेशक, हमारे समकाल में स्त्री, वर्जनाओं को तोड़ने का साहस दिखा रही है। ये और बात कि भेस बदलकर रावण उसे यहां मिलते हैं। रामायण काल में एक रावण था तो कलयुग में सैकड़ों रावण मौजूद हैं। शेर है-

बदलकर शक्ल हर सूरत उसे रावण ही मिलते हैं
कोई सीता जब लक्ष्मण रेखा के बाहर निकलती है। (जयकृष्ण राय तुषार)

रोलां बार्थ ने 'मिथ टुडे' में मिथक्करण की अनेक विशेषताएं बताई हैं जिनमें पहचान के प्रतीकों का विन्यास, एक अभ्यांतर भूमिगत यात्रा तथा अपने लिए नए मुहावरे का निर्माण! हिंदी गजल में मिथकों के प्रयोग में नए मुहावरे का निर्माण तो होता ही है एक भूमिगत यात्रा पौराणिक आख्यानों की भी होती रहती है।

राम जैसे रामायण महाकाव्य के मिथकीय पात्र और शालिमान स्मृति केंद्रित कुछ और शेर-

सूने चारों धाम करेंगे
राम अवध विश्राम करेंगे
फिर पाएं वनवास रामजी
ऐसा इंतेजाम करेंगे। (सलीम खां फरीद)

मिथकीय वातावरण का सृजन अपने छोटी बहर के दो अश्आर में करते हैं तो नूर मुहम्मद 'नूर,' मन के द्वंद्व और कशमकश को मिथकों तथा प्रतीकों से बयान करते हैं। शेर है-

मैं किसके पक्ष में कैसे लड़ूं अब

है मेरा राम तो रावण भी मेरा।

रावण भी मेरा? यह बेबाक अभिव्यक्ति एक गजलकार की है। सभी अपने भीतर किसी राम की तलाश कर रहे हैं लेकिन एक कवि जानता है कि उसके भीतर दोनों पात्र (राम और रावण-मिथक) मौजूद हैं। अच्छाई और बुराई दोनों तत्व उसके अंदर हैं। मिथकों के जरिए गजलकार अपने द्वंद्व (और अपनी सत्यता) को उद्घाटित करता है।

इसी द्वंद्व और असमंजस को प्रमोद रामावत प्रमोद अपनी प्रेयसी को बड़ी हार्दिकता से संबोधित होते हैं। पूरा परिदृश्य रामायण कथा का लेकिन असमंजस नए समय का। नए मूल्यों का। शेर है-

पैर धुलकर खड़े राम के असमंजस-सा मेरा मन
कभी-कभी मुझको केवट की उतराई-सी लगती हो।

मिथक जब रचना (शेर) में आता है तो अपना नायकत्व, चरित्र, घटना और वातावरण के अतिरिक्त, तमाम स्मृतियां भी लेकर आता है। इस शेर में यही दृश्यात्मकता है।

किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी संस्कृति से होती है। संस्कृति के भीतर साहित्य अपना मुकाम बनाता है और इसे हम संस्कृति से अलग करके नहीं देख सकते। संस्कृति के बनने-संवरने में हजारों साल का तप और ताप, राष्ट्र की आंतरिक लय, स्पदंन, पौराणिक आख्यान और मिथकों का योगदान रहता है।

साहित्य में रोजाना नया समय घटित होता है और उसे अभिव्यक्ति करना रचनाकारों की जिम्मेदारी भी होती है। रचनाकार ऐसा करते भी हैं लेकिन कई बार रचनाकार मिथकों के जरिए अपनी रचना (गजल) को ज्यादा अर्थवान तथा कालजयी बनाते हैं। मिथक हमारी सांस्कृतिक औदात्यता और स्मृति को परिलक्षित करते हैं तथा वर्तमान से जुड़कर उसे जिंदा रखते हैं। इसी सिलसिले में कुछ शेर-

सिवा राम के ये सच्चाई किसे समझ में आएगी
जूठे होकर भी सच्चे हैं बेर समय की शबरी के। (माधव कौशिक)

शेर में शबरी का मिथकीय रूप है। बेर प्रतीक है। घटना रामायण महाकाव्य की है। महत्वपूर्ण विषय यह है कि राम महानायक हैं। वे तो स्मृति में गूंजते रहते हैं। बेशक! लेकिन शबरी तो अति-साधारण पात्र है जो जूठे बेर राम को खिलाती है। यही सादगी भरा व्यवहार, आख्यान का रूप धारण कर लेता है। यह भावना का प्रबल रूप शबरी के कद को बड़ा बना देता है। उसी भाव की पैरवी करता यह शेर अपनी संरचना और अर्थ की गूंज में बड़ा हो जाता है।

इसी मिथकीय पात्र शबरी को दिनेश सिंदल अपने शेर में कुछ अन्य रूप से तहरीर करते हैं। यहां मैं पात्र है। उसका स्वप्न है। बेर हैं। शबरी की स्मृति और राम किसी उम्मीद का नाम है-

मैं चख-चख रख रहा शबरी की माफिक बेर सपनों के
न जाने किस घड़ी मेरी कुटी में राम आ जाएं।

हिंदी गजल में राम, सीता, लक्ष्मण, रावण शबरी इत्यादि मिथकीय पात्रों पर सबसे ज्यादा शेर लिखे गए हैं लेकिन महाभारत जैसे महाकाव्य और अन्य पौराणिक आख्यानों के मिथकों को भी हिंदी

गजलकारों ने बड़ी संचेतना और एकाग्रता के साथ अश्आर में अभिव्यक्ति दी है। कुछ शेर गौरतलब हैं-

है पशोपेश में अर्जुन कि सभी अपने हैं
तीर तो तीर है क्या जाने कहां क्या लिख दें।
(रामबाबू रस्तोगी)

ये द्रोण उससे अंगूठा तो मांग लेते हैं
ये एकलव्य को शिक्षा कभी नहीं देते।
विजेंद्र द्विज

यक्ष है युग की चुनौती पर युधिष्ठिर मौन है
ढूंढना इस प्रश्न का उत्तर बहुत अच्छा लगा
गणेश गंभीर

युद्ध में जब अर्जुन होता है
कर्ण के ही फंसते हैं पहिए।
महेश अश्क

चक्रव्यूही युद्ध में निरूपाय होकर रह गया है
आदमी अभिमन्यु-सा असहाय होकर रह गया है।
राधेश्याम शुक्ल

खत्म होते ही हर महाभारत
खैरियत पूछता है सन्नाटा।
सूर्यभानु गुप्त

साथ है शकुनि का कैसे न बनूं दुर्योधन!
कृष्ण का साथ अगर हो तो सुदामा हो जाऊं।
देवेंद्र आर्य

उपरोक्त सभी अश्आर महाभारत जैसे महाकाव्य के पात्रों को केंद्र में रखकर रचे गए हैं। यहां यह बात भी गौरतलब है कि यहां मिथकीय पात्रों की उपस्थिति उस स्मृति तक ले जाती है, जो स्मृति हमने अपने पात्र के लिए बना रखी है।

राम बाबू रस्तोगी का शेर धर्मयुद्ध की याद दिलाता है। जब सारथी कृष्ण थे। धनुर्धर अर्जुन। लेकिन यह भूमि में विचलित-से अर्जुन। कशमकश में घिरे। शेर में द्वंद्व की रचना है और बिंब की रचना भी। अर्जुन का विचलन और रणभूमि!... महेश अश्क भी इसी युद्धभूमि को अपने शेर में इसी विडंबना को व्यक्त करते हैं। दो छोटे-से मिसरे। प्रश्न का हाहाकार इन मिसरों में। कर्ण जैसे लोग ही क्यों अभिशप्त होते हैं। सदैव! कुलीनता जीतती है। पराजित होता है साधारण पात्र।

हिंदी गजलकार महाभार महाकाव्य के मिथकीय पात्रों के जरिए जो शेर व्यक्त कर रहे हैं, वहां आख्यान की स्मृति। पात्र की स्मृति। और नए समय का यथार्थ। मिथकीय शेर इस दृष्टि से संश्लिष्ट और अर्थ व्यापक हुए हैं।

गणेश गंभीर के शेर में आधुनिकता का बोध है। यह नया समय यक्ष की चुनौती जैसा। इस युग में यक्ष तो है- सवालों के नेजे उछालता लेकिन उत्तर देने वाला युधिष्ठिर नहीं है। इसलिए जीवन के अनेक प्रश्न अनुत्तरित हैं। सूर्यभानु गुप्त के शेर में भी धर्मयुद्ध की पृष्ठभूमि है। एक तरह से यह शेर युद्ध का प्रतिवाद करता है। शेर प्रतीकात्मकता में युद्ध की विनाशलीला को अभिव्यक्ति देता है- खैरियत पूछता है सन्नाटा। यह मिसरा, अभिव्यंजना की रचना करता हुआ-सभ्यताओं पर भी कटाक्ष करता है। सन्नाटा, महज सन्नाटा नहीं, वह मृत्यु का चेहरा भी है।

राधेश्याम शुक्ल के शेर में चक्रव्यूह की स्मृति है। अभिमन्यु का नायकत्व है। मिथक के रूप में। जो व्यूह रचना में घिर चुका है और असहाय-सा हो चुका है। इस घटना को नवयथार्थ से जोड़कर राधेश्याम शुक्ल आधुनिक रूप देने में सफल होते हैं।

द्विज के शेर में व्यंजना का तत्व है कि नए समय के द्रोण भी एकलव्यों से दक्षिणा के रूप में अंगूठा तो ले लेते हैं, शिक्षित नहीं करते। नए समय के शिक्षा संस्थानों पर यह शेर किसी प्रश्न की तरह है। देवेंद्र आर्य उस संगत के विषय बनाते हैं जो मनुष्य का स्वभाव ही नहीं, डीएनए तक बदलकर रख देती है। मिथकों के जरिए शेर की अभिव्यक्ति है। दुर्योधन और शकुनि की कपटपूर्ण संगत। वैसी संगत गजलकार की है। काश, यह संगत कृष्ण और सुदामा जैसी होती।

ओम निश्चल मिथकों के विषय में कहते हैं 'बड़े लेखक की निगाह जहां एक तरफ अपनी परंपरा से ओझल नहीं होती, वहीं दूसरी ओर समकालीनता के कैनवस पर वह मिथकों को पुनर्जीवित करता है और परखता है कि पुराने मूल्य वस्तुतः हमारे लिए कितने मूल्यवान हैं।'

हिंदी के गजलकार, पौराणिक मिथकों से न सिर्फ धूल पोंछते हैं बल्कि नए समय से संवाद की सूरत भी पैदा करते हैं। और यह अहसास भी कराते हैं कि नए समय की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए महाकाव्यों के मिथक क्यों जरूरी हो जाते हैं। कुछ शेर इसी सिलसिले में-

सदन में आ गए धृतराष्ट्र चुनकर
कुछ इस कारण भी संजय बढ़ रहे हैं।
जहीर कुरैशी

कहां अब पॉप म्यूजिक का जमाना
कृष्ण की बांसुरी की तान देगा।
चांद शेरी

फिर उसके बाद सोच कि बाकी बचेगा क्या
तू बाहर कृष्ण भक्ति से अगर रसखान कर दे।
इरशाद खान सिकंदर

जो अक्स उभरता है रसखान की नज्मों में
क्या कृष्ण की वो मोहक तस्वीर बदल देंगे।
अदम गोंडवी

सुयोधन मुंसिफी के भेष में है
युधिष्ठिर आजमाए जा रहे है।
बी.आर. विप्लवी

कुरूक्षेत्र प्रश्नों का लगता हर पल जीवन का
स्वयं पार्थ को चिंता करनी होगी उत्तर की।
राम स्नेही यायावर

उपरोक्त सभी अश्आर में मिथक महाभारत जैस महाकाव्य से लिए गए हैं लेकिन कथ्य में यथार्थ समकालीन है। गजलकारों ने बड़ी हुनरमंदी से अपने समय को व्यक्त किया है। बड़े साहस के साथ जहां कहीं जरूरत पड़ी है, वहां मिथकों में तोड़फोड़ भी की गई है। बी.आर. विप्लवी जब कहते हैं-सुयोधन मुंसिफी के भेष में है-तो यह मिथक को तोड़कर उसकी पुनर्रचना है। इसी प्रकार जहीर कुरैशी के शेर में भी मिथक की पुनर्रचना है। सदन समकालीनता का सूचक है और उस सदन में धृतराष्ट्रों की मौजूदगी। यानी वे तमाम सांसद जो देश की बदहाली के लिए जिम्मेदार हैं। बेशक, शेर का लहजा मुँहफट हो गया है। यहां जो यथार्थ है वो इकहरा है। यही अवस्था चांद शेरी के शेर में है। समकालीन पॉप म्यूजिक के बरअक्स कृष्ण की बांसुरी! इसी तुलना (अथवा द्वंद्व) से चांद शेरी नए समय के पदार्थीकरण और यांत्रिक मिजाज को बयान करते हैं लेकिन इरशाद खान सिकंदर और अदम गोंडवी मिथकों और प्रतीकों से सामाजिक समरसता को संवेदन लय में व्यक्त करते हैं। कृष्ण भक्ति से रसखान को बाहर कर दें तो बाकी क्या बचेगा? रसखान महज नाम नहीं, वो भावना, जज्बे, निष्ठा और रागात्मकता का भी प्रतीक हैं।

साधारण विषय जब मिथकों के साथ शेर में व्यक्त होते हैं तो असर पैदा करने में सक्षम होते हैं। राम स्नेही का शेर-यह नया समय प्रश्नवाचकों से घिरा हुआ। पार्थ मिथक है। कुरूक्षेत्र प्रतीक। पार्थ और कोई नहीं-हर वो इनसान है जो नए समय के कुरूक्षेत्र में संघर्षरत है। यह चिंता का प्रश्न भी उसका है, क्योंकि जीवन रूपी कुरूक्षेत्र भी तो उसका अपना है।

हिंदी गजल में द्रोपदी, सीता अहिल्या, शबरी जैसे स्त्री मिथक बड़ी गरिमा और भावनात्मक आवेग के साथ अश्आर में प्रस्तुत हुए हैं। इन मिथकीय पात्रों के स्मरण के साथ-साथ स्त्री विमर्श के लिए भी स्पेस बनता चला गया है।

'द्रोपदी' को केंद्र में रखकर हिंदी गजलकारों ने गजल में चिंतन को भी महत्वपूर्ण स्थान देने का प्रयास किया है। कुछ शेर इसी सिलसिले में प्रस्तुत है-

द्रोपदी

करते थे द्रोपदी की बड़ाई जबान से
लेकिन किसी ने तीर न खींचा कमान से।
माधव कौशिक

जिस घड़ी मन कृष्ण जैसी रास-लीलाएं रचे
उस घड़ी इस पल ठहर कर द्रोपदी का सोचना।
संजय ग्रोवर

आज दुर्योधन की इस दुनिया में जीना है कठिन
फिर सभा में द्रोपदी की लाज की बातें करें।
भगवान दास जैन

कृष्ण तूने आज ये कैसी महाभारत रची

द्रोपदी की लाज के हैं प्रश्न सब टलते रहे।

कमलेश प्रकाश

सीता *यहां शोलों से सीता को परखने की रवायत है*
कहां पाकीजगी का रास्ता ले जाएगा हमको।

बी.आर. विप्लवी

उन्होंने दम नहीं तोड़ा कभी पाने को कस्तूरी
ये सोने के हिरन सीता को जाने कब से छलते हैं।

विजय किशोर मानव

वनवास भोगती हुई सीता और आकर्षण सोने के हिरन का। यह विरोधाभास बेशक है लेकिन ऊपरी स्तर पर है। जरा गहराई से विश्लेषण करें। एक स्त्री जंगल में है। हर तरफ वीरानी। सन्नाटा। एक-जैसापन। और ऐसे में बेहद सुंदर स्वर्ण मृग दिखाई देना और ओझल हो जाना। यह तो स्त्रीयोचित सहजता ही है। राम भी जानते हैं कि सीता लंबे अरसे से वनवास में है। वे सीता की इच्छा का सम्मान करते हैं। स्वर्ण मृग की तलाश में निकल पड़ते हैं। यहां तक रामायण की घटना है लेकिन विजय किशोर मानव इस शेर को और इस मिथक को आधुनिक बोध देते हैं कि- ये सोने के हिरन सीता को जाने कब से छलते हैं। हर बार स्त्री इन्हीं प्रतीकों से फंसती रही है।

विप्लवी भी सीता की अग्नि परीक्षा को नए और आधुनिक अर्थ देते हैं -यहां शोलों से सीता को परखने की रवायत है। पुरुष समाज पर गहरा कटाक्ष है। मिथकीय पात्र सीता है। प्रतीक भी वही पुराने-आग यानी अग्नि परीक्षा! लेकिन 'यहां' शब्द गौरतलब है। 'यहां' में नया समाज है। रवायत बेशक पुरानी है लेकिन 'रवायत' में व्यंजना है। आज भी हर स्त्री सीता है। और आज भी हर स्त्री के लिए अदद अग्नि परीक्षा निश्चित है। कन्या भ्रूण का बच जाना पहली अग्नि परीक्षा होती है।

द्रोपदी महाभारत के तमाम स्त्री पात्रों से कहीं ज्यादा जहीन, विवेकशील, बुद्धिमान, स्वाभिमान से भरपूर दृष्टि संपन्न स्त्री है। कृष्ण को द्रोपदी का सान्निध्य इसलिए अच्छा लगता है कि वह केवल सुंदर, सौम्य ही नहीं, विचारवान भी है। हिंदी गजलकारों ने दोनों स्त्री पात्रों (महाकाव्यों के मिथकों) को अपनी तरह से अश्आर में व्यक्त किया है। द्रोपदी का चीरहरण होता रहा। पांडव असहाय होकर देखते रहे-लेकिन किसी ने तीर न खींचा कमान से। माधव कौशिक जब ये शेर कहते हैं तो व्याकुलता का अहसास भी पैदा करने में सक्षम होते हैं। यही बेचैनी, व्याकुल अवस्था और तड़प संजय ग्रोवर, भगवान दास जैन और कमलेश प्रकाश के अश्आर में भी है। कृष्ण की रास-लीलाएं हैं। कृष्ण की अनेक छवियां हैं लेकिन उसके बरअक्स द्रोपदी। उसका कृष्ण के प्रति भावनात्मक प्रेम है। इस प्रेम और इस संबंध का कोई नाम नहीं। इसलिए यह संबंध उच्च संस्कारित है। सुमित्रा अग्रवाल अपने लेख 'कौन है द्रोपदी' में लिखती हैं, 'द्रोपदी मूर्तिमती शक्ति है। आधुनिक नारी रोल मॉडल के लिए जब अतीत की ओर दृष्टिपात करती है तब द्रोपदी की छवि पुनः उसकी आँखों में कौंध उठती है। वह महाभारत के संपूर्ण कथानक को गति प्रदान करती है।'

सुमित्रा अग्रवाल द्रोपदी जैसे मिथकीय पात्र के विषय में लिखती हैं, 'मिथक की रचना द्वारा महर्षि व्यास अपनी मानस पुत्री द्रोपदी के व्यक्तित्व के एक अद्‌भुत सामर्थ्य, एक विलक्षणता एक गारिमा और एक सौंदर्य प्रदान करना चाहते हैं। द्रोपदी का अलौकिक जन्म, उसके व्यक्तित्व को अन्यों ~~की दृष्टि में असाधारण बनाता है। द्रोपदी लौकिक ही है, पर उसका मानसिक सामर्थ्य अलौकिक~~

है। यह अलौकिक मानसिक सामर्थ्य ही उसकी तेजस्विता का आधार है जो उसके व्यक्तित्व की प्रमुख पहचान है।'

वंदना शर्मा के विषय में कहती हैं, 'द्रोपदी एक ऐसा व्यक्तित्व है जिसकी स्वतंत्र छवि उसका विद्रोह, उसकी यातना उसकी बेचैनी में आज की आधुनिक नारी अपनी ही कोई ध्वनि सुनती है। सीता के दुख में करूणा प्लावित हुआ जा सकता है, किंतु वैचारिक संगति द्रोपदी के साथ होती है क्योंकि द्रोपदी परंपराभंजक है।'

रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में मिथक पात्रों के साथ-साथ अन्य प्रतीक और मिथकों को केंद्र में रखकर हिंदी गजलकारों ने अश्आर व्यक्त किए हैं और मिथकों के जरिए अपनी बात रखने और विचार व्यक्त करने को बल मिला है। कुछ शेर गौरतलब हैं-

मैं तो पत्थर की तरह रोज लुढ़कता हूं 'मयंक'
तू जो गंगा है तो फिर मुझको बहाकर ले जा।
हृदयेश मयंक

सरल नहीं था कटकर गंगा-जल हो जाना
किसी हिमालय का यूं गलना तुम क्या जानो।
सतीश कौशिक

गंगा जी के पास रहा
मन हर दम रैदास रहा।
विनय मिश्र

फंसी है किस महाभारत में गंगा
उठाई जा रही आढ़त में गंगा
नदी होगी तुम्हारी पोथियों में
यहां तो है मेरी फितरत में गंगा।
देवेंद्र आर्य

गंगा नदी भारतीय जनमानस के मन में केवल नदी की तरह नहीं है। वह जीवन लय, जीवन मूल्य और जीवन उत्सव की तरह भी है। गंगा एक संस्कृति भी है लेकिन गजलकारों ने गंगा नदी के मिथकीय रूप की रचना अपने शेर में करते हुए उस बाजारीकरण के प्रति भी चिंता व्यक्त की है जो उसे प्रदूषित कर रहे हैं। देवेंद्र आर्य जब कहते हैं- यहां तो है मेरी फितरत में गंगा! तो इस जज्बे का खैरमकदम करने का मन करता है। और यह भाव चेतना को स्पर्श करता है। बिलकुल यही जज्बा विनय मिश्र के शेर में भी है। वह जब गंगा नदी के पास होता है तो मन रैदास (रविदास) जैसा सादगी से पूर्ण हो उठता है। यहां गंगा मिथक है जिसके प्रति कवि आस्थावान है। हृदयेश मयंक स्वयं को पत्थर जैसा निष्क्रिय मानते हैं और गंगा को गतिमान! यही विचार सतीश कौशिक के भी हैं-थोड़ी भिन्न किस्म की अभिव्यक्ति। वे हिमालय के नए यथार्थ से तआरूफ कराते हैं। हिमालय का गलना, गंगा नदी का होना है। कुछ और मिथक केंद्रित शेर-

जो महल छोड़ के चल देते हैं गौतम की तरह
आदमियत की वो तकदीर बदल देते हैं।

सुनील दानिश

लौटकर आएगा सिद्धार्थ इस दिन तो यकीनन
एक बूढ़ी शाहजादी आज भी इस आस में है।

चंद्र त्रिखा

वक्त की धूप कितनी बड़ी है
बनके पत्थर अहिल्या खड़ी है
राम आएं तो उद्धार होगा
ये प्रतीक्षा की नाजुक खड़ी है।

रवींद्र भ्रमर

मर्यादाएं टूट चुकी हैं
स्वांग रचाते राम बहुत हैं।

सत्यप्रकाश उप्पल

राधा का अनुराग अभी तक बाकी है
और विधुर का साग अभी तक बाकी है।

अरुण हरलीवाल

हर एक सिकंदर का अंजाम यही देखा
मिट्टी में मिली मिट्टी पानी में मिला पानी।

सूर्यभानु गुप्त

विजय तिलक के लिए इंद्र का माथा तुम स्वीकार करो
हम दधीचि के वंशज हैं, कंकाल हमारी आँखों में।

शिवकुमार पराग

उपरोक्त अश्आर में गौतम बुद्ध, सिद्धार्थ, अहिल्या, राधा, विदुर, दधीचि, इंद्र और सिकंदर मिथक के रूप में संदर्भों में प्रयुक्त हुए हैं। सभी मिथक बहुत करीने से, बड़ी संचेतना के साथ अश्आर के केंद्र में रहकर कथ्य अथवा विचार को पुष्ट और अश्आर में जीवंत हलचल पैदा करते हैं। मिथकीय पात्रों की स्मृतियां आवेगपूर्ण है और इन्हें नए समय के यथार्थ से जोड़ना साहसिक और चुनौतीपूर्ण कार्य था, जिसे हिंदी गजलकारों ने बड़ी निष्ठा, एकाग्रता और संचेतना से पूर्ण किया है। कुछ और शेर-

अब कंस भी तो कंस की मुद्रा में नहीं है
लगता है मेरा कृष्ण भी मथुरा में नहीं है।

हरेराम समीप

जिस विष पे देवताओं में हड़कंप मच गया
शिव के गले में जाते ही कैसे वो पच गया।

सुल्तान अहमद

बहुत ही अलग थी व्यथा द्रोपदी की
वो सीता का वनवास भी तो अलग था।

उर्मिला से पूछिए कैसे
घर में भी वनवास होता है।
देवेंद्र आर्य

हर एक की किस्मत में उद्धार नहीं होता
कितनी ही अहिल्याएं मर जाती हैं पत्थर में।
राजेश रेड्डी

रावण के जुल्म सह के अदालत में राम की
सीता खड़ी हुई गुनहगार की तरह।
राजेश रेड्डी

सिर्फ लंका दहन नहीं होता
ये नए युग की रामलीला है।
देवेंद्र आर्य

यह हिंदी गजल का अनुभूति के स्तर तथा कथ्य के स्तर के लिहाज से नया विस्तार है। हिंदी गजल भारतीय मिथकों के जरिए नए युग के नए यथार्थ को अभिव्यक्त करने में अधिक प्रखर तथा अधिक वैभवशाली सिद्ध हो रही है। भारतीय मिथक इतने शक्तिशाली हैं कि वे हर दौर में अपनी स्मृति को जीवित रखने में सफल रहते हैं तथा नए यथार्थ के नए संदर्भों में उतरकर अश्आर को ऐसी रचनाशीलता प्रदान करते हैं जो अर्थवान, गूढ़, सांकेतिक, आकर्षक तथा नए और पुराने दोनों युगों को ध्वनि करती है।

उपरोक्त सभी अश्आर भारतीय मिथकों-उर्मिला, सीता, अहिल्या जैसे स्त्री-पात्रों से जुड़कर ही युग की भारतीय स्त्री के संकटों को जहां शिद्दत से बयान करते हैं वहीं यह अहसास भी कराते हैं कि असुरक्षा की भावना स्त्री जीवन का अनिवार्य हिस्सा बनकर रह जाती है। सुल्तान अहमद और हरेराम समीप भारतीय मिथकों के जरिए नई सामाजिक संरचना को संकेतों में व्यक्त करने में सफल हुए हैं। नए समय के देव, तुच्छता और कायरता के तलघर को छुपाकर रखते हैं तथा कंस अपनी भूमिकाएं बदल चके हैं। समाज में वो इतने चेहरे लगाकर घूमते हैं कि उनको पहचानना कठिन हो गया है। भारतीय मिथकों की हिंदी गजल में उपस्थिति जहां महाकाव्यों के पात्रों को बड़ी हार्दिकता से याद करती हैं, बिलकुल वहीं, हिंदी गजल को वैचारिक तथा कथ्यगत स्तर पर उच्च संस्कारित, विश्वसनीय तथा अर्थवान बनाती है। ●

'ऐ लड़की' में कृष्णा सोबती की जीवन-दृष्टि

गरिमा श्रीवास्तव

साहित्य की सर्जना म. एक रचनात्मक जीवन-दृष्टि (विजन) का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। साहित्य की प्रत्येक विधा चाहे वह महाकाव्य हो, त्रासदी, कामदी, उपन्यास या कहानी- इन सबके प्रति अपनी प्रतिक्रिया या अनुक्रिया म. यह निर्णय जीवन-दृष्टि की मौलिकता और गहराई के आधार पर ही किया जाता है। प्रख्यात साहित्यकार विंदा करंदीकर भी यह मानते हैं कि 'किसी भी सर्जनात्मक साहित्यिक कृति का मेरा मूल्यांकन मुख्यतः इस दृष्टि (विजन) की मौलिकता, गहराई और सर्वांगीणता से तय होता है, फार्म की महत्ता से मैं इनकार नहीं करता, लेकिन यह इस साध्य का एक साधन मात्र है, स्वयं साध्य नहीं।'[1]

एक कल्पनाप्रवण रचनात्मक जीवन-दृष्टि की महत्ता को सभी साहित्यकारों ने स्वीकारा है। जीवन-दृष्टि निरंतर विकसनशील और परिवर्तनशील होती है। जीवन की गतिशीलता के समानांतर दृष्टि भी बदलती रहती है। जीवन प्रवाह म. क्रिया, परिवर्तन, विकास या अवगति है, साहित्य इसी गतिशील जीवन को अभिव्यक्ति देता है। जीवन-प्राथमिक रूप म. मनुष्यों का जीवन है, अतः उनकी क्रियात्मकता के संपूर्ण आदर्श, उनके विचारों का पूरा संसार, भावनाएं और संवेदनाएं, उनकी कामनाएं। प्रयास और हताशाएं, उन के अवचेतन मस्तिष्क, उन की महत्वाकांक्षाएं और आदर्श भी साहित्यिक परिदृश्य पर अंकित हो जाते हैं। मनुष्यों के साथ-साथ व्यक्तियों के बीच के संबंध। व्यक्तियों और समूहों या वर्गों और सिद्धांतों के बीच के संबंध अपरिहार्य रूप से आ जाते हैं।

कृति अपने भीतर से रचनाकार की जीवन-दृष्टि को प्रतिबिंबित करती है। 'किसी भी रचनाकार के लिए उसकी जीवन-दृष्टि अन्य सब लेखकीय उपकरणों से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है।'[2] लेखक की जीवन- दृष्टि का निर्माण उसके अनुभव करते हैं। अनुभव का दर्शन कल्पना के दर्शन से भिन्न होता है। अनुभव की आँखों से देखा संसार ही जीवन दर्शन है। अनुभव की ऊर्जा परिवेश से उत्पन्न होती है। निजी और वैयक्तिक होते हुए भी रचनाकार अपनी कला से अनुभवों को सार्वजनिक बनाता है, तभी वह सामाजिक स्वीकृति पाता है। जो रचना सामाजिक संदर्भ म. अपने अनुभवों की सुगंध दूर तक बिखेरती है, वह उतनी ही लोकप्रिय होती है इसीलिए रॉबर्ट लिदेल ने आधुनिक रचनाकार से अनुभव के मौन संगीत के सृजन की अपेक्षा की है।

आज का कहानीकार जीवन-दृष्टि को किसी वाद-विशेष या स्वीकृत दर्शन से संबद्ध करके नहीं देखता, बल्कि वह यथार्थबोध से संपन्न जीवन-दृष्टि का निश्चित आभास देता है। यह आधुनिक

कहानी की नई उपलब्धि है, जो यथार्थ के महत्त्व स्वीकार के कारण ही संभव हो सकी है। वस्तुतः यथार्थ के निकट होने के कारण ही आज का कहानीकार आधुनिक युग के मानव की संवेदनाओं को अधिक प्रामाणिक अभिव्यक्ति दे सका है। आज वह यह मानता है कि 'लेखक को अपनी यात्रा कोरे आदर्शों की ढलानों और ऊंचाइयों म. ही संपूर्ण नहीं करनी होती, उसका सफर ऐन जिंदगी के बीचोंबीच होकर गुजरता है। उसकी मंजिल इनसान की जुर्रत और जीवट का लहू है जो निरंतर संघर्षों म. बहता है।'[3] कहानीकार जब यथार्थ की चेतना का अस्तित्व स्वीकार करता है तो अनायास की कृति म. अपने अनुभव की ऐतिहासिक चेतना आदि प्रश्नों के प्रति सचेत हो जाता है।

यह सचेतनता आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे कला का एक व्यापक सामाजिक अभिप्राय निहित है। रचनाकार ने कलात्मक तत्वों का उपयोग कौतुक रस की सृष्टि के लिए नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन मर्म (विजन) को उद्घाटित करने के लिए किया है। 'आधुनिक कहानी की अन्यतम उपलब्धि है, मानवीय चेतना का नवीन बोध, जो 'रचना' को एक गहरी अर्थवत्ता से संबद्ध करता है।'[4] मानवीय चेतना का नवीन बोध आज की यथार्थवादी दृष्टि का परिणाम है। इस यथार्थ दृष्टि ने ही आज के कहानीकार को जीवन को एक नए कोण से देखने का 'विजन' दिया है।

साहित्य म. तुर्गनेव, टालस्टॉय और दोस्तोएव्यस्की द्वारा यथार्थवाद की परंपरा स्थापित हुई। इन कहानीकारों ने जीवन के सर्वतोमुखी चित्रण की संभावना को प्रत्यक्ष कर एक स्वस्थ रचनात्मक संवेदना का विकास किया। हिंदी साहित्य म. यथार्थवाद की परंपरा का विकास नितांत आधुनिक युग म. हुआ। हमारे यहां दो प्रकार की यथार्थवादी प्रवृत्तियां विकसित हुई। सामाजिक यथार्थवाद और मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद। सामाजिक यथार्थवाद को आधार बनाकर प्रेमचंद, यशपाल, रांगेय राघव, अमृत राय, धर्मवीर भारती, उषा प्रियवंदा, राजेंद्र यादव, कृष्णा सोबती ने साहित्य रचा तो दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद को क.द्र म. रखकर जैनेंद्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी आदि ने कहानियां लिखीं। समकालीन कहानीकार की जीवन-दृष्टि युग यथार्थ को जानने के लिए उत्कंठित है। वह जीवन को परंपरागत अर्थों म. स्वीकार नहीं करना चाहता। आज वह नया सौंदर्य शास्त्र अपने अनुभवों के आधार पर रचता है। वह जीवन से जुड़ा हुआ है, इसी यथार्थ जीवन ने उसकी जीवन-दृष्टि का निर्माण किया है। इसी जीवन-दृष्टि को अपनाकर ही आज का कथाकार आधुनिक हुआ है। आधुनिक होने का अर्थ जीवन के प्रति नवीन चेतना के बोध से जुड़ा है। आधुनिकता एक विशेष जीवन-दृष्टि है, जिसम. परिवेश के प्रति संपूर्ण संलग्नता, मानव संबंधों की ऐतिहासिक चेतना का पूर्ण साक्षात्कार अनुभवों की परस्पर सहसंबद्धता आदि आधुनिक बोध के विविध स्तर प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। आज का कहानीकार आधुनिक जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर अपने आस-पास के परिवेश के विविध स्तरों को अंकित करता है। अपने युग की समस्त समस्याएं, विद्रूपताएं पूरे यथार्थ के साथ कृतियों म. अंकित की गई हैं स्त्री-पुरुष संबंध, व्यक्ति स्वातंत्र्य बदलते समय म., स्थितियों से जूझते-टकराते मनुष्य की यथार्थ समस्याएं इनम. देखी जा सकती हैं। ऐसा नहीं है कि आज का रचनाकार आधुनिकता के मोह म. गतिहीन हो गया है, बल्कि वास्तविकता तो यह है कि समकालीन कहानीकार ने आधुनिकता को चुनौती की तरह स्वीकार किया है। आज उन्होंने आधुनिकता को एक मनुष्य की तरह नहीं, वरन् आधुनिकता को एक प्रक्रिया की तरह स्वीकारा है, आधुनिकता उनके लिए एक विकसित वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि है।

हिंदी साहित्य म. आधुनिक जीवन-दृष्टि पहली बार प्रेमचंद की कहानी 'कफन' म. दिखाई देती है। आगे चलकर अज्ञेय जैसे व्यक्तिवादी और यशपाल जैसे व्यापक सामाजिकतावादी कथाकारों म. यह जीवन-दृष्टि प्रतिफलित हुई है। अश्क, विष्णु प्रभाकर, अमृतराय के बाद स्वातंत्र्योत्तर हिंदी लेखकों का वह दौर आया जिसके रचनाकारों ने बदलती राष्ट्रीय स्थिति देश विभाजन की त्रासद स्थितियां, नई व्यवस्था म. मानव का नैतिक पतन, भ्रष्टाचार, बेकारी से साक्षात्कार किया। अब उपेंद्रनाथ अश्क की 'टेबुल लैंप' जैसी रोमांटिक भावुकता से परिपूर्ण या चंद्रगुप्त विद्यालंकार की 'एक और हिंदुस्तानी का जन्म हुआ'- जैसी फार्मूलाबद्ध कहानियों की जगह मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' तथा कृष्णा सोबती की 'सिक्का बदल गया' जैसी कहानियों ने ले ली। ये कहानियां देश विभाजन के दर्द को उजागर करके मानवीय करुणा को उभारती हैं। यह जीवन-दृष्टि के बदलाव का ही परिणाम था, कि लेखकों ने भावुकता, फार्मूलाबद्धता को छोड़कर राष्ट्रीय-सामाजिक यथार्थ पर कहानियां लिखीं।

अपने आस-पास का परिवेश परिस्थितियां प्रत्येक रचनाकार को अवश्य प्रभावित करती है। रचनाकार की अनुभूति का सीधा संबंध यथार्थ से होता है- यह यथार्थ परिवेश से प्राप्त होता है। अपने आस-पास के परिवेश से आँख बचाकर कोई भी रचनाकार यथार्थ चित्रण नहीं कर सकता। परिवेश ही उसकी जीवन-दृष्टि का निर्माण करता है। लेखक की जीवन-दृष्टि जिस परिवेश म. रहकर परिपक्व होती है, वही परिवेश, रचनाकार के मानसिक दबाव और तनाव के साथ मिलकर रचना म. अभिव्यक्ति पाता है। 'रचना के गठन म. रचना का अपना निज का एकांत है- चिंतन है। उसका चिंतन उसकी सोच है जो गहरे म. उसकी मानसिकता की जड़ों से उभरी है वही उसके परिवेश और मूल्यों से जुड़ी जुटी है। उनम. रची-बसी है।'[5]

जीवन-दृष्टि को निर्धारित करने म. रचनाकार के रुख की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। जीवन और जगत, बाह्य और आतंरिक परिस्थितियों, समस्याओं के प्रति वह जिस 'एटीच्यूट' को अख्तियार करता है, उसकी दृष्टि उसी रुख से संचालित होती है। यदि वह आशावादी है तो कहानी के पात्र भी उसकी इसी दृष्टि से परिचालित होते हैं। इसके विपरीत यदि रचनाकार निराशावादी है, तो उसकी रचना म. अनास्था, पलायन और निराशा ही प्रतिबिंबित होती है। वस्तुतः रचनाकार का रुख ही जो उसकी रचना दृष्टि का एक आवश्यक अंग होता है, बल्कि उसी से वह निर्धारित भी होता है उसकी संपूर्ण रचनादिशा को प्रभावित करता है, बल्कि यह कह सकते हैं कि कहानी के अंत म. यही उसका मूल स्वर बनकर ध्वनित होता है।

स्वातंत्र्योत्तर कहानी लेखक- जिन्होंने आधुनिक जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर कहानियां लिखीं, उनम. राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, मार्कंडेय, फणीश्वरनाथ रेणु, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, अमरकांत, निर्मल वर्मा, रमेश बक्षी, कृष्ण बलदेव वैद, रघुवीर सहाय प्रमुख हैं। स्वातंत्र्योत्तर महिला कहानीकारों म. उषा प्रियवंदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, श्रीमती विजय चौहान का नाम प्रमुख है। कृष्णा सोबती ने जीवन का विश्लेषण वैयक्तिक यथार्थ के स्तर पर किया है। इनकी प्रारंभिक कहानियां व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि से अनुप्राणित है किंतु 'ऐ लड़की' तक आते-आते लेखिका व्यक्ति और समाज दोनों के संतुलन को कृति म. स्थान दे पाने म. सक्षम हुई हैं। परिवेश और अनुभव ने मिलकर लेखिका की उस दृष्टि का निर्माण किया है जिससे वह जीवन-जगत को आंकती-परखती है। 'ऐ लड़की' की अम्मू समष्टिगत जीवन का प्रतिनिधित्व करती है और लड़की व्यक्तिगत जीवन

शैली का। व्यक्ति के तौर पर नारी की स्वातंत्र्य चेतना को लड़की ने अपनी जीवन शैली म. परिभाषित किया है। अम्मू ने नारी-स्वतंत्र्य नहीं जाना, किंतु गृहस्थी का दुःख-सुख भोगा है। अम्मू द्वंद्व म. है वे यह निर्णय नहीं कर पा रही कि अकेले रहकर भी स्वातंत्र जीवन ज्यादा अच्छा है या पारिवारिक सुख-दुःख भोगते हुए परतंत्र जीवन! लड़की इस द्वंद्व से नहीं जूझती क्योंकि वह व्यक्ति स्वातंत्र्य की पक्षधर है, वह निर्णय ले चुकी है। अम्मू का द्वंद्व ही उनके कथनों म. मुखर है।

कृष्णा सोबती की अम्मू का जीवन दर्शन, जीवन को उत्सव मानकर का दर्शन है। मृत्युशैय्या पर पड़ी वह अपनी एकाकी बेटी की चिंता से ग्रस्त है। उसे लड़की का स्वतंत्र जीवन मोहता है, वह उसके 'मन की संतान' है परंतु वह उसके अकेले जीवन की आलोचना करने से भी नहीं चूकती, क्योंकि वह जानती है कि अकेले आदमी की पूंजी कुछ नहीं होती। वह लड़की से कहती है- 'एक कतरा ही दिखा दो, जो तुमने इस जन्म म. अर्जित किया हो। तुम्हारी अपनी पूंजी क्या है।'[6] अम्मू ने अनुभव संपन्न जीवन जिया है। बिस्तर पर पड़ी बीमार अम्मू इन्हीं अनुभवों के आधार पर अपना और बेटी का जीवन आंक-परख रही है।

'ऐ लड़की' की अम्मू भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है जिसकी नियति परिवार और गृहस्थी म. खपना-खटना है। लड़की नई रोशनी की नारी का प्रतिनिधित्व करती है। अम्मू वाचक की भूमिका म. है। लड़की जिज्ञासु की भूमिका म. है, जो प्रेरित करती है- अम्मू को अनुभव ज्ञान बताने के लिए।

अम्मू के अनुभव संपन्न जीवन से प्राप्त दर्शन को ही इस कृति म. कृष्णा सोबती ने व्यक्त किया है। यह दृष्टि अम्मू को जीवन की ऊबड़-खाबड़, समतल सतह पर चलने से मिली है। इस संसार म. मनुष्य का जीवन सदैव सीधे-सादे रास्ते पर चलना स्वीकार नहीं करता। टेढ़े-मेढ़े घुमावदार रास्तों पर उसने परिक्रमा की है। लड़की इस घेरे के बाहर है इसीलिए अम्मू उससे कहती है, बच्चे होते हैं, परिवार होता है।[7] अम्मू ने इस घेरे की परिक्रमा की है, इसलिए वे जानती हैं कि परिवार होने पर भी स्त्री अकेली होती है। उसका अपना व्यक्तित्व, अपनी पहचान कुछ भी नहीं होती।

इस कृति म. लेखिका के जीवनदर्शन का प्रतिनिधित्व कुछ अंशों म. लड़की करती है। कृष्णा सोबती निजी जीवन म. एकाकी रहने की ही पक्षधर हैं- 'अपने को किसी के साथ क्योंकि कभी बांटा नहीं है, इसलिए लौट-पलटकर अपना बिंदु मैं खुद ही बनी रहती हैं।'[8] अकेलापन आदमी को विवेक दृष्टि देता है। लड़की अपने बारे म. कहती है- मैं किसी को नहीं पुकारती। जो मुझे आवाज देगा, मैं उसे जबाब दूंगी।[9] कृष्णा सोबती की दृष्टि म. अकेले आदमी की कतार म. कोई नहीं होता, इसलिए वह प्रत्येक चीज के दोनों पहलुओं को तटस्थता से जांच सकने की क्षमता पा लेता है।

गलत परंपरा और सड़ी-गली रूढ़ियों को तोड़ने के लिए कृष्णा सोबती सदैव तत्पर हैं। वे जीवन म. खुलेपन की पक्षधर हैं 'मैं यह यकीन करना चाहती हूं कि इन सड़ी परंपराओं की तह-तले अभी जंग नहीं लगा। वहां भी कुछ ताकत है इस माहौल के शिकंजे को तोड़ डालने की। अपनी-अपनी छतों पर जिंदगी की धूप स.क सकने की।[10] 'लेखिका इस कहानी म. लड़की के बारे म. कहती है 'तुम तो अपने म. आजाद हो। तुम पर किसी की रोक-टोक नहीं। जो चाहो, कर लो। ऐसा इसलिए है कि लड़की ने स्वतंत्र जीवन का चुनाव किया है जहां 'दुनियादारीवाली चौखट' नहीं है, परंतु 'अपने आप म. आप होने का परम, श्रेष्ठ' भाव है।'

अकेलेपन और स्वतंत्र जीवन चेतना की पक्षधर होते हुए भी कृष्णा सोबती कहीं परंपरा विरोधी या समाज विरोधी नहीं है। यह सच है, कि घर गृहस्थी का उनके जीवन म. कोई स्थान नहीं परंतु इस सबके न होने का, इस खालीपन का, उन्ह. कुछ अफसोस जरूर है। उन्होंने लिखा है- 'वे नन्ह. मासूम क्षण जो हर सुबह हर घर म. जिंदा होते हैं, वे यहां नहीं हैं। यहां तो एक मैं ही हूं। मैं ही। मैं एक अहसास।[11] 'अम्मू कृष्णा सोबती के इसी भाव को वहन करती है। उसके लिए' जीना और जीवन छलना नहीं।[12] वह अकेलेपन से घबराती है। वह भरे-पूरे परिवार को अपनी मृत्यु शैय्या पर याद करती है। अम्मू के अनुभवों म. कृष्णा सोबती की जीवन-दृष्टि का परिचय मिल जाता है। नारी-स्वातंत्र्य, नर-नारी संबंध, मां-पुत्र, मां-बेटी और जीवन शैली पर अम्मू कई कथन करती हैं। इन कथनों म. ही जीवन का मर्म छिपा है। कृति ही लेखक के जीवन-दृष्टि का प्रतिबिंब होती है। यह कहानी दो-तीन पात्रों के माध्यम से लेखिका की दृष्टि से पाठक को परिचित कराती है। कोई भी पात्र समग्रतः लेखिका के जीवन-दृष्टि को वहन नहीं करता। प्रत्येक पात्र अंशतः इस जीवन-दृष्टि को अपने कथन और भंगिमा म. व्यक्त करता है।

लेखिका का जीवन-दृष्टि जीवन को भोगने, ऐन्द्रिय सुखों की तृप्ति का दर्शन है। 'ऐ लड़की' की अम्मू को जीवन का व्यापक अनुभव है। उसके अनुभवों की सुगंध पूरी कृति म. व्याप्त है। लालसा एक व्यापक अनुभव है, जो सबके हृदय म. बैठी रहती है। जीने की लालसा, सुख पाने की लालसा, मृत्यु से आंख बचाकर अंतिम क्षण तक जीवन को जी लेने की लालसा ऐसी लालसाओं को युगों से स्वीकृति मिलती आई है, इसलिए लालसा के संदर्भ म. अनुभव का जो दायरा है, वह बड़ा व्यापक है। अम्मू म. जीवन को जी लेने की लालसा है। मृत्युशैय्या पर भी वह ऐन्द्रिक सुख भोगना चाहती है। रूप, रस, शब्द, स्पर्श गंध इन सभी की लालसा अभी भी उसम. है। वह सुगंधित साबुन से स्नान करना चाहती है, हलवा खाने की इच्छुक है और तो और शरीर के घावों की परवाह न प्रकृति को भी निकट से देखना चाहती है।

अम्मू के अनुभव निजी हैं, उसकी लालसाएं भी उसकी अपनी हैं, लेकिन कहीं भी पाठक को अटपटी या विचित्र नहीं लगती। अम्मू के कथनों से पाठक के अपने सुप्त अनुभव जग जाते हैं और उतनी ही निकटता से जीवन सत्य के दर्शन करने लगता है। जीवन कहानियों से भरता रहता है। मृत्यु कहानियों को खाली करती रहती है। अम्मू अपने आपको लगातार खाली कर रही है। दुनिया उसकी आँख से ओझल ही नहीं होती। मृत्यु शैय्या पर भी अम्मू म. जीवन के प्रति वैराग्य भाव नहीं है। अम्मू भारतीय दर्शन के अनुरूप ही आसक्ति म. जीवन की सफलता मानती है। वस्तुतः मानव जीवन का मूल स्वर आसक्ति का है विरक्ति का नहीं। भारतीय दर्शन और धर्म म. भी प्रवृत्ति म. ही निवृत्ति को अनुस्यूत माना गया है। कोई भी धर्म, दर्शन, सिद्धांत आदमी के लिए बेमानी है, जो जीवन से भागता सिखाता है। परिवार, संतान इन सबका सुख-जीवन का पुरस्कार है। जीवन की सार्थकता है इसे थामने म., इसका कण-कण जी लेने म.। जीवन से भागता आसान है, इसे जीना कठिन। यह कठिनता सहजता म. परिवर्तित हो जाती है इसी लोक की नेमतों को जिया जाए- 'कहीं और नहीं, जानेवालों का तीर्थ-धाम यहीं हैयहीं।' [13] इहलोक को सत्य मानकर जीवन के पुरस्कार पाना-अम्मू का यही जीवन-दर्शन है। अम्मू जीने के पुरस्कारों का ही पवित्र स्मरण करती है। जीवन म. उसे कई खट्टे-मीठे अनुभव हुए हैं। अपने परिवार म., श्वसुर कुल म. उसके सुख-दुःख का समय गुजरा है। पूरा

जीवन बिताने के बाद भी वह पुनः इसी घर म. लौट आना चाहती है। वह बार-बार अपने उसी घर म. लौट आना चाहती है- जहां 'पूर्वजों की संचित समिधा' है। परिवार के बीच लोक की आकांक्षा है, जहां चूल्हे जलते हैं। उन नेमतों का स्मरण है जो जीने के लिए मिली है ओस जड़ी दूर्वा, भोर की संपदा, बदलती रुत की हवाएं, आकाश म. उड़ते पाखी, टहनियों से फूटती हरी-हरी कोंपल., गुनगुनी धूप। ये दुनिया ही अम्मू का सपना है। अम्मू के भीतर 'अथाह स्मृतियों का कुंड है जहां से जीवन की आद्यध्वनियां बहती चली आ रही हैं।'[14] अम्मू उस शाश्वत मानवी का प्रतिरूप है जिसकी सगुणों से भरी गोद अक्षत है। बच्चे नींद म. जिसे देख मुस्कुराते हैं। वह जीना कभी नहीं छोड़ सकती। छोड़कर जा नहीं सकती। वह जीवन की डोरी से बंधी हुई है। वह मौत को भी झुठला देती है-संतान पैदा करके।

संतान उत्पन्न करना नारी के लिए एक संपूर्ण यज्ञ है। वह जननी बनकर विधाता को चुनौती देती है। विधाता प्रकृति रचता है, नारी मानव रचती है। 'जीव उत्पन्न करने म. उसकी गूंथ-गूंज कुदरत से मिली रहती है।'[15] खींच लेती है, और उस ऊर्जा से ही ज्वलित होती है। मां अपने तन-मन से, इसी ऊर्जा के बल पर संतति पैदा करती। इसी संतति म. मां सदाजीवी रहती है वह कभी मरती नहीं। पुत्री को जन्म देकर मां बहुत करती है। पुत्री के रूप म. वह अपनी समरूपा उत्पन्न करती है। पुत्री की पुत्री और उसकी पुत्री म., आगे और आगे भी मां सदाजीवी हो जाती है।[16] वह कभी नहीं मरती। हो उठती है वह निरंतरा। वह आज है, कल भी रहेगा। मां से बेटी तक।

नारी सृष्टि का स्रोत है। उसके ऊपर सृष्टि के संचालन का उत्तरदायित्व है। वह परिवार की संचालिका है। पुरुष बीज रूप म. संतान को जन्म देता है और नारी अपनी संतान की काया गढ़ती है। पुरुष का लहू ही मनुष्य की संतान म. प्रवाहित होता है। पुरुष के कुल को ही संतान आगे बढ़ाती है। प्रत्येक पुरुष स्वयं को जनक समझने का गर्व धारण किए रहता है 'हर नर अपने को परम पुरुष समझता है।'[17] वह स्वयं को ही सृष्टि का नियामक समझता है। वह इस अभिमान म. रहता है, जैसे जीवन की समस्त सुगंध का धारक और वाहक वही है किंतु वास्तविकता क्या है? वास्तविकता है, कि जीवन क्षणभंगुर है उसके लिए अभिमान करना क्या बुद्धिमत्ता है इस भेद को अम्मू समझती है तभी वह जीवन रहस्य को कस्तूरी सुगंध और हिरण चाल का रूपक देकर समझाती है 'लड़की जीवन हिरण है हिरण। कस्तूरी मृग। इस क्षणभंगुर जगत म. अपनी महक फैला यह जा और वह जा।'[18]

इस गंध की लहर उठती है जिजीविषा का एक उल्लास तरंगायित होता है और अंततः वह किसी लहर की गोद म. जाकर विलीन हो जाती है। फिर किसी इस क्षणभंगुर जगत् जीवन को पल-क्षण के लिए थामकर नारी, पुरुष के जीवन को सार्थक बनाती है, जब कि इसके लिए नारी को ही मूल्य चुकाना पड़ता है। स्वयं पुरुष की लालसाओं और वांछनाओं का आखेट बनकर। 'थोड़े-से पलों के लिए औरत इस भागते मृग को थाम लेती है और आप मृगया बन जाती है।'[19] नारी अपने समर्पण म. जगत का समस्त आनंद और उल्लास छिपाए लिए चलती है। उसके समर्पण म. संतति की अटूट कड़ी निर्मित होती है जिसके बंधन म. सारा, संसार चलता है चलकर मिटता है और मिटकर उगता है। धरा से धारा फूटती है और सृष्टि की गोद कभी सूनी नहीं होती। जगत की आत्मा इसी गोद म. संतति रूप म. निवास करती है। शरीर बदलते रहते हैं परंतु आत्मा अपने मूल रूप म. वहीं रहती है। पुरुष पुत्र को जन्म देकर अपना समरूप उत्पन्न करता है। पुत्र ही परिवार का संचालन करता है। वंश चलाने के लिए पुत्र अनिवार्य है, इसीलिए पिता पुत्र के लिए लालायित रहता है 'पिता जलाशय है।

पीढ़ी-दर-पीढ़ी बहता चला जाता है, वह सदाजीवी होता है। भारतीय धर्म शास्त्र म. पितरों के तर्पण के लिए पुत्र ही अनिवार्य माना गया है। अम्मू बेटियों को महत्ता देने के बावजूद परंपरा विरोधी नहीं है। वह जानती है कि सगुण शास्त्र से 'कुल की सरदारी बेटियों का नहीं जाती। पुत्र ही परिवार म. पिता का स्थानापन्न बनता है। इसे अम्मू ने अनुभव से जाना है।

पिता बनकर पुरुष एकाकी पड़ जाता है। नारी अपनी संतान म. इतनी व्यस्त हो जाती है कि वह पुरुष के लिए समर्पिता नारी नहीं रह जाती बल्कि जिम्मेदार मां बन जाती है। मां बनना उसके जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता है। मां बनकर नारी अपनी सार्थकता पा लेती है, फिर उसके लिए पुरुष की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती। यहीं पुरुष अकेला पड़ जाता है- 'पिता बनकर मर्द घाटे म. रहता है।'[20] इस वास्तविकता को जानकर भी पुरुष नारी के साथ की कामना करता है और नारी पुरुष के। नारी-नर का संयोग केवल संतानोत्पत्ति के उद्देश्य म. ही परिसीमित नहीं है। इससे भी आगे वह संबंध आत्मा और देह का है। 'आत्मा और देह मिलकर ही इस दुनिया का सपना बुनते हैं।'[21] इन दोनों म. से किसी एक की पृथक सत्ता का कोई मूल्य नहीं।

नर-नारी का यह संयोग मात्र नहीं, दोनों के संचित पुण्य-कर्मों का फल होता है। भारतीय दर्शन म. जिस पुण्य का महात्म्य वर्णित है, वह अम्मू के संस्कारी मन पर अंकित है। भाग्य और पुण्य दोनों मिलकर जीवन म. संग-साथ का निर्माण करते हैं। जीवन म., पुरुष का संग और लंबा एकाकीपन दोनों ही प्रकार का जीवन रुक्ष और सूना होता है, इसके विपरीत जब संग हो तो किसी का साथ पाकर हस्ती कुछ और सी हो उठती है। अंदर-बाहर सब्जा उगने लगता है।[22] जीने का मजा किसी के साथ होने म. ही है। नर-नारी का साथ जीवन को रसयुक्त और संपूर्ण बनता है।

नर-नारी के साहचर्य से परिवार बनता है। परिवार का स्वामी होता है पुरुष। वही अपनी कमाई से परिवार को चलता है। इस आर्थिक सबलता के कारण ही वह अपना स्वामित्व पूरे परिवार पर बनाए रखता है। नारी, संतान की जननी होकर भी पुरुष के आगे उसके स्वामित्व के कारण नमित रहती है। प्रत्येक परिवार म. स्त्री और पुरुष का दर्जा बराबर नहीं बल्कि ऊंचे नीचे का होता है। अम्मू ने उस स्त्री के रूप म. जीवन जिया है आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा के लिए पुरुष पर निर्भर रही है। इसलिए वह लड़की से कहती है- 'लड़की सबकी यात्रा इसी तरह घात-प्रतिघात म. गुजरती है। घर का यह खेल बराबरी का नहीं, ऊपर-नीचे का है।'[23] विवाह के बाद स्त्री की स्वतंत्र इच्छा-अनिच्छा का कोई मूल्य नहीं रह जाता। वह नाव खेने वाले मांझी की तरह है जो अपनी मेहनत से चप्पू चलाती है, और पूरे परिवार को लिए जीवन-झील म. घूमती है। परिवार के सदस्य उसकी पीड़ा नहीं समझते। औरत मां और पत्नी के रूप म. जीवन-पर्यंत परिवार के लिए खटती और खपती है। इस परिश्रम म. बदले म. कुछ नहीं प्राप्त होता। पति के लिए समर्पिता और बच्चों के लिए ममतामयी मां बनी वह अपने-आपको भूली रहती है। अपने बारे म. सोचने का समय ही उसके पास नहीं है।

वह इस स्थिति के लिए स्वयं उत्तरदायी है। अपनी खोज-खबर उसे खुद लेनी पड़ेगी। अम्मू जीवन की संध्या बेला म. यह जान पायी है- 'उसका वक्त तब सुधरेगा जब वह अपनी जीविका आप कमाने लगेगी।'[24] आर्थिक आत्म-निर्भरता नारी को पीड़ित-शोषित होने से बचाती है। अर्थ वह तत्व है, जिसके बल पर पुरुष अपना प्रभुत्व कायम रखता है। उसकी दीनता मुक्ति का एकमात्र मार्ग आत्मनिर्भरता है। अम्मू को खेद है, कि उन्होंने अपने का परिवार म. खपाकर निज की इच्छाएं पूर्ण

नहीं की। परिवार म. नारी का निजी अस्तित्व कुछ नहीं रह पाता। उसके व्यक्तित्व की पहचान किसी की पत्नी, किसी की मां, नानी, दादी के रूप म. होती है। निज के व्यक्तित्व का तिरोभाव हो जाता है। अम्मू जानती है, कि गृहस्थी म. सारी शोभा नाम की ही है। अम्मू ने आजीवन अपने परिवार को घड़ी मुताबिक चलाया, किंतु 'अपना निज का कोई काम न संवारा।' घर की दिनचर्या म. औरत के पास अपने लिए फुर्सत ही नहीं होती। परिवार चलाने के लिए उसे अपनी इच्छा-अनिच्छा की बलि देनी पड़ती है। 'गृहस्थी म. पांव रखकर स्त्री का जो मंथन-मर्दन होता है, वह भूचाल के झटकों से कम नहीं होता। औरत सहन कर लेती है, क्योंकि उसे सहन करना पड़ता है।'[25] नारी यदि इस मंथन-मर्दन को सहन न करे तो परिवार चल नहीं सकता। गृहस्थी के ताने-बाने म. ही उसकी उम्र गुजर जाती है। वह यदि इस ताने-बाने से निकलने का प्रयास करती है तो गृहस्थी का जंजाल उसे निकलने नहीं देता।

ऐसा नहीं कि परिवार बनाने के कारण औरत को कोई विशिष्ट पुरस्कार मिलता है। वह संतान पैदा करके पाल-पोसकर बड़ा करती है। इस सारी प्रक्रिया म. उसका निजी व्यक्तित्व संतानों म. बंट जाता है। अपने लिए सोचने का उसके पास वक्त नहीं बचता। जिनके लिए वह खटती है सुख देती है वे उसे मात्र परिवार की व्यवस्थापिका समझते हैं। मां अपने तई कुछ भी समझती रहे, बच्चे उसे धाय बनाकर रखे रहते हैं। परिवार और गृहस्थी जहां औरत का निजी व्यक्तित्व छीन लेते हैं वही उसे नारीत्व की सार्थकता भी प्रदान करते हैं। मां बनकर वह एक साथ भूत, वर्तमान और भविष्य को जी लेती है। और संतति के रूप म. उसका भविष्य उसकी गोद म. खेलता है, मां बनकर वह वर्तमान जीती है और बच्चे की आँखों म. उसी का अपना अतीत झिलमिलाता है। अम्मू ने मां बनकर इस सुख को जाना है मां बनकर तो वह तीनों काल जी लेती है। मां बनकर ही अम्मू ने तमाम अनुभवों को जिया है। ऐसे अनुभवों म. जीवन का अर्थ समाया है।

अम्मू परिवार और मां बनने के महात्म्य का गुणगान करती हुई पारिवारिक यथार्थ की कटुता की ओर संकेत करती है। उसने अनुभव के ठोस धरातल पर इस यथार्थ को पाया है। गृहस्थी का यथार्थ और एकाकीपन की त्रासदी दोनों उसके मानस नेत्रों के सामने है। अम्मू की दृष्टि म. लड़की उसकी अपने मन की संतान है। अम्मू ने जीवन का जो लालसापूर्ण चित्र खींचा था, उसका प्रतिबिंब लड़की म. झलक रहा है। लड़की उसकी कल्पना का प्रतिरूप है। 'लड़की अपने आप म. आप होना परम है, श्रेष्ठ है।' गृहस्थी की खोखली शोभा से अम्मू परिचित है, इसलिए वह लड़की की आजादी की प्रशंसिका है। अम्मू की जीवन-दृष्टि कुछ देर के लिए परंपरागत लग सकती है। अम्मू नर-नारी की संगति का गुणगान करती है और कभी लड़की की आलोचना करती है लेकिन उसके कथनों से धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह पुरानी जड़ता और रूढ़िबद्धता के विरूद्ध है और उसे तोड़ना चाहती है। उसकी दृष्टि म. 'यह भारी परदे बदल दो। ताजी हवा अंदर आने दो।'[26] वह नारी स्वातंत्र्य आंदोलनों की झंडाबरदार नहीं है। उसम. क्षमता है परंपरागत नारी के जीवन को व्याख्यायित करने की। उसके पास वह दृष्टि है जो नारी को सदियों की रूढ़ि तोड़ने के प्रयास की दिशा दिखाती है। उसकी दृष्टि म. नारी अकेलेपन म. भी सक्षम है। वह अपनी लड़की का मनोबल बढ़ाती है- 'वैसे चाहो तो तुम क्या नहीं कर सकती।'[27] एकाकीपन व्यक्तित्व म. आत्मविश्वास भरता है। साथ-साथ के संगी साथी परस्पर पूरक बन जाते हैं। वे एक दूसरे के लिए अनिवार्य बन जाते हैं। अकेलेपन म. संकट

से जूझते की शक्ति होती है। उस शक्ति को पाकर कोई भी दायरा तोड़ा जा सकता है। उसे अम्मू की लड़की ने तोड़ा ही नहीं है, तोड़कर दुनिया की आँखों के सामने अपनी अस्मिता का चित्र खींचा है। अम्मू इस लड़की की प्रशंसिका है। अम्मू के जीवन की शायद यह सबसे बड़ी खूबी और पहचान है। परंपरागत नारी के गिरते मनोबल के लिए अम्मू के विचार संबल बनकर उभरते चलते हैं। अपरिचय, भय और आशंका का कोहरा छंटता चलता है। लड़की चाहे न बोले, किंतु पाठक की कल्पना म. लड़की का अबोलापन भीतर-भीतर अम्मू के वक्तव्य की ऊर्जा से क्षण प्रतिक्षण शक्ति और साहस जुटाने लगता है। लेखिका ने यदि लड़की पर भी थोड़ी कलम चलाई होती तो शायद यह पक्ष भी उभरकर और स्पष्टतर दीखने लगता किंतु जो अव्यक्त रह गया है, या कथासंयोजन की सीमा म. जो छूट गया है, वह दुर्बलता नहीं कथा की शक्ति बन गया है। नारी जागृति की चर्चा संकेत म. ही अम्मू ने की है। संकेत म. ही अनुमान की संभावना रहती है, जो नई-नई अर्थव्यंजना की संभावना से पूरित है। इस संकेत से लेखिका के नारी संबंधी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। अम्मू के नारी स्वातंत्र्य संबंधी दृष्टिकोण पर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है।

अस्तित्ववाद व्यक्ति स्वातंत्र्य का पक्षधर है। स्वतंत्रता ही तत्व है जो जीवन को जीवन बनाता है, अच्छे और बुरे, पाप और पुण्य, जय और पराजय से ऊपर वह मनुष्य को अपनी नियति के भय से ऊपर उठाता है और उसकी संभावनाओं को स्थापित होने का अवसर देता है। अम्मू इस स्वतंत्रता की पक्षधर हैं लेकिन कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि 'ऐ लड़की की रचना किसी दर्शन विशेष के प्रचार हेतु की गई है। यह महज एक संयोग है कि अस्तित्ववादी दर्शन व्यक्ति स्वातंत्र्य की बात करता है और अम्मू भी। अम्मू का नारी स्वातंत्र्य एक स्त्री की खोज है। स्त्री के भीतर स्त्री की खोज। इस अर्थ म. यह कहानी कृष्णा सोबती की अन्य कहानियों से बिलकुल विशिष्ट है। नारी की मुक्ति मातृत्व म. है। अम्मू मृत्यु शैय्या पर अपनी बेटी को यह शिक्षा देती हैं। वह स्त्री की रचनात्मक, सृजनात्मकता का गौरवगान करती है। कृष्णा सोबती की अब तक की कहानियों म. 'स्त्री का अर्थ पुरुष' देता है। जबकि इस कहानी म. सिर्फ स्त्रियां हैं, उनकी मुक्ति म. पुरुष कहीं नहीं। आज के युग म. स्त्री को मातृत्व की ओर लाने के विचार से आप्लावित यह कहानी अपना वैशिष्ट्य रखती है।

'ऐ लड़की' कहानी म. मृत्यु का साक्षात्कार करती अम्मू पर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव कुछ आलोचकों ने माना है।[28] 'ऐ लड़की' की तुलना टालस्टॉय कृत 'इवान इलिच की मृत्यु' और निर्मल वर्मा की 'बीच बहस म.' से की गई है। टालस्टॉय की कहानी म. मृत्युशैय्या पर लेटे इवान इलिच का शरीर घोर यंत्रणा भोग रहा था, पर शारीरिक यातना से भी बढ़कर उसकी यातना नैतिक थी। 'ऐ लड़की' म. अम्मू ऐसी किसी नैतिक यंत्रणा से त्रस्त नहीं है। वह सामान्य मानव की तरह मृत्यु से भयभीत है। किंतु साथ ही आसन्न मृत्यु को नियति मानकर उसको सहज रूप म. स्वीकार भी करती है। वह भारतीय दर्शन म. वर्णित आत्मा की शाश्वतता की पृष्टि करती है। वह पुनर्जन्म म. विश्वास रखती है, इसलिए अपनी मृत्यु को वह 'चोला बदलने' के रूप म. स्वीकार करती है। अस्तित्ववादी दर्शन म. यह माना गया है, कि मनुष्य के जीवन के साथ मृत्यु अनिवार्य रूप से संबद्ध है। 'मानव जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप मृत्यु है। मनुष्य इसके लिए कुछ भी नहीं कर सकता है। अतः उसे अत्यंत कम समय म. अपने व्यक्तिगत जीवन को अर्थ देना है।'[29] अम्मू मृत्यु के सम्मुख हताश और निराश नहीं है। यदि मृत्यु का वरण नहीं करना चाहती तो केवल इसलिए कि उसे जीवन का सौंदर्य

आकृष्ट करता है, वह उसे और जीना चाहती है। अम्मू को मन म. कष्ट है, तो इसलिए कि वह अपने जीवन म. सभी इच्छाएं नहीं पूरी नहीं कर सकी। इवान इलिच की त्रासदी है कि उसने एक झूठा और व्यर्थ जीवन जिया है। इसके विपरीत अम्मू ने सार्थक जीवन जिया है। उसने अपने जीवन को उत्सव की तरह जिया है। यहीं पर अम्मू का जीवन-दर्शन अस्तित्ववादी दर्शन से अलग दिखाई देने लगता है। इवान इलिच मृत्यु को भूलकर जीवन जीता रहा और अंतकाल म. जीवन को घृणा से देखता है। वह बूढ़ा जो अचानक 'बीच बहस म.' चुप हो गया है। संसार म. वापसी की उसे कोई उम्मीद नहीं। पर अम्मू के हाथ म. तो एक 'चितकबरी जन्मपत्री' है:

'न जिंदगी म. कुछ नोना-नमकीन और कुछ मिश्री-मीठा। इतना ही। पछतावा कैसा। सबकी जन्मपत्री चितकबरी ही हुआ करती है।'[30]

अम्मू जानती है कि जीवन म. हर्ष विषाद, सुख-दुःख हानि सभी की अपनी-अपनी भूमिका होती है। इस सबको नियत करना ईश्वर के हाथ म. है। जीवन समर म. उतरने वाले को ही फल भी प्राप्त होता है। अम्मू ने इस समर म. संघर्ष किया है लाभ-हानि दोनों की प्राप्ति की है इसलिए उसे अपने विगत के प्रति कोई शोक नहीं है। और न ही आगत के लिए कोई भय।

कृति म. व्यक्त जीवन-दृष्टि ही उसके मूल्यांकन का आधार होती है। रचनात्मक जीवन-दृष्टि का स्थान साहित्य की सर्जना म. अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह जीवन-दृष्टि जीवन के गतिशील प्रवाह के समानांतर बदलती रहती है। लेखकीय दृष्टि का निर्माण उसके अनुभव करते हैं, जिनकी ऊर्जा परिवेश से उत्पन्न होती है। जो रचना अपने अनुभवों की सुगंध जितनी दूर तक बिखेरती है वह उतनी ही लोकप्रिय होती है। 'ऐ लड़की' कृष्णा सोबती की अनुभव-संपन्न जीवन-दृष्टि का परिणाम है। इस कहानी के पात्रों अम्मू, लड़की तथा अन्य गौण पात्रों म. लेखिका का अपना जीवन-दर्शन ही प्रतिफलित हुआ है। लेखिका की जीवन-दृष्टि, आधुनिक जीवन-दृष्टि है जो परिवेश के प्रति संपूर्ण संलग्नता, अनुभवों की परस्पर सहसंबद्धता से निर्मित हुई है। उनकी दृष्टि किसी वाद विशेष या स्वीकृत दर्शन के अंधानुकरण का परिणाम नहीं, बल्कि स्वानुभूत यथार्थ से प्राप्त दृष्टि है। उन्होंने अपने अनुभव से परिवार, समाज व्यक्ति को जाना समझा है। इस कहानी म. सोबती ने नारी स्वातंत्र्य और व्यक्ति के रूप म. नारी की अस्मिता की पहचान, जैसे प्रश्नों से सामना किया है। कहानी के पात्र-अम्मू और लड़की तथा नर्स सूसन-उनकी दृष्टि का प्रतिनिधित्व करते हैं। लड़की के आगे पूरा जीवन पड़ा है और वह अकेली रहती है-अम्मू जब उससे पूछती है कि वह जरूरत पड़ने पर किसे आवाज देगी तो लड़की के उत्तर का आत्मविश्वास नारी जागृति को रेखांकित करता है। अम्मू इस जागृति की पक्षधर है वह जानती है इस स्वातंत्र्य के महत्त्व को परंतु फिर भी परंपरागत संस्कार और अपने उत्सवी जीवन की स्मृति उसे बार-बार लड़की के अकेले जीवन की आलोचना करने पर बाध्य करते हैं। कृष्णा सोबती ने जीवन के अनुभवों से एकाकी और पारिवारिक जीवन की अच्छाई-बुराई को समझा है। उनका अनुभव संसार इतना व्यापक है कि कभी-कभी तो पाठक इस कृति को उनकी आत्मकथा मानने लगता है। वस्तुतः यह जीवन-दर्शन इतना प्रामाणिक है कि पाठक उसम., यथार्थ जीवन दर्शन करने लगता है। ●

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. साहित्य और जीवनमय कला-समकालीन भारतीय साहित्य अंक-48, अप्रैल-जून

2. कथन-कृष्णा सोबती, मानस पत्रिका, पृ.सं. 52
3. सोबती एक सोहबत, कृष्णा सोबती-पृ.सं. 296
4. आधुनिक हिंदी कहानी-गंगाप्रसाद विमल-पृ.सं.95
5. सोबती एक सोहबत, कृष्णा सोबती-पृ.सं. 296
6. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 75
7. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 76
8. मुलाकात हमशत से-हम हमशत, पृ. 266
9. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 65
10. हम हमशत, कृष्णा सोबती-पृ. 268
11. हम हमशत, कृष्णा सोबती-पृ. 254
12. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 53
13. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 116
14. 'समास', पत्रिका, ले. ध्रुव शुक्ल-अंक 1, पृ. 55
15. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 55
16. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 56
17. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 57
18. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 58
19. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 58
20. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 59
21. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 61
22. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 61
23. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 62
24. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 74
25. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 74
26. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 99
27. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 76
28.'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 75
29. 'ऐ लड़की'- कृष्णा सोबती पृ. 106
30. 'ऐ लड़की': फेंस के इधर और उधर-नवभारत टाइम्स 22 मार्च 92

असमिया कथा-साहित्य का तीन दशक

सूर्यकांत त्रिपाठी

सन् 1940 से 1970 पर्यंत कुल तीन दशक की कथाओं के वैशिष्ट्य को प्रकाशित करने का प्रयास प्रस्तुत आलेख में किया गया है। इस काल को रामधेनु युग के नाम से डॉ. धर्मदेव तिवारी ने अपनी पुस्तक असमिया साहित्य में उद्घृत किया है।1 (तिवारी, डॉ. धर्मदेव, असमिया साहित्य, पृ. सं. 80)। असमिया साहित्य में रामधेनु युग की शुरुआत तकरीबन 1940 से मानी जाती है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात असम के जातीय जीवन में बहुशः बदलाव आया और सन् 1942 के स्वतंत्रता संग्राम के कारण असम का जन-जीवन आंदोलित हो उठा। इस प्रकार युद्ध का जो कुप्रभाव समाज पर पड़ा उससे असम का कथा-साहित्य भी अछूता न रहा और इस काल के कथाकारों ने अपने-अपने ढंग से समाज की विकृतियों पर दृष्टिपात करते हुए अपनी लेखनी चलाई। इस युग के कथाकारों में विशेष रूप से लक्ष्मीनाथ बरा, विनोद शर्मा, चित्रलता फूकन, होमेन बरगोहाई, सैयद अब्दुल मालिक, वीरेंद्र भट्टाचार्य, रिजु हजारिका, जमीरूद्दीन अहमद, रूनु बरूआ, यतीन बरा,चंद्रप्रकाश शइकीया, अनुपमा बरगोहाई, नीलिमा शर्मा, लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ, महीचंद्र बरा, लक्ष्मीधर शर्मा, राधिका मोहन गोस्वामी, कृष्ण भुइयां, त्रैलोक्य नाथ गोस्वामी, सौरभ कुमार चालिहा, पद्म बरकटकी, महेंद्र बरठाकुर, राजेंद्रनाथ हजारिका, लक्ष्मीनंदन बरा, रूद्रप्रसाद काकती, रोहिणी कुमार काकती, निरूपमा बरगोहाई, मामनि रायसम गोस्वामी, प्रणीता बेबी, आरतिदास वैरागी, अनिमादत्त भराली, रत्न ओझा, स्नेह देवी प्रभृति उल्लेखनीय है। तद्‌युगीन कथा-साहित्य विशिष्टताओं को अधोलिखित सांचों में रखकर देखा और परखा जा सकता है-

सामाजिक परिवेश :

सामाजिक परिवेश को ध्यान में रखकर हर युग का साहित्यकार पुरानी रूढ़ियों, अंधविश्वासों को छोड़कर नई परिस्थितियों को अपनाता है। यथार्थवादी सभ्यता के प्रभाव से हमारा समाज किस प्रकार बदला है और उसका प्रतिफल वर्तमान और भविष्य पर क्या हो रहा है और क्या होगा को इंगित कर कथाकार लक्ष्मीनाथ बरा ने 'देवतार व्याधि' एवं 'गुरु पर्व' जैसी कहानियों के द्वारा प्रकट किया है। इसी प्रकार अपनी 'रूपांतर' तथा 'भेकुरीर पुंज' कहानियों के माध्यमों से विनोद शर्मा ने समाज में परिव्याप्त ऊंच-नीच, जाति-पांत जैसी बुराईयों पर प्रहार किया है। इस काल के कथाकारों में शोषितों के प्रति संवेदना, सहानुभूति और शोषकों के प्रति आक्रोश बखूबी देखा जा सकता है। चित्रलता फूकन, होमेन बरगोहाई आदि कथाकारों का नाम इस रूप में विशेष उल्लेखनीय है। इस

प्रकार समाजजन्य चिंता की उद्‌भावना इस युग के कथाकारों की कथाओं में पर्याप्त रूप से प्राप्त होती है।

मानवीय भावबोध की अभिव्यक्ति :

इसके अंतर्गत हम देखते है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद समस्त देश के मानवीय बोध में बदलाव आया तो उसका प्रभाव असमिया कथाकारों पर भी पड़ा और उनकी कहानियों में मानवीय भावबोध की अभिव्यक्ति का सिलसिला शुरू हो गया। इस प्रकार की कहानियों में 'शिकार', 'हरिमास्टर', 'दोकान', 'यीशु खृष्टरछवि', 'जपना', 'वीभत्स वेदना', 'फिकापोर', जैसी अब्दुल मालिक की कहानियों में विशेष रूप से द्रष्टव्य है। वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्या द्वारा लिखी गई 'ए जनी जापानी छोआली', मियाँ मंसूरी एवं योगेश दासर की 'उकमुकर पोवाली', 'कलपदुयार मृत्यु', 'पृथिवीर असुर' प्रभृति कहानियों में यथार्थवादी मानवीय भावबोध का दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त नीलिमा शर्मा, अनुपमा बरगोहाई, यतीन बरा, चंद्रप्रकाश शइकीया, रूनू बरुआ, होमेन बरगोहाई, कुमुद गोस्वामी, चित्रलता फूकन, यदु बरपुजारी, जमीरूद्दीन अहमद, रिजु हजारिका प्रभृति कथाकारों की कहानियों में मानवीय भावबोध की अभिव्यक्ति बड़े ही सहज व प्रभावपूर्ण ढंग से हुई है। इस युग के यर्थाथवादी कथाकारों में शीलभद्र का नाम बहुत ही चर्चित है।

हास्य और व्यंग्य का समावेश :

बात को पुरजोर ढंग से कहने और प्रभावी बनाने की दृष्टि से इस युग के कथाकारों ने अपनी कथाओं में यत्र-तत्र हास्य और व्यंग्य का बड़ा ही अच्छा समावेश किया है। कारण यह है कि राजनेताओं, मंत्रियों, विधायकों, शोषकों आदि के चरित्रों पर हास्य और व्यंग्य की भाषा ही अधिक प्रभावी हो सकती है। इस युग के चर्चित कथाकार सौरभ कुमार चालिहा ने राजनीतिज्ञों की संवेदनाशीलता, चरित्रहीनता आदि जैसे दुर्गुणों पर व्यंग्य द्वारा प्रखर प्रहार किया है। इस श्रेणी में कुमुद गोस्वामी की कथाओं का भी उल्लेख किया जा सकता है। 'असत्य', 'आमार आशार', 'आच्छे इतिहास' जैसी कहानियों के द्वारा पद्‌म बरकटकी ने भी कांग्रेसी नेताओं पर अच्छा व्यंग्य किया है। हास्य और व्यंग्य के पुट से मिश्रित कथाओं में मेदिनी चौधुरी की 'इद्रिस', मइआरु', 'बाबूलाल', कुमुद गोस्वामी की 'सोलर मेकुरी', 'स्पंदन', रिजु हजारिका की 'संटालनि', 'नवौर कारणे बेचारा ककाइदेउ', 'कापुरुष आरु तारमृत्यु', और महेंद्र बरठाकुर की 'खेल', 'मोर नाम घरत', 'दोशासन बध' प्रभृति कहानियां उल्लेखनीय हैं।

वासनात्मकता :

इस युग के कथाकारों ने अपनी कहानियों में दैहिक वासना को अधिक विस्तार प्रदान किया है। सैयद अब्दुल मालिक का नाम इस दृष्टि से अग्रगण्य है, जिन्होंने अपनी 'शिखरे-शिखरे' और 'शत्रु' कहानी में दैहिक वासना का बड़ा ही वास्तविक चित्र उकेरा है। इसी प्रकार 'मानकर गोसाई', 'सलिता मामी', 'मनु और वात्सायन' जैसी कहानियों में वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य ने भी अपनी लेखनी चलाई है। इस युग की कहानियों में प्रायः कथाकारों ने यह दिखाने का प्रायः प्रयास किया है कि प्रेम का आधार मात्र आत्मिक नहीं बल्कि दैहिक वासना ही है। योगेश दास, लक्ष्मीनंदन बरा, राजेंद्र हजारिका आदि कथाकारों ने अपनी कहानियों में उक्त कथन की पुष्टि की है।

हास्य और आत्म-हत्यात्मक प्रवृत्ति :

इस प्रकार के मनोविकारात्मक प्रवृत्ति पर लेखनी चलाने वाले कथाकारों की संख्या अत्यल्प ही है तो भी असमिया कथाकारों में होमेन बरगोहाई की मनोवैज्ञानिक कहानियों में इस प्रवृत्ति का चित्रण सफलतापूर्वक किया गया है, जिसको उनकी कहानी 'अक्टोपास', 'केबब' जैसी कहानी में देखा जा सकता है। इसमें यह दर्शाया गया है कि केबब एक मानव हत्यारा है जो मनुष्य की नृशंसापूर्वक हत्या करता है और अत्यंत आनंदित होता है। इसी प्रकार की इनकी 'एपिटाफ' और 'शिकार' नामक दो और कहानियां है। अब्दुल मालिक की 'वीभत्स वेदना' तथा सौरभ कुमार चालिहा की 'भ्रमण विरति' नामक कहानियों में भी हत्या का दृश्य देखने को मिलता है।

नारी मनःस्थिति का चित्रण :

नारी मनोविज्ञान को दृष्टि में रखकर इस युग के कथाकारों ने नारी की मनःस्थिति को बड़े ही मार्मिक ढंग से उभाड़ने की कोशिश की है। इस दृष्टि से होमेन बरगोहाई की 'तिनिवाई भनी', 'पर्दा' अब्दुल मालिक की 'काठकूला' 'प्रण पोअर पिछत' मामनि रायसम गोस्वामी की 'आधार पोहररो अधिक' 'उदंग बाकस', वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य की 'ए जनी जापानी छोआली' और रोहिणी कुमार की 'अस्थिर शिखा' जैस कहानियां विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। इस प्रकार के कथाकारों में निरूपमा बरगोहाई, रोहिणी कुमार काकति, प्राणीता देवी, आरतिदास वैरागी, पद्म बरकटकी, नीलिमा शर्मा, चंद्र प्रकाश शइकिया, अनिमादत्त भराली, रत्न ओझा और स्नेही देवी का भी नाम उल्लेखनीय है।

वृद्ध मनःस्थिति का चित्रण :

असमिया कथाकारों ने वृद्ध मानसिकता पर अपनी कथाओं में बहुत कम ही चर्चा की है। तथापि बासंती दास की 'सम्राट' नामक कहानी में वृद्ध मनोविज्ञान का बड़ा ही अच्छा दृश्य प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा महेंद्रनाथ बरठाकुर की 'तहतर मॉजत मइ' सूर्य भुइयां की 'संभवा', सौरभ कुमार चालिहा की 'अशांत एलेक्ट्रन', घन हजारिका की 'निश्वास' प्रभृति कहानियों में वृद्ध मनोविज्ञान का बड़ा ही अच्छा विश्लेषण किया गया है।

बाल मानसिकता का प्रदर्शन :

यद्यपि इस प्रवृत्ति का जन्म लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ की 'मुक्ति' कहानी से ही हो जाता है किंतु आगे चलकर इस प्रवृत्ति के चित्रण का विस्तार अधिक नहीं दिखाई पड़ता। इस प्रकार की प्रवृत्ति दीपाली दत्त की 'चिन्मयीर रचनाखन', 'जन्मदिनर प्रार्थना', 'अंध वेदना' प्रभृति कहानियों में देखने को मिलती है, जिसमें उन्होंने बाल अंतरमन को प्रदर्शित करने का सफलतापूर्वक प्रयास किया है। इसी प्रकार रुद्रप्रसाद काकति ने भी अपनी 'प्लेटफार्म' कहानी में बाल मन की दशा पर प्रकाश डाला है। 'ए' जन पितृर स्वीकारोक्ति', 'देउका भगा सराइ', जैसी कहानियों में दीपाली दत्त ने बालिका के मानसिक अंतर्द्वंद्व को मनोवैज्ञानिक स्तर पर दिखाने का बड़ा ही अच्छा प्रयास किया है।

विकृत मानसिकता :

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यबोध में अधिकाधिक गिरावट आई, जिसका दुष्प्रभाव शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्ग के लोगों पर पड़ा। लोगों को भ्रमित करने की दृष्टि से समाज के एक वर्ग ने सुंदर युवतियों के अश्लील चित्रों को जहां-जहां दिखाया और सिनेमा, रेडियों, थियेटर, साहित्य प्रभृति ने भी उसका वर्णन किया। परिणामस्वरूप सामान्य जन का

रूचि-बोध निम्न स्तरीय हो गया है। इस प्रकार के कार्य में पूंजीपतियों का हाथ था जो समाज में अपसंस्कृति को बढ़ावा देने में लगे हुए थे। सौरभ कुमार चालिहा ने इसका चित्रण अपनी कहानियों में किया है। 'वीभत्स वेदना' नामक कहानी में अब्दुल मालिक ने भी इस प्रकार की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। रत्न ओझा की 'शापमोचन' कहानी में भी यह स्थिति पाई जाती है। नीलिमा शर्मा की कहानी 'ओरनी नालागे गुसाव' में कावेरी नामवाली स्त्री की मानसिक रुग्णता का बड़ा ही सजीव चित्रांकन किया गया है।

अज्ञानी चरित्रों की मानसिकता :

प्रायः व्यक्ति अपनी बुरी प्रवृत्तियों को गोपनीय रखने का प्रयास करता है। साहित्यकार व्यक्ति की इस सहज प्रवृत्ति का प्रकाशन अपनी रचना के माध्यम से करता है। इस प्रवृत्ति को दर्शाने वाली कतिपय असमिया कथाएं हैं। रोहिणी कुमार काकति कृत 'सेइसूरे' नामक कहानी को इस दृष्टि से देखा जा सकता है। अब्दुल मालिक, दीपाली दत्त, रूनू बरूआ प्रभृति कथाकार भी इसी श्रेणी में आते हैं। प्रेम-प्रसंग के दृश्यांकन में प्रणीता देवी की 'अग्निकोपा', घन हजारिका की 'आत्म प्रकाश', 'निश्वास', 'सुरूंदा' और होमेन बरगोहाई की 'धुमुहा', आनंदर उत्स' 'भय शून्यता' जैसी कहानियों को भी देखा जा सकता है। इस सबके अलावा नगेन शइकीया, कुमुद गोस्वामी, महेंद्र बरठाकुर आदि ने भी अपनी कहानियों में इस प्रवृत्ति का उद्घाटन किया है।

इस प्रकार हम देखते है कि इस तीन दशक की कथाओं में कथाकारों ने समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों को अपने पात्रों के माध्यम से बड़े ही उत्कृष्ट एवं सफल ढंग से उजागर किया है। ●

भूदान की ज्ञान-मीमांसा

मिथिलेश कुमार

आचार्य विनोबा भावे केवल राजनीति ही नहीं, किसी भी प्रकार के प्रचार-प्रसार से सदा दूर रहे। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने आपको भारत की गहमागहमी से भी सर्वथा पृथक कर लिया था। यहां तक की समाचार पत्रों को भी पढ़ना छोड़ दिया था परंतु क्या इन सब बातों से उनका महत्व कम होता है? बीसवीं शताब्दी के महानतम व्यक्तियों म. उनका नाम इसलिए लिखा जाता है कि उन्होंने जो कुछ इस देश की जनता के लिए किया, वह अब तक सर्वथा अछूता पड़ा था। उनके कार्य का महत्व इस बात से ही लगाया जा सकता है कि यह विशाल देश कृषि-प्रधान देश है परंतु देश के असंख्य गांवों म. रहने वाले अर्धनग्न किसानों म. से अधिकांश के पास खेती के लिए एक गज जमीन का टुकड़ा भी नहीं था। विनोबा का ध्यान सबसे पहले इसी और गया और वे देश के बड़े-बड़े जमीदारों से उन गरीब किसानों के लिए भूमि का दान मांगने निकाल पड़े, जिसे भूदान आंदोलन का नाम दिया गया। उन्होंने हजारों एकड़ भूमि दान म. लेकर भूमिहीन किसानों म. बांट दी और स्वयं अपने लिए फूस की एक झोपड़ी भी नहीं बनाई और सारी आयु एक आश्रम म. बिता दी।

गुन्नार मिर्डल ने कहा था कि दक्षिण एशिया के दीर्घकालीन आर्थिक विकास की लड़ाई खेती म. जीती या हारी जाएगी। भारत के लिए भी यह सच था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे प्रमुख समस्या भूमि को लेकर थी। देश अन्न के मामले म. स्वावलंबी नहीं था। जमीन-मालिकी की विषम रचना से न सिर्फ पैदावार पर प्रतिकूल असर पड़ रहा था, बल्कि उससे शोषण भी जारी रहता था इसलिए जमीन का पुनर्वितरण निहायत जरूरी था। इसके तीन तरीके थे-

1. भू-स्वामियों से जबर्दस्ती जमीन छीन लिया जाए लेकिन यह तरीका न ही उचित था और न ही व्यावहारिक।

2. सरकार कानून बनाकर इस समस्या का समाधान करे लेकिन इसम. भी काफी दिक्कत. थी। संविधान म. संपत्ति का अधिकार मूल अधिकार था।

3. जमीन मालिक खुशी से अपनी जमीन का एक हिस्सा भूमिहीनों को दे द.। जमीन मालिक द्वारा अपनी मर्जी से जमीन दान (देने) की प्रक्रिया 'भूदान' थी।

भूदान से न्यायोचित विवरण का एक नया तरीका सामने आया था। यह तरीका भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अनुकूल था। इसम. मूल्य-परिवर्तन की असीम संभावनाएं थी। विनोबा ने इसी सूत्र के आधार पर भूदान को भूदान आंदोलन का एक रूप दिया।

यहां विनोबा ने भूदान म. 'दान' शब्द का प्रयोग किया है, लेकिन उस शब्द का रूढ़ार्थ उनके मन म. बिलकुल नहीं था। वे गरीबों का हक जताते हुए जमीन मांगते थे। उनका कहना था कि 'जैसे हर एक को हवा चाहिए, पानी चाहिए, वैसे ही जमीन चाहिए क्योंकि जमीन भी जिंदा रहने का आधार है।'

भूदान के लिए विनोबा 'यज्ञ' शब्द का भी प्रयोग करते है। 'यज्ञ' शब्द के आशय को स्पष्ट करते हुए विनोबा कहते हैं कि जिस काम म. सब लोगों का सहयोग प्राप्त होता है, उसी को यज्ञ कहते हैं। जब देश पर कोई संकट आता है तो यज्ञ किया जाता है। अपने देश पर आज संकट मौजूद है। मजदूर और मालिक का भेद है, करोड़ों लोगों के पास कोई साधन नहीं है, हरिजन और दूसरों म. छुआछूत पड़ी है। अनेक धर्म भेद के झगड़े भी मौजूद है। ऐसी हालत म. देश को बचाने के लिए जब कोई यज्ञ शुरू होता है, तो अगर उसे कोई अकेला ही करेगा तो उससे कुछ नहीं होगा।

इसलिए जब कोई सार्वजनिक यज्ञ किया जाता है तो इसम. हर एक को भाग लेना पड़ता है। इस भूमिदान यज्ञ म. भी हर एक को दान देना चाहिए। एक अन्य जगह भूदान यज्ञ को स्पष्ट करते हुए विनोबा कहते हैं कि वाणी का उपयोग गांव म. एकता स्थापित करने म., एक-दूसरे के दिल जोड़ने म., अज्ञानी को ज्ञान देने म., बच्चे को पढ़ने म. किया जाए इसका नाम है भूदान यज्ञ। हाथ का उपयोग परिश्रम म., पड़ोसी की मदत करेने म., गांव की भलाई करने म., जिनको जरूरत है उनको हाथों से भर-भरकर देने म. कर., इसका नाम है भूदान यज्ञ। कान का उपयोग सर्वोदय की बात सुनने म., ग्राम चर्चा म. अपना ज्ञान और दूसरों का ज्ञान बढ़ाने म. कर., इसका नाम है भूदान यज्ञ। हम सब लोग पढ़ना-लिखना सीख., इसका नाम है भूदान यज्ञ। गांव म. झगड़े न हो और कुछ मूरखों म. झगड़े हों तो उसका फैसला गांव के सज्जन कर., इसका नाम है भूदान यज्ञ। इस प्रकार गांव को परिवार समझा जाए इसका नाम है भूदान यज्ञ।

भूदान आंदोलन कोई पूर्वनिर्धारित, सुनियोजित, परियोजनाबद्ध कार्यक्रम नहीं था बल्कि काम के साथ विचार बढ़ता गया। इसकी शुरुआत आंध्रप्रदेश के 'पौचमपल्ली' गांव से हुई और देखते ही देखते संपूर्ण भारत म. एक हलचल पैदा कर दी। भूदान का लोगों ने दिल खोलकर स्वागत किया। पहले साल म. ही 1,00,000 (एक लाख) एकड़ जमीन भूदान के लिए प्राप्त हो गई। यहां इस बात को समझ लेना आवश्यक है कि भूदान के माध्यम से सिर्फ जमीन बटोरना या गरीबों को जमीन देना, इतना ही विनोबा का मकसद नहीं था। वे चाहते थे कि जमीन मालिक विचार को समझकर, प्रेमपूर्वक जमीन दान द.। उनको (विनोबा को) जब कभी शंका आई कि दान म. राजस या तमस भाव है, वहां उन्होंने दान नहीं लिया। सात्विक दान, विचारपूर्वक दिया हुआ दान ही उन्ह. अभीष्ट था। उनका कहना था कि हमारे तीन सूत्र हैं :

1. हमारा विचार समझने पर अगर कोई नहीं देता, तो उससे हम दुखी नहीं होते क्योंकि हम मानते हैं कि जो आज नहीं देता वह कल देगा, विचार बीज उगे बगैर नहीं रहता।

2. हमारा विचार समझकर अगर कोई देता है, तो उससे हम. आनंद होता है क्योंकि उससे सब और सद्‌भावना पैदा होती है।

3. हमारा विचार समझे बगैर किसी दबाव के कारण कोई देगा तो उससे हम. दुःख होगा। हम. किसी तरह जमीन बटोरना नहीं है, बल्कि साम्ययोग और सर्वोदय की वृत्ति निर्माण करनी है।

इस प्रकार भूदान यज्ञ विनोबा के लिए अलग किस्म की चीज थी। भूमि समस्या का हल विनोबा के लिए भूदान का केवल एक बाय-प्रॉडक्ट, एक सहज प्राप्त परिणाम और प्राथमिक परिणाम था। इससे दुनिया को नया रास्ता मिल रहा है, अहिंसा को विकसित करने की कुंजी हाथ लगी है, यह बात विनोबा के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण थी। भूदान-ग्रामदान के रहस्य को समझते हुए विनोबा ने लिखा है कि- 'जो लोग भूदान-ग्रामदान की तरफ भूमि समस्या के हल की दृष्टि से देखते हैं, वे उसकी महिमा ही नहीं जानते। उन्ह. लगता है यह भूमि समस्या के निराकरष के लिए है लेकिन वह तो एक तरीका मात्र है हम मूर्ति को गणेश मूर्ति बनाते हैं, उसमे मिट्टी प्रतीक होती है और गणेश अधिष्ठात्री देवता होता है। भूमि समस्या एक प्रतीक है और हम. अमूर्त की सेवा करनी है। यह धर्म-संस्थापना का कार्य चल रहा है। अभी तक धर्म स्थापना के अनेक प्रयोग हुए, लेकिन उनसे धरण-संस्थापना हो नहीं पाई।'

विनोबा भूदान द्वारा समग्र परिवर्तन चाहते थे। उन्होंने एक जगह लिखा है आखिर यह सब मैं ही क्यों कर रहा हूं? मेरा उद्देश्य क्या है? स्पष्ट है की मैं परिवर्तना चाहता हूं। प्रथम हृदय परिवर्तन, फिर जीवन परिवर्तन और बाद म. समाज रचना म. परिवर्तन लाना चाहता हूं। इस तरह का त्रिविध परिवर्तन, तिहरा इंकलाब मेरे मन म. है।

यही कारण है की विनोबा भूदान-यज्ञ को एक किस्म का सत्याग्रह ही मानते थे। सत्याग्रह म. कष्ट-सहनकर, नैतिक शक्ति से, नैतिक दबाव से प्रतिपक्षी की हृदय-ग्रंथियां खोली जाती है, उसे सोचने के लिए मजबूर किया जाता है। सत्य ग्रहण के लिए उसे समक्ष बनाया जाता है जिससे उसके साथ संयुक्त रूप से सत्या की खोज की जा सके। विनोबा के शब्दों म. 'हम समझते हैं की भूदान-यज्ञ का कार्य एक अर्थ म. सत्याग्रह ही है। हम लगातार जाड़े म., बारिश म. और गर्मी म., हर हाल म. घूमते हैं और निरंतर लोगों को समझते रहते हैं। दरिद्र लोगों से भी दान लेते है आखिर क्यों? क्योंकि हम सत्याग्रह की ताकत खड़ी करना चाहते हैं। जब छोटे लोग द.गे, तभी यह सिद्ध होगा कि मालिकी गलत है फिर बड़े लोगों पर नैतिक दबाव आएगा और फिर उनके हृदय म. प्रवेश होगा। नैतिक दबाव सत्याग्रह का ही एक अंग है। जब हजारों गरीब दान देते हैं, तो वह भी एक किस्म का सत्याग्रह ही होता है। सत्याग्रह यानी सत्य पर चलना। उसमे शक्ति पैदा होती है जो असत्य पर चलते हैं, उन पर उसका परिणाम होता है।'

विनोबा भावे एक बार आंध्र प्रदेश के एक गांव म. हरिजनों की स्थिति देखने गए। वहां के हरिजन नक्सलवादी उग्रपंथियों के अत्याचारों के शिकार थे। हरिजनों ने विनोबाजी से प्रार्थना की कि उन्ह. अस्सी एकड़ के करीब भूमि प्रदान की जाए जिससे वे अपने परिवारों को रोटी दे सक.। विनोबाजी ने शाम की प्रार्थना सभा म. यह बात गांव के लोगों के सामने रखी। उनकी बात का इतना प्रभाव पड़ा की एक समृद्ध किसान ने तुरंत उठकर अस्सी एकड़ की बजाय सौ एकड़ जमीन विनोबा को भ.ट कर दी। बस, यहीं से भूदान आंदोलन प्रारंभ हुआ। उन्होंने उसके बाद तेलंगाना म. पदयात्रा करके हजारों एकड़ जमीन दान म. प्राप्त की और हरिजनों तथा निर्धन किसानों को इस भूमि के पत्ते दिलवाए।

अभी भूदान अपनी शैशव अवस्था म. ही था कि एक अद्‌भुत घटना घटी। उत्तर-प्रदेश के मंगरौह गांव के सभी जमीन-मालिकों ने अपनी जमीन भूदान-यज्ञ म. समर्पित कर दी और देश का पहला ग्रामदान बनाने का गौरव अर्जित किया। इस तरह भूदान ने अपनी स्थिति को मजबूत किया ही साथ

ही दूसरे चरण, ग्रामदान म. प्रवेश कर गया।

भूदान की तरह ग्रामदान भी कोई पूर्वनिर्धारित, सुनियोजित एवं परियोजन बद्ध कार्यक्रम नहीं था। ग्रामदान का अर्थ था गांव के जमीन-मालिकों द्वारा अपनी सब जमीन का दान और फिर उसका सम-वितरण। ग्रामदान के अर्थ को स्पष्ट करते हुए विनोबा कहते है कि 'ग्रामदान का विकसित अर्थ है कि जिसके पास जो हो, वह उसे ग्राम को समर्पित करे नहीं तो यह होगा की कुछ लोगों का धर्म देने का है और कुछ का धर्म लेने का। ऐसा नहीं हो सकता। धर्म वही है, जो सबको लागू होता है ग्रामदान का विचार इस तरह परिपूर्ण है।' यहां यह बात गौर करने की है कि 'ग्रामदान का अर्थ गांव का दान नहीं, गांव के लिए दान है।

भूदान के शुरुआती काल म. विनोबा कहते थे 'हमारे गांव म. भूमिहीन कोई नहीं रहेगा।' ग्रामदान के समय विनोबा कहने लगे- 'हमारे गांव म. भूमि-मालिक कोई नहीं रहेगा।'

ग्रामदान के माध्यम से विनोबा को ग्राम-स्वराज का एक रास्ता मिला। इसम. उन्ह. ट्रस्टीशिप का वास्तविक स्वरूप दिखा, इसलिए विनोबा ने ग्रामदान की पुरजोर मांग की तथा सभी जमीन-मालिकों को अपनी सारी मिलकीयत दान करने को कहा। इसी क्रम म. एक महत्वपूर्ण घटना तब घटी, जब 1954 के बौद्धगया सम्मेलन म. जयप्रकाश ने ग्रामदान के लिए जीवन दान देने की बात की।

यद्यपि ग्रामदान की कल्पना उत्कृष्ट थी लेकिन वह लोगों से शायद बहुत ज्यादा मांगती थी। गांव की जमीन बेची नहीं जा सकती थी, न रेहन रखी जा सकती थी। इससे शादी-ब्याह आदि मौकों पर कर्ज मिलने म. दिक्कत आती थी। यही कारण था कि ग्रामदान की संकल्पना अपना व्यापक आधार तैयार नहीं कर सकी। यहां एक बात और गौतलब है कि जमीन मालिकों के संस्कार म. दान का भाव था लेकिन समानता का भाव संस्कार म. नहीं था। मिल्कियत का जो एक भाव मन म. होता है वह इस बात की इजाजत नहीं देता कि सामने वाले को भी समान ओहदा प्राप्त हो जाए। यह भी एक कारण था कि ग्रामदान को अपेक्षित सफलता नहीं मिली इसलिए ऐसे रास्ते की तलाश की गई जो ग्रामदान और वास्तविक स्थिति के बीच म. एक मध्यम-मार्ग का कार्य कर सके और इसी क्रम म. यह आंदोलन अपने तीसरे चरण म. 'सुलभ ग्रामदान' का रूप धारण किया। सुलभ ग्रामदान की निम्न विशेषताएं थी-

1. जमीन के मालिक अपनी जमीन का 20 वां हिस्सा गांव के भूमिहीनों को दान म. देगा।
2. जमीन की मालिकी ग्राम सभा की थी।
3. ग्राम सभा के अनुमति के बिना न तो जमीन बेची जाएगी और न ही रेहन रखी जाएगी।
4. गांव के विकास के लिए एक ग्राम कोश बनेगा। ग्राम कोश के लिए किसान उपज म. प्रतिमान एक सेर अनाज और दूसरे उद्योग-धंधे तथा नौकरी-नजदूरी आदि म. लगे लोग आय का 30 वां हिस्सा प्रतिवर्ष प्रदान कर.गे।
5. ग्राम सभा म. सभी वयस्क लोग सम्मिलित होंगे। यह अपना काम सर्वसम्मति से करेगी।
6. 'ग्रामदान-घोषणा पत्र पर गांव के 75% भूस्वामी का हस्ताक्षर हो।
7. गांव की कुल भूमि का 51% भी अगर दान मिल जाता है तो उसे सुष्म-ग्रामदान मान लिया जाएगा।
8. सुलभ ग्रामदान के लिए आवश्यक था कि गांव के कुछ परिवारों म. से 75% परिवार ग्रामदान

म. शामिल हो।

सुलभ ग्रामदान के आविर्भाव से कार्यकर्ताओं का उत्साह बढ़ा। कई लोगों ने इसे समझौता माना लेकिन विनोबा के लिए यह समझौता नहीं था, यह एक सोची समझी राजनीति थी। विनोबा के अनुसार- 'जो प्रक्रिया कुछ लोगों के साथ जाकर कुछ समय बाद कुंठित हो जाती है, वह क्रांति की प्रक्रिया है या जो प्रक्रिया करोड़ों लोगों तक फैल सकती है, वह क्रांति की प्रक्रिया है। हमें समझना चाहिए कि जिस प्रक्रिया म. फैलने की अधिक शक्ति भरी है, वह क्रांति की दृष्टि से अधिक ग्राह्य प्रक्रिया है।'

इसके बावजूद भूदान-ग्रामदान-सुलभ ग्रामदान के मार्ग म. कई कठिनाइयां थीं जैसे-विनोबा के प्रभाव म. आकार लोग संकल्प पत्र भर देते थे, लेकिन कानूनी कार्यवाही से समय मुकर जाते थे। यदि कानूनी कार्यवाही के समय भी हामी भर देते थे तो वास्तविक कब्जे के दौरान अपने वायदे से पीछे हट जाते थे। कभी-कभी तो यह प्रक्रिया हिंसक रूप धारण कर लेती थी जैसे बिहार के मुरहरी गांव म. हुआ नक्सलवादी आंदोलन।

इस तरह एक बहुत अच्छी संकल्पना मंजिल पाए बगैर ही डैम तोड़ने लगी। 1974 तक आते-आते यह आंदोलन शिथिल हो गया तथा इसे भाग्य के भरोसे छोड़ दिया गया।

आंदोलन का परिणाम

विनोबा कहते थे कि मेरे लिए यह आंदोलन भी एक सत्याग्रह है जिसका उद्देश्य समाज म. करुणा की भावना का संचार करना तथा उसके मध्यम से वास्तविक स्वराज की स्थापना करना था। इसमें राजनीति की जगह लोकनीति, असमानता की जगह समानता, अन्य के जगह न्याय शामिल करने की बात है। विनोबा का मानना था कि ज्यों-ज्यों यह आंदोलन आगे बढ़ेगा त्यों-त्यों लोगों म. इन भावनाओं का संचार होगा। इस प्रकार विनोबा भूदान-ग्रामदान-सुलभ ग्रामदान आंदोलन के माध्यम से ग्रामोद्योगपरक, अहिंसात्मक समाज की स्थापना करना चाहते थे। यह उद्देश्य पूरा हुआ कि नहीं, यह आंदोलन किस हद तक सफल हुआ। इन कारणों की जांच जरूरी है।

सफल किस हद तक

इस आंदोलन ने बहुत सी सफलताएं प्राप्त की हैं।

1. आंदोलन ने बहुत से लोगों के मन को बदला।

2. इस आंदोलन के मध्यम से बहुत सी जमीन प्राप्त हुई जो किसी भी सरकारी प्रयत्न की तुलना म. काफी है।

3. इस आंदोलन म. कुल 49 लाख एकड़ जमीन दान म. प्राप्त हुई। इसम. 42 लाख एकड़ जमीन पर कब्जा हो सका जिसम. 25 लाख एकड़ भूमि भूमिहीनों को बांटी गई।

4. ग्राम स्वराज की दिशा म. इस आंदोलन म. बहुत ही सराहनीय प्रयास किए गए।

भूदान ग्रामदान आंदोलन कितना सफल हुआ यह दिशा म. दो महत्वपूर्ण शोध हुए हैं। एक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के प्रो. टी. के. उनैन ने राजस्थान को केस स्टडी बनाकर अध्ययन किया है तथा दूसरा अनुग्रह नारायण संस्थान, पटना के प्रो. एच. प्रसाद ने 'मुशहरी के संबंध म. शोध कर इस बात का पता लगाने का प्रयास किया है कि यह आंदोलन कि हद तक सफल रहा।

प्रो. टी. के. उनैन ने जो शोध किया है उसके लिए उन्होंने कुछ संकेतकों (indicators) का

चुनाव किया है। यह संकेतक व्यक्तिनिष्ठ (subjective) न होकर वस्तुनिष्ठ (objective) संकेतक हैं जैसे-

1. इस आंदोलन के कारण आर्थिक संबंधों म. परिवर्तन हुआ अथवा नहीं?

2. इससे शासन और राजनीति के संबंधों म. परिवर्तन हुआ अथवा नहीं?

3. इसके द्वारा स्थानीय नेतृत्व की गुणवत्ता बदली अथवा नहीं?

4. आंदोलन ने अहिंसात्मक समाज रचना के लिए लोगों की मानवीयता बदली अथवा नहीं?

इस अध्ययन के लिए प्रो. उनैन ने राजस्थान के 4 ग्रामदानों एवं 3 गैर-ग्रामदानी गांव का चयन किया। उनके निष्कर्ष निम्न थे-

1. आर्थिक संबंधों म. परिवर्तन को लेकर प्रो. उनैन ने अपने शोध के दौरान पाया कि भूमि को लेकर मिलकीयत की अवधारणा ये कोई परिवर्तन नहीं आया है। प्रो. उनैन के अपने अध्ययन के दौरान यह भी पाया कि ग्रामदानी गांव म. भूमि का वितरण समान नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त दान म. मिली अधिकांश भूमि घटिया किस्म की थी या विवादास्पद थी।

इस प्रकार प्रो उनैन का निष्कर्ष था कि-

1. ग्रामदानी गांव म. भी व्यक्तिगत मिलकीयत का भाव मिटा नहीं।

2. सामूहिक मिलकीयत का भाव क्रियान्वित नहीं हुआ।

3. कृषि संबंधों के सामंती ढांचे म. कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

इस तरह आर्थिक परिवर्तन की दृष्टि से यह आंदोलन असफल रहा।

1. शासन और राजनीति के संबंधों म. परिवर्तन को लेकर प्रो. उनैन ने अपने शोध के दौरान यह भी पाया कि participatory democracy का चलन नहीं हुआ है तथा ग्रामदानी गांव म. अब भी निर्णय प्रक्रिया म. अल्पवर्ग का ही प्रभुत्व कायम है। इस प्रकार शक्ति या केंद्रीकरण यहां भी हुआ है। विनोबा भूदान ग्रामदान के मध्यम से जो परिवर्तन लाना चाहते थे यानी राजनीति की जगह लोकनीति वैसा संभव नहीं हो सका।

इस प्रकार प्रो. उनैन का यह निष्कर्ष था कि शासन और राजनीति के संबंधों म. परिवर्तन को लेकर भी यह आंदोलन असफल रहा।

2. स्थानीय नेतृत्व की गुणवत्ता को लेकर प्रो. उनैन के अध्ययन का तीसरा आधार यह था कि इस आंदोलन ने स्थानीय नेतृत्व की गुणवत्ता म. परिवर्तन किया है अथवा नहीं। अपने शोध के दौरान प्रो. उनैन ने पाया कि इस क्षेत्र म. मिश्रित सफलता हाथ लगी है। गुणात्मक (चारित्रिक श्रेष्ठता) दृष्टि से ग्रामदानी गांव के लोगों म. सामान्य गांव की अपेक्षा चारित्रिक श्रेष्ठता पायी गई लेकिन इन नेताओं का दृष्टिकोण बहुत परंपरागत था और ये लोग कुछ भी नया करने के पक्षधर नहीं थे। इस प्रकार स्थानीय नेतृत्व यथास्थिति का पोषक था जिस पर प्रो. उनैन का यह निष्कर्ष था कि स्थानीय नेतृत्व म. जो क्रांतिकारी परिवर्तन की आशा थी उस दृष्टिकोण से भी यह आंदोलन असफल रहा।

3. मूल्य चेतना म. परिवर्तन को लेकर प्रो. उनैन ने मूल्य चेतना म. परिवर्तन को तीन स्तरों पर बांटा है।

1.सैद्धांतिक परिवर्तन 2. प्रवृत्तिगत परिवर्तन 3. व्यावहारिक परिवर्तन

अपने शोध के दौरान प्रो. उनैन ने पाया कि ग्रामदानी गांव म. व्यावहारिक परिवर्तन मूल्य चेतना

को लेकर कम दिखता है लेकिन सैद्धांतिक एवं प्रवृत्तिगत परिवर्तन स्पष्ट दिखते हैं जैसे-

(अ) जाति प्रथा गैर ग्रामदानी गांव के 36.44% लोग जाति प्रथा को खराब मानते हैं जबकि ग्रामदानी गांव के 61.84% जाति प्रथा को बुरा मानते हैं। इस प्रकार जाति को लेकर प्रवृत्तिगत परिवर्तन दिखते हैं इसी तरह।

(ब) व्यक्ति की हैसियत जन्म के आधार पर या दूसरे आधार पर- इस विषय म. भी ग्रामदानी लोग ज्यादा अच्छे दिखते हैं। गैर ग्रामदानी लोग जन्म को व्यक्ति की हैसियत का आधार मानते हैं जबकि ग्रामदानी लोग क्रम को हैसियत का आधार मानते हैं।

इस प्रकार प्रो. उनैन का यह निष्कर्ष है कि ग्रामदानी लोगों म. मूल्य चेतना म. परिवर्तन दिखाता है एवं इस आधार पर यह आंदोलन सफल रहा है।

प्रो. उनैन के अतिरिक्त के एच. प्रसाद ने भी मुशहरी के संबंध म. शोध किया है उनके निष्कर्ष निम्नलिखित है-

1. शक्ति संतुलन मुख्यत अल्पसंख्यक वर्ग की ओर ही झुका रहा।

2. इससे सिर्फ मालिक ही और मजबूत हुए क्योंकि कमजोर वर्ग के मन म. यह बात घर कर गई कि मेरी स्थिति म. परिवर्तन सिर्फ मालिकों की कृपा से ही हो सकता है। इस प्रकार मालिक मुक्तिदाता माने जाने लगे।

इस प्रकार प्रो. उनैन एवं एच. प्रसाद के शोधों के आधार पर हम कह सकते हैं कि कि भूदान-ग्रामदान आंदोलन अपने तत्कालीन लक्ष्य से असफल रहा। विचार के स्तर पर यह कितना भी सुगठित एवं सफल दिखता हो, यह आंदोलन अपने तत्कालिक उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सका इसलिए अब हम इस बात पर चर्चा कर. कि आखिर क्यों यह आंदोलन सफल हो गया।

असफलता के कारण

गणेश मंत्री ने कहा है कि किसी भी आंदोलन की सफलता के लिए और अनिवार्यता का मेल होना चाहिए अर्थात किसी वास्तविक ध्येय का होना एवं परिस्थितिगत अनिवार्यता, किसी भी आंदोलन की सफलता के लिए अनिवार्य तत्व माने जाते हैं। विनोबा के आंदोलन म. इसकी कमी दिखती है। वैचारिक दृष्टि से यह आंदोलन सही था किंतु परिस्थितिगत अनिवार्यता का तत्व इसम. समाहित नहीं था। इसका प्रमाण यह है कि भूदान-ग्रामदान के लिए जो अस्त्र (तरीके) अपनाए गए, वह पर्याप्त नहीं थे। लोकशिक्षण, हृदय परिवर्तन, प्रेम करूणा आदि के अलावा और कोई उपाय इसम. नहीं अपनाए गए। जैसा कि लोहिया ने कहा कि-'साम्यवाद घृणा का सिद्धांत है किंतु सर्वोदय प्रेम का अपर्याप्त सिद्धांत है।'

किसी भी आंदोलन म. प्रेम और सात्विक रोष का मेल होना चाहिए। भूदान-ग्रामदान आंदोलन म. इसका अभाव था इसलिए यह आंदोलन असफल हो गया।

बसंत नालवोकर का कहना है कि- इस आंदोलन म. प्रत्यक्ष क्रिया के लिए कोई स्थान नहीं था। इसम. देने वाले को उच्चतर भूमि पर पहुंचा दिया जाता था जबकि लेने वाले म. ही भाव आ जाता था क्योंकि कि इसम. पाने वाले के आत्मा-सम्मान का स्थान नहीं था तथा सब कुछ मालिक की कृपा पर दिखाता था। इस कारण यह आंदोलन असफल हो गया।

इस आंदोलन की असफलता का एक कारण यह भी है कि सैद्धांतिक रूप से क्योंकि यह सिर्फ

समझाने-बुझाने पर आधारित था इसलिए वे सामाजिक संबंध नहीं बन सके जो बनाने चाहिए थे। खुद विनोबा स्वीकार करते हैं कि- 'मैं यह समझता था कि भूदान-ग्रामदान से सभी प्रकार के भेद समाप्त हो जाएंगे लेकिन इन भेड़ों ने ही ग्रामदान-भूदान को तोड़ दिया।'

एक और कारण जो इस आंदोलन की असफलता के लिए माना जाता है वह यह है कि इसने शासन (सरकार) का सहयोग प्राप्त किया। ऐसा कदापि संभव नहीं है कि एक तरफ शासन के साथ सहकार किया जाए तथा दूसरी ओर नीतियों का विरोध किया जाए। कहा भी गया है कि- 'कोई भी क्रांति शासन के कंधों पर चढ़कर नहीं लड़ी जा सकती।' इसका यह कारण है कि शासन का चरित्र दोहरा होता है। वह किसी का भी सहयोग अपने फायदे के लिए करता है। और ऐसे म. जनता म. बहुत ही गलत संदेश जाता है। विनोबा ने भी बाद म. स्वीकार किया कि 'हमने भोलेपन म. राज्य पर विश्वास कर लिया कि लोकतांत्रिक राज्य को स्वयं से भी जन का अनुकरण करना पड़ेगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ।'

भूदान-ग्रामदान आंदोलन की असफलता का एक कारण यह भी था कि इसका कानूनी पक्ष काफी कमजोर था। राज्य द्वारा बनाए गए कानून अपर्याप्त थे। ग्रामदान कानून कुछ राज्यों म. बने लेकिन वे तब बने जब ग्रामदान आंदोलन उतार पर था। वे कानून खुले दिल से गांवों को स्वशासन देना जरूरी मानकर समझ-बूझकर नहीं बनाए गए थे इसलिए उनका उतना फायदा नहीं उठाया जा सका। हाईकोर्ट के पूर्वा मुख्य न्यायाधीश गजेंद्र गड़कर ने भी कहा कि 'इस आंदोलन ने बहुत अच्छा वातावरण बना दिया है लेकिन राज्य को जो करना चाहिए था उसने वह नहीं किया।'

भूदान-ग्रामदान आंदोलन की असफलता का एक कारण यह भी था कि इसको कोई पृष्ठपोषण (बैंकिंग) नहीं मिला। किसी आंदोलन को चलाने के लिए शिक्षण, प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है वह नहीं की गई। कार्यकर्ताओं का भी वैसा प्रशिक्षण नहीं हुआ था। यह कहना गलत होगा कि कार्यकर्ताओं म. निष्ठा का अभाव था। अभाव स्वयं विचार करने का था और वह बौद्धिक तैयारी नहीं थी, जिसकी आवश्यकता थी।

एक और कारण जो इसकी असफलता का गिनाया जाता है कि इस आंदोलन ने वैकल्पिक विकास की कोई स्पष्ट अवधारणा प्रस्तुत नहीं की। मसलन इस आंदोलन ने केंद्रीकरण, औद्योगीकरण का विरोध किया, लेकिन इसके विकल्प म. क्या करना है इस पर पर्याप्त विचार नहीं किया।

ग्रामदान आंदोलन ने शहरों की उपेक्षा की, यह भी एक कमी मानी गई। अन्ना साहब सहस्त्रबुद्धे ने कहा कि 'ग्रामदान आंदोलन समस्तः ग्रामों के लिए था। नगर इसकी परिधि के बाहर थे। किसी क्रांति म. सार्वधिक प्रभावकारिता होनी चाहिए। अतः ग्रामदान स्वभावतः एक एकांकी आंदोलन रहा। मैं दृढ़तापूर्वक कहूंगा कि यदि हर गांव ग्रामदान की घोषणा कर द. तो भी भूमिक्रांति कामयाब न होगी।' यह आंकलन सही है क्योंकि भारत गांवों म. बसता है। एक Romantic आग्रह है। आज क.द्र शहर हो गए हैं इसलिए शहरों की उपेक्षा ठीक नहीं थी। कोई भी आंदोलन समाज के सभी अंगों को छूए बिना सफल हो ही नहीं सकता। भूदान-ग्रामदान ने ऐसा नहीं किया इसलिए यह असफल हो गया।

प्रसार माध्यमों (मीडिया) ने इस आंदोलन की अनदेखी की। यह भी असफलता का एक कारण माना गया। दरअसल, प्रसार माध्यमों के लिए समाचार मूल्य उसी का होता है, भड़कीला हो,

सनसनीखेज हो। चूंकि भूदान-ग्रामदान की शांत क्रांति म. वैसा कुछ नहीं था इसलिए मीडिया ने इसकी उपेक्षा की। इसके अतिरिक्त यह आंदोलन बुद्धिजीवियों की भी उपेक्षा का शिकार बना। बुद्धिजीवियों की अनास्था के पीछे कई कारण थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा आधुनिक सभ्यता के मूल्यों म. हुई थी और उस सभ्यता म. उनका निहित स्वार्थ भी था। ग्रामदान उनके स्वार्थो के प्रतिकूल था, इसलिए बुद्धिजीवियों ने इसकी उपेक्षा की।

इस आंदोलन की असफलता का एक प्रमुख कारण इसकी संगठनात्मक कमजोरी है। विनोबा असामान्य प्रतिभाशाली पुरुष थे। विचार दे सकते थे, प्रेरणा दे सकते थे, लेकिन वे मूलतः आध्यात्मिक दृष्टि के थे। संगठन करने की उनकी शक्ति नहीं थी। सच्चिदानंद सिन्हा ने सही कहा है कि 'विनोबा एक मार्क्स हैं, जिन्हें भारतीय संदर्भ म. एक लेनिन की जरूरत है।' विनोबा के पास कार्यकर्ताओं की कमी नहीं थी, कमी थी तो संगठनकर्ता की। जयप्रकाशजी म. 'लोकनायक' बनाने की समता थी, 'लोकसंगठक' बनाने की नहीं। इस तरह कोई भी नेता नहीं था जो कि अपने डैम पर ठोस संगठन तैयार कर सके।

भूदान-ग्रामदान आंदोलन की असफलता का एक कारण यह भी था कि बौद्धिक स्तर पर अन्य विरोधी विचारों को कोई चुनौती नहीं मिली। एक तरफ सामंतवादी परंपरा थी, तो दूसरी तरफ आधुनिक सभ्यता का आक्रमण था, जिसके पीछे अंतरराष्ट्रीय पूंजी थी। एक तरफ मार्क्सवाद था तो दूसरी तरफ social democratic (सामाजिक जनतंत्र)। इन सब विचारों को इस आंदोलन के मार्फत से कोई ठोस जवाब नहीं दिया गया।

अंत म. यह सवाल उठता है किसी विचारधारा की सफलता-विफलता की क्या कसौटी होनी चाहिए? सर्व नारायण दास कहते है कि 'किसी क्रांतिकारी विचार और कार्यक्रम की सफलता-विफलता की पहचान इन बातों से होती है।

1. क्या मानव समाज को नवीन और वृहत्तर ध्येय प्राप्त हुआ?
2. क्या उस ध्येय की प्राप्ति के लिए मार्ग भी मिला?
3. क्या वह मार्ग उत्तरोतर सुगम और प्रशस्त होता गया?
4. क्या ध्येय कुछ करीब भी आया है?'

उनका कहना है कि भूदान यज्ञ के संदर्भ म. इन चारों का उत्तर 'हां' म. मिलता है। अतः विचार रूप म. यह आंदोलन पूर्णतः सफल रहा परिणाम कम या ज्यादा हो सकते है क्योंकि विचार कभी फेल नहीं होते हैं। वैसे परिणाम से भी (ही) किसी चीज का मूल्यांकन करना गलत होगा। मुख्य कसौटी यह चीज होनी चाहिए कि काम उचित है या अनुचित। अगर काम उचित है, तो वह अपने आप म. मूल्यवान है।

इसलिए निष्कर्ष के तौर पर हम सर्वनारायण दास के इस कथन से सहमत हैं कि- 'ऊपर से भले ही यह दिखाता हो कि भूदान-ग्रामदान आंदोलन असफल हो गया क्योंकि इसे अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए लेकिन गहराई से विचार कर. तो पाएंगे कि यह आंदोलन असफल नहीं हुआ, वरन् पूरे सफल माने जाएंगे। इसकी अभूतपूर्व ऐतिहासिक सफलता इस बात म. है कि इसने अहिंसक क्रांति को राष्ट्र की दहलीज तक ला पहुंचाया और बिना संघर्ष वा टकराव की राह गए ही क्रांति आ सकती है, यह दिखला दिया। यह अलग बात है कि इस क्रांति के स्वागत की तैयारी न तो राष्ट्रनेताओं

ने की, न तो बुद्धिमान माने जाने वाले वर्ग की और न कुल मिलकर देश की जनता ने की। आज जो दृश्य प्रस्तुत हैं वे उस क्रांतिदेवी की दहलीज पर से वापस लौट जाने के ही परिणाम हैं।'

महात्मा गांधी के दर्शन एवं उनके विचारों को नई ऊंचाई तक पहुंचाने की दिशा म. उल्लेखनीय योगदान देने वाले विनोबा भावे उन सामाजिक विचारकों म. थे जिन्होंने राष्ट्रपिता के विकास के माडल पर काम किया और भूदान आंदोलन के जरिए जमीन के पुनर्वितरण के लिए एक नई दिशा दिखाई। विनोबा ने अपने आंदोलन को सफल बनाने के लिए पूरे भारत का पैदल ही भ्रमण किया। भूदान आंदोलन आचार्य विनोबा भावे द्वारा सन् 1951 म. आरंभ किया गया स्वैच्छिक भूमि सुधार आंदोलन था। विनोबा भावे की कोशिश थी कि भूमि का पुनर्वितरण सिर्फ सरकारी कानूनों के जरिए नहीं हो, बल्कि एक आंदोलन के माध्यम से इसकी सफल कोशिश की जाए। 20वीं सदी के पचासव. दशक म. भूदान आंदोलन को सफल बनाने के लिए विनोबा भावे ने गांधीवादी विचारों पर चलते हुए रचनात्मक कार्यों और ट्रस्टीशिप जैसे विचारों को प्रयोग म. लाया। उन्होंने सर्वोदय समाज की स्थापना की। यह रचनात्मक कार्यकर्ताओं का अखिल भारतीय संघ था। इसका उद्देश्य अहिंसात्मक तरीके से देश म. सामाजिक परिवर्तन लाना था। इस आंदोलन ने ऐसे सामाजिक वातावरण का निर्माण किया जिससे देश म. भूमि सुधार गतिविधि की शुरुआत हुई। इस आंदोलन ने बडी संख्या म. लोगों के जीवन को प्रभावित किया और इसके तहत पूरे देश म. करीब लाखों लाख एकड़ भूमि दान म. मिली जिसे जरूरतमंद भूमिहीन गरीबों म. वितरित कर दिया गया। ●

संदर्भ पुस्तक.

1. शर्मा, विश्वमित्र (2007), 20वीं सदी के 100 प्रसिद्ध भारतीय दिल्ली : राजपाल एंड संस
2. चोलकर, पराग(1997), भूदान-ग्रामदान आंदोलन : एक नजर वर्धा आचार्यकुल प्रकाशन
3. भावे, विनोबा (1956), भूदान गंगा खंड 1 से 8 वाराणसीः सर्वा सेवा संघ।
4. भावे, विनोबा (1957), ग्रामदान वाराणसीः सर्वा सेवा संघ।

अंक के रचनाकार

- **लीलाधर मंडलोई-** बी-2/53 बी पाकेट सरिता विहार, नई दिल्ली-76 9818291188
- **गरिमा श्रीवास्तव-** प्रोफेसर हिंदी, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-1100067
- **ओम भारती-** 221/9 बी, साकेत नगर भोपाल-462024(म.प्र.) 9425253623
- **महेश दर्पण-** सी-3/51 नागार्जुन नगर सादतपुर विस्तार, दिल्ली-110090 9013266057
- **प्रियदर्शन-** ई-4 जनसत्ता अपार्टमेंट्स सेक्टर-9 वसुंधरा, गाजियाबाद- 201012 (उ.प्र.) 9811901398
- **दामोदर दत्त दीक्षित-** 1/35 विश्वास खंड गोमतीनगर, लखनऊ-226010 (उ.प्र.), 9415516721
- **राधेश्याम तिवारी-** डी-70/4 अंकुर इनक्लेव, करावल नगर, दिल्ली-94 8860898399
- **रणजीत साहा-** एम.जी.1/26 विकासपुरी, नई दिल्ली-110018 9811262257
- **यशस्विनी पांडेय-** ओ.एम.क्यू-221/4 एयरफोर्स स्टेशन, दारजीपुरा वडोदरा-390022 (गुजरात)
- **प्रेम भारद्वाज-** बी-82 प्रथम फ्लोर शिव मंदिर रोड, जीडी कॉलोनी मयूर विहार फेज-3 दिल्ली-110096 9350544994
- **शशि भूषण द्विवेदी-** फ्लैट नं.404 बालाजी होम्स-1 दुर्गा कालोनी (प्रेमपुरी आश्रम के बगल) जी.टी. रोड, साहिबाबाद, जिला-गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.) 9582403770
- **श्रीमती श्रद्धा थवाईत-** एफ-5 पंकज विक्रम अपार्टमेंट शैलेंद्र नगर, रायपुर-492001 (छ.ग.) 9424202798
- **रामकुमार कृषक-** सी 3/59 नागार्जुन नगर सादतपुर विस्तार, दिल्ली-90 9868935366
- **जाबिर हुसैन-** 247 एमआईजी, लोहिया नगर, पटना-800020 (बिहार), 9431602575
- **असंग घोष-** D-1 लक्ष्मी परिसर निकट हवा बाग महाविद्यालय, कटंगा जबलपुर- 482001 (म.प्र.) 8224082240
- **अनंत मिश्र-** नलिन निवास दाउदपुर, बिलंदपुर, गोरखपुर-273001(उ.प्र.) 9450441227
- **सुधीर सक्सेना-** 43 अंसल प्रधान इनक्लेव ई 8 अरेरा कॉलोनी भोपाल-462029 9425022404
- **कुमार अनुपम-** C/o श्री अजय कुमार वर्मा पी-4 बी, तृतीय तल मयूर विहार फेज-1 नई दिल्ली-110091 9873372181
- **शंकरानंद-** क्रांति भवन, कृष्णानगर खगड़िया-851204 (बिहार) 8986933049
- **प्रांजल धर-** जी-22 एन.पी.एल. कॉलोनी न्यू राजेंद्र नगर, नई दिल्ली-60 9990665881
- **प्रयाग शुक्ल-**एच-416 पार्श्वनाथ प्रेस्टीज, सेक्टर-93 ए नोएडा-201304(उ.प्र.) 9810973590

- **देवेंद्र चौबे-** प्रोफेसर हिंदी, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-1100067 ☐ 9868272999
- **शंभु गुप्त-** 21 सुभाष नगर, एन.ई.बी., अग्रसेन सर्किल के पास अलवर-301001(राज.) ☐ 9414789779
- **कुबेर कुमावत-** हिंदी विभाग, प्रताप महाविद्यालय, अमलनेर-425001(महा.)
- **ज्ञानप्रकाश विवेक-** 1875 सेक्टर-6 बहादुरगढ़-124507,(हरि.) ☐ 9813491654
- **सूर्यकांत त्रिपाठी-** एसोसिएट प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिंदी विभाग तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर (असम)
- **मिथिलेश कुमार-** सहायक प्रोफेसर, फ्यूजी गुरुजी सामाजिक कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अ. हिं.वि, वर्धा-442001 (महा.) ☐9764969684

प्रकाशन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

सदस्यता आवेदन पत्र

'बहुवचन' त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रु. (व्यक्तिगत)
'बहुवचन' त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 400 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

'पुस्तक-वार्ता' द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रु. (व्यक्तिगत)
'पुस्तक-वार्ता' द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 370 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

(नोट : केवल बैंक ड्राफ्ट स्वीकार किए जाएंगें। कृपया मनीऑर्डर एवं चेक न भेजें।)

बैंक ड्राफ्ट 'महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के नाम देय होगा और उसे निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें। किसी भी राष्ट्रीयकृत बैंक का ड्राफ्ट स्वीकार्य होगा।

प्रकाशन प्रभारी
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, वर्धा - 442 001 (महाराष्ट्र)
फोन नं. 07152-232943

Bank Details for Online Payment :
Name: Finance Officer, Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
Bank Name: **Bank of India, Wardha** Account No.: **972110210000005**
IFSC Code No.: **BKID0009721** MICR Code No.: **442013003**

बहुवचन/पुस्तक-वार्ता पत्रिका के अंक .... से .... के लिए

रुपये .... का बैंक ड्राफ्ट संख्या .... दिनांक ....

संलग्न कर रहा हूँ/कर रही हूँ, कृपया मेरी प्रति निम्नलिखित पते पर भेजे :-

नाम : ....

पता : ....

दूरभाष : .... ई-मेल : ....

दिनांक : .... (सदस्य के हस्ताक्षर)